एम. ए. हिंदी
(पूर्वार्द्ध)
MAHIND-404

INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि

भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि

एम.ए. (हिंदी)

(पूर्वार्द्ध)

MAHIND-404

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA - 791 112

BOARD OF STUDIES

Dr. Oken Lego, Head (i/c) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Devraj Dean, School of Translation and Interpretation Mahatma Gandhi Antarashtriya Hindi Vishwavidhyalaya Vardha Maharastra - 442 005	**External Member**
Dr. Harish Kr. Sharma Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. A. Tripathi Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Ashan Riddi Director, I.D.E Rajiv Gandhi University	**Member Secretary**

Authors

Dr Kamini Taneja: Units (1.2-1.2.1, 3.0-3.2, 4)

© Dr Kamini Taneja, 2013

Dr Laxmi Pandey: Units (1.3, 3.3, 5.0-5.4.1)

© Reserved, 2013

Vikas Publishing House: Units (1.0-1.1, 1.2.2, 1.4-1.11, 2, 3.4-3.11, 5.4.2, 5.5-5.11)

© Reserved, 2013

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Information contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE—Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 576, Masjid Road, Jangpura, New Delhi 110 014
Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गांधी विश्वविद्यालय (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने, जो तत्कालीन प्रधानमंत्री थीं, 4 फरवरी, 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी। यहीं विश्वविद्यालय का वर्तमान कैंपस विद्यमान है।

आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित हैं। 28 मार्च, 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12-V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल, 2007 से, विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि. मी. और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए हैं कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक, स्नातकोत्तर, एम. फिल व पी. एच. डी. कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी. एड. का कोर्स भी चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध हैं। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फंडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही, विभिन्न फंडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है। देश–विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं।

2000–2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढ़ीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामतः छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया। बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है। परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती हैं और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए हैं बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं, उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं।

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है।

आईडीई : एक परिचय

हमारे देश में उच्च शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों, सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विभिन्न विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते हैं कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण सीखना और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिक–आर्थिक बाधाओं को दूर करने का वैकल्पिक माध्यम है। यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है, जो अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार व कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नहीं निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तर–पूर्वी भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में। सन् 2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर 'दूरस्थ शिक्षा संस्थान' (आईडीई) रखा गया।

दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए आईडीई ने 2013–14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों (शिक्षा, अंग्रेजी, हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञान) को शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन (पहली मंजिल) का निर्माण किया गया है। विश्वविद्यालय परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती हैं।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

1. **नियमित माध्यम के समकक्ष**–पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।
2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री (एसआईएसएम)**– छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरस्थ शिक्षा परिषद (डीईसी), नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रवेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।
3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)**– शैक्षिक कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7–15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बी.ए. पाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम.ए. के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य होगी।
4. **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट**– व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।
5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम**–परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।
6. **विषय परामर्श संयोजक**– पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं। ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि

Syllabi	Mapping in Book
इकाई 1 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण; भाषाविज्ञान का स्वरूप : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान; भाषाविज्ञान का अन्य अनुशासनों से संबंध; अनुप्रयुक्त एवं समाज भाषाविज्ञान : अभिप्राय और स्वरूप; व्यतिरेकी भाषाविज्ञान	इकाई 1 : भाषा एवं भाषाविज्ञान (पृष्ठ : 3–35)
इकाई 2 शैली और शैलीविज्ञान : परिभाषा और स्वरूप–शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान का संबंध; अर्थ संप्रेषण, विचलन एवं शैली विज्ञान; सामान्य, मानक, शास्त्रीय एवं काव्य भाषा	इकाई 2 : शैली और शैलीविज्ञान (पृष्ठ : 37–52)
इकाई 3 भारोपीय भाषा परिवार– भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं, भारोपीय परिवार का भाषाई ढांचा; हिंदी भाषा का उद्भव एवं विकास; अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का स्वरूप ; हिंदी भाषा के नामकरण का प्रश्न; हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण और सामान्य परिचय	इकाई 3 : भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी (पृष्ठ : 53–97)
इकाई 4 खड़ी बोली का उद्भव और विकास; फोर्ट विलियम कॉलेज और खड़ी बोली; भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप का प्रश्न–राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, राजा लक्ष्मण सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, अयोध्या प्रसाद खत्री, श्री बालकृष्ण भट्ट; हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां और भाषा के मानकीकरण का प्रश्न	इकाई 4 : खड़ी बोली का उद्भव और विकास (पृष्ठ : 99–134)
इकाई 5 देवनागरी लिपि का नामकरण; देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास; देवनागरी लिपि का मानकीकरण–देवनागरी लिपि का स्वरूप तथा गुण एवं दोष, देवनागरी के प्रचार–प्रसार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भूमिका; देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता; देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाएं–नागरी लिपि सुधार : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नागरी प्रचारिणी सभा एवं लिपि सुधार, आचार्य नरेंद्र देव समिति के सुझाव	इकाई 5 : देवनागरी लिपि (पृष्ठ : 135–157)

CONTENTS

परिचय 1

इकाई 1 भाषा एवं भाषाविज्ञान 3–35

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण
  1.2.1 भाषा की परिभाषा
  1.2.2 भाषा के अभिलक्षण
1.3 भाषाविज्ञान का स्वरूप : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान
  1.3.1 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
  1.3.2 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
  1.3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
1.4 भाषाविज्ञान का अन्य अनुशासनों से संबंध
1.5 अनुप्रयुक्त एवं समाज भाषाविज्ञान : अभिप्राय और स्वरूप
1.6 व्यतिरेकी भाषाविज्ञान
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 शैली और शैलीविज्ञान 37–52

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 शैली और शैलीविज्ञान : परिभाषा और स्वरूप
  2.2.1 शैलीविज्ञान का स्वरूप
  2.2.2 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान का संबंध
2.3 अर्थ संप्रेषण, विचलन एवं शैली विज्ञान
2.4 सामान्य, मानक, शास्त्रीय एवं काव्य भाषा
  2.4.1 सामान्य भाषा
  2.4.2 मानक भाषा
  2.4.3 शास्त्रीय भाषा
  2.4.4 काव्य भाषा
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी 53–97

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 भारोपीय भाषा परिवार
3.2.1 भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं
3.2.2 भारोपीय परिवार का भाषाई ढांचा
3.3 हिंदी भाषा का उद्भव एवं विकास
3.4 अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का स्वरूप
3.5 हिंदी भाषा के नामकरण का प्रश्न
3.6 हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण और सामान्य परिचय
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 खड़ी बोली का उद्भव और विकास 99–134

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 खड़ी बोली का उद्भव और विकास
4.2.1 खड़ी बोली का उद्भव
4.2.2 खड़ी बोली का विकास
4.3 फोर्ट विलियम कॉलेज और खड़ी बोली
4.4 भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप का प्रश्न
4.4.1 राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (1823–1895 ई.)
4.4.2 राजा लक्ष्मण सिंह (1826–1896 ई.)
4.4.3 भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1884 ई.)
4.4.4 अयोध्या प्रसाद खत्री (1857–1905)
4.4.5 श्री बालकृष्ण भट्ट (1844–1914 ई.)
4.5 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां और भाषा के मानकीकरण का प्रश्न
4.5.1 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां
4.5.2 भाषा का मानकीकरण
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 देवनागरी लिपि 135–157

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 देवनागरी लिपि का नामकरण
5.3 देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास
5.3.1 देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा के रूप में विकास
5.3.2 नागरी अंकों एवं नागरी लिपि की उत्पत्ति
5.4 देवनागरी लिपि का मानकीकरण
5.4.1 देवनागरी लिपि का स्वरूप तथा गुण एवं दोष
5.4.2 देवनागरी के प्रचार–प्रसार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भूमिका
5.5 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता
5.6 देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाएं
5.6.1 नागरी लिपि सुधार : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
5.6.2 नागरी प्रचारिणी सभा एवं लिपि सुधार
5.6.3 आचार्य नरेंद्र देव समिति के सुझाव
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. हिंदी पूर्वार्द्ध के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। भाषा विज्ञान से तात्पर्य 'भाषा के विशिष्ट ज्ञान' से है। यह विशिष्ट ज्ञान क्या है? वस्तुतः भाषा विज्ञान उस अर्थ में विज्ञान नहीं है, जिस अर्थ में गणित या भौतिकी। फिर भी यह विज्ञान इसलिए है कि उसके नियम भी कार्यकारण भाव पर आश्रित हैं। भाषा कहने से सामान्यतया चार तत्वों का बोध होता है– ध्वनि, पद, वाक्य एवं अर्थ। सर्वप्रथम ध्वनि का उच्चारण होता है, फिर अनेक ध्वनियों से एक पद का निर्माण होता है, अनेक पदों से वाक्य संगठित होता है और उससे अर्थ का ज्ञान होता है। लिपि के बिना मौखिक भाषा को लिखित रूप में प्रस्तुत करना असंभव है, क्योंकि लिपि ही भाषा और विचारों की अभिव्यक्ति का मूर्त माध्यम है। यह विचारों के आदान–प्रदान को सक्षम बनाती है और स्थायित्व प्रदान करती है।

इस पुस्तक में भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझाते हुए भारतीय आर्य भाषाओं, हिंदी भाषा और लिपि के विकास पर विस्तृत जानकारी दी जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक में भाषाविज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के विभिन्न पक्षों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'गतिविधि' एवं 'क्या आप जानते हैं' के माध्यम से भाषाविज्ञान में विद्यार्थियों की रुचि जगाने तथा रोचकता लाने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में भाषा एवं भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषाविज्ञान के स्वरूप एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है।

दूसरी इकाई शैली और शैलीविज्ञान पर आधारित है, जिसमें शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान के आपसी संबंधों को परिभाषित करते हुए भाषा के अनेक रूपों का वर्णन किया गया है।

तीसरी इकाई में भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी के स्वरूप को समझाते हुए हिंदी भाषा के उद्भव और विकास का कालक्रमानुसार विवेचन किया गया है।

चौथी इकाई में खड़ी बोली के उद्भव एवं विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका एवं भाषायी संघर्ष का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पांचवीं इकाई देवनागरी लिपि पर केंद्रित है, जिसमें देवनागरी लिपि के नामकरण, नागरी लिपि की उत्पत्ति, मानकीकरण तथा देवनागरी लिपि के क्रमिक विकास एवं सुधार के प्रयासों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में भाषा विज्ञान, हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के संपूर्ण विकास का सांगोपांग अध्ययन किया गया है, संपूर्ण जानकारियों को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर, उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 भाषा एवं भाषाविज्ञान

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण
  1.2.1 भाषा की परिभाषा
  1.2.2 भाषा के अभिलक्षण
1.3 भाषाविज्ञान का स्वरूप : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान
  1.3.1 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान
  1.3.2 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
  1.3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
1.4 भाषाविज्ञान का अन्य अनुशासनों से संबंध
1.5 अनुप्रयुक्त एवं समाज भाषाविज्ञान : अभिप्राय और स्वरूप
1.6 व्यतिरेकी भाषाविज्ञान
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

भाषा मनुष्य के विचारों के आदान–प्रदान का साधन है। अतः मनुष्य जीवन में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। भाषा की उत्पत्ति का संबंध इस बात से है कि मानव ने सर्वप्रथम किस काल में अपने मुख से निसृत होनेवाली ध्वनियों को वस्तुओं–पदार्थों एवं भावों से जोड़ा। इतिहास के किस काल में मानव ने सामूहिक स्तर पर यह निश्चय किया कि किस शब्द का क्या अर्थ होगा। 'भाषा की उत्पत्ति' का प्रश्न भाषाविज्ञान की विचार–सीमा में नहीं आता। विज्ञान पदार्थ का तात्विक विश्लेषण करके यह बता देगा कि यह भाषा किस वर्ग की भाषा है, उसके गुण–दोषों की चर्चा कर देगा पर उसके जन्म का प्रश्न दर्शनशास्त्र की सीमा में आता है। आजकल के भाषा वैज्ञानिक भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न को भाषाविज्ञान की सीमा में नहीं मानते। इस इकाई में हम भाषा, भाषाविज्ञान के स्वरूप एवं इससे संबंधित विषयों का अध्ययन करेंगे।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भाषा की परिभाषा और अभिलक्षणों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;

टिप्पणी

- भाषाविज्ञान के अन्य अनुशासनों के साथ संबंधों को समझ पाएंगे;
- अनुप्रयुक्त, समान भाषाविज्ञान और व्यतिरेकी भाषाविज्ञान की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

1.2 भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

भाषा का विकास निरंतर होता रहा है। ज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ उसको व्यक्त करने के लिए नये–नये शब्दों का निर्माण किया जाता है। पहले से चले आ रहे शब्दों को आधार बनाकर नवीन शब्दों का निर्माण औपचारिक शब्द कहा जाता है। संस्कृत भाषा का 'या' से 'जाना' अर्थ ग्रहण किया जाता है, इसको आधार मानकर अनेक शब्द बनाए गए हैं; जैसे यान, अभियान, वायुयान, जलयान, वाष्पयान, प्रयाण, हीनयान, महायान, आदि।

दक्षिणी अफ्रीका की सासुतो भाषा में मक्खी को 'नत्सी नत्सी' कहते हैं, जिसमें भिनभिनाने का भाव छिपा रहता है। इसका प्रयोग चाटुकारिता एवं चूसने के लिए भी किया जाता है। ऑस्ट्रेलिया के आदिवासी स्नायु को अपनी बोली में 'मूयूम' कहते हैं। स्नायु की तरह खुलने बंद होने से वे लोग पुस्तक को भी 'मूयूम' कहने लगे। अंग्रेजी बाजे पाइप (Pipe) की सादृश्यता के कारण 'नल' के लिए 'पाइप' शब्द का प्रयोग होने लगा। ईरान के पहाड़ी क्षेत्र के सुमेरी लोग कुत्तों तथा गधे से परिचित थे किंतु जब वे दक्षिण ईराक में बसे, तो शेर तथा घोड़े से परिचित हुए, अतः ये लोग शेर को 'नुग मग' (बड़ा कुत्ता) तथा घोड़े को 'पर्वतीय गधा' कहने लगे। 'रम्' धातु का प्राचीन अर्थ 'स्थिर होना' था। कालांतर में इसका अर्थ 'आनंद मनाना' हो गया। इसी प्रकार रमण तथा मनोरम का अर्थ भी औपचारिक है, मूलार्थ नहीं। 'कुप' (चलना) तथा 'व्यय' (कांपना) धातुओं का अर्थ बदलकर औपचारिक होकर क्रमशः क्रोध तथा पीड़ा हो गया।

इस प्रकार जिन शब्दों की उत्पत्ति अनुकरणात्मक, मनोभावाभिव्यंजक एवं प्रतीकात्मक शब्दों द्वारा सिद्ध नहीं होती, उन शब्दों की उत्पत्ति सादृश्य के आधार पर निश्चित की जा सकती है।

1.2.1 भाषा की परिभाषा

भाषा का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य अपने हृदयस्थ विचारों को भाषा के माध्यम से ही अन्य व्यक्ति तक पहुंचाने की चेष्टा करता है, यद्यपि अन्य साधन भी प्रयोक्तव्य है। यथा मूक बधिर मनुष्य हाथों के संकेतों के द्वारा अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करता है। गार्ड भी लाल या हरी झंडी के माध्यम से ट्रेन को रुकने या चलने का संकेत प्रदान करता है। पशु एवं पक्षी भी अपनी भाषा के द्वारा अपने विचारों को परस्पर प्रकट करते हैं। परंतु हमारा प्रयोजन भाषा के व्यापक अर्थ से न होकर मानव के द्वारा प्रयुक्त सार्थक वाणी से है, जिसके माध्यम से वह अपने भावों तथा विचारों को प्रकट कर सकें इसमें न तो हम मानवेतर प्राणियों की भाषा का अध्ययन करते हैं और न ही मनुष्य के सांकेतिक व्यवहारों का, अपितु भाषाविज्ञान में हम केवल मौखिक भाषा, मानव कंठ से निःसृत भाषा तथा ऐसी ध्वनियों का, जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने विचार बताता है, अध्ययन करते हैं। हमें वे ध्वनियां अभिप्रेत हैं, जिनमें आकांक्षा, योग्यता

टिप्पणी

तथा सन्निधि विद्यमान हो। वस्तुतः भाषाविज्ञान में जो भाषा अभीष्ट है, वह सांकेतिक आदि से अलग मनुष्य की व्यक्त वाणी है। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से इस अर्थ की पुष्टि होती है। भाषा शब्द संस्कृत की भाष् (भ्वादिगणी) धातु से निष्पन्न हुआ है। भाष् धातु का अर्थ है व्यक्त वाणी (भाष् व्यक्तायां वाचि)। 'भाष्यते व्यक्तवाग् रूपेण अभिव्यंज्यते इति भाषा' अर्थात व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे भाषा कहते हैं। वस्तुतः पशु आदि की बोली व सांकेतिक अर्थों में भाषा शब्द का प्रयोग गौण रूप में होता है, मुख्य रूप में भाषा शब्द का तात्पर्य मनुष्य की व्यक्त वाणी से है, क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है।

कपिलदेव द्विवेदी के मत में भाषा से तात्पर्य है–

स्फुटवाक्करणोपात्तो भावाभिव्यक्तिसाधकः।
संकेतितो ध्वनिव्रातः सा भाषोत्युच्यतेबुधैः।।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि–"भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करता है।" भाषा की विशेषताओं को इस प्रकार जाना जा सकत है–

1. **भाषा एक पद्धति है–** भाषा एक सुसंबद्ध तथा सुव्यवस्थित योजना अथवा संघटना है जिनमें कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि व्यवस्थित रूप में आ सकते हैं। सुव्यवस्थित पद्धति होने के कारण पद रचना तथा वाक्य रचना के विभिन्न नियम हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य होता है। किन शब्द रूपों में तृतीया एकवचन में न् का ण् होगा, किन में नहीं, किन शब्दों में तृतीया एकवचन में आ लगेगा, कहां 'ना' लगेगा, 'इन' लगेगा – इस व्यवस्था का ही फल है कि किसी भी भाषा का भाषावैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन और विश्लेषण किया जाता है और विभिन्न नियम बनाए जाते हैं।
2. **भाषा संकेतात्मक है–** प्रत्येक भाषा में जो ध्वनियां उच्चारित होती हैं, उनका किसी वस्तु या क्रिया या कार्य से संबंध होता है। ये ध्वनियां प्रतीकात्मक होती हैं। कोई ध्वनि किसी भाषा में किसी एक वस्तु का बोध कराती है और वही ध्वनि दूसरी भाषा में दूसरे अर्थ को बताती है। वस्तुतः भाषा की ध्वनियां केवल संकेतात्मक या प्रतीकात्मक होती हैं।
3. **भाषा वाचिक ध्वनि–संकेत है–** मनुष्य अपनी वागेंद्रियों की सहायता से जिन संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अंतर्गत आते हैं। अन्य प्रकार के संकेत–इंगित आदि, लाल–पीली झंडियां आदि, तार और वायरलेस के विभिन्न संकेत भाषा के अंतर्गत नहीं आते हैं। वाचिक ध्वनि संकेत सूक्ष्मातिसूक्ष्म मूर्त–अमूर्त, दृश्य–अदृश्य, निर्वचनीय और अनिर्वचनीय सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ हैं। इन ध्वनियों की एक विशिष्ट प्रक्रिया है, जिसका सूक्ष्म विश्लेषण संभव है और इसके आधार पर ही 'ध्वनि–विज्ञान' नाम की एक शाखा प्रचलित है।

टिप्पणी

लिपि या लेखन पद्धति भी यद्यपि भाषा का कार्य करती है, परंतु यह मल ध्वनियों का केवल संकेतात्मक चित्रण है। अतः लिपि को गौण रूप से भाषा कहा जाता है। इसी आधार पर उच्चारित ध्वनियों को लिपिबद्ध किया जाता है और लिपिबद्ध ध्वनियों का तात्त्विक रूप से उच्चारण करना संभव होता है। यहां पर यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि वागेंद्रियों से उत्पन्न सभी ध्वनियां सार्थक नहीं होतीं; जैसे– छींकना, खांसना, थूकना, चिल्लाना आदि। इनका भाषाशास्त्र की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है और न ही इनका विवेचन किया जाता है।

4. **भाषा यादृच्छिक संकेत है**–भाषा में जिन ध्वनि–संकेतों का उपयोग किया जाता है, वे पूर्णतया यादृच्छिक हैं। प्रत्येक भाषा में किसी विशेष ध्वनि को किसी विशेष अर्थ का वाचक मान लिया जाता है और वह परंपरा के अनुसार उसी अर्थ का वाचक हो जाता है। दूसरी भाषा में अन्य शब्द उस अर्थ का बोध कराता है।

यदि हम बालक की भाषा शिक्षण पद्धति को ध्यान में रखकर विचार करते हैं, तो ज्ञात होता है कि बालक अपने माता–पिता तथा संबंधियों के द्वारा उच्चारित ध्वनि संकेतों का अनुकरण करता है। वे जिसे माता–पिता–भाई–बहन, बिल्ली, मेज, कुर्सी, शेर आदि कहते हैं, वह भी उन्हें उसी प्रकार उन्हीं नामों से पुकारता है। बिल्ली को बिल्ली तथा शेर को शेर क्यों कहते हैं, इसका विश्लेषण नहीं करता। इस प्रकार एक समाज में कुछ विशिष्ट शब्द प्रचलित होते हैं और वह समाज उन विशेष अर्थों को ग्रहण करता है। दूसरे समाज में उत्पन्न व्यक्ति उन्हीं अर्थों को व्यक्त करने हेतु पूर्णतया भिन्न शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे अंग्रेज परिवार में पला हुआ बालक उपर्युक्त अर्थों को व्यक्त करने के लिए बचपन से ही मदर, फादर, ब्रदर, सिस्टर, केट आदि शब्दों का प्रयोग करता है। इसी प्रकार जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी आदि भाषाओं में इन अर्थों के लिए अलग–अलग शब्द हैं। यदि किसी विशेष अर्थ के लिए किसी विशेष ध्वनि का ही नियंत्रण होता तो वह परिवर्तन संभव न होता। इससे स्पष्ट है कि भाषा में प्रयुक्त सभी संकेत यादृच्छिक हैं। जिस भाषा में जिस अर्थ के लिए जो संकेत स्वीकृत है, वही अर्थ उस भाषा में लिया जाता है। किंतु यह संकेत पूर्णतया यादृच्छिक नहीं है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार नए ध्वनि संकेत का किसी विशेष अर्थ में प्रयोग तब तक नहीं कर सकता, जब तक उसको सामाजिक स्वीकृति प्राप्त न हो जाए।

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि भाषा एक व्यवस्थित पद्धति है। इसमें संकेतों के आधार पर भावों की अभिव्यक्ति की जाती है। ये संकेत वागेंद्रियों द्वारा ही उत्पन्न होने चाहिए और इन संकेतों का आधार यदृच्छा या मानवीय कल्पना हो।

भाषा अपनी प्रकृति में अत्यंत जटिल और बहुस्तरीय होने के साथ–साथ अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है। यह व्यक्ति के निजी अनुभवों एवं विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है, साथ ही सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति का उपकरण भी है। यह एक ओर मनुष्य के मानसिक व्यापार का आधार है तो दूसरी ओर हमारे सामाजिक व्यापार (संप्रेषण प्रक्रिया) का एक साधन भी। इसी आधार पर भाषा के दो पक्ष माने गए हैं–(1) मानसिक (2) भौतिक। मानसिक पक्ष उसका अमूर्त रूप है और भौतिक मूर्त। वक्ता के मन में भाव

टिप्पणी

और विचार अमूर्त रूप से विद्यमान रहते हैं, जब वह उन्हें प्रकट करना चाहता है तब उसे वागेन्द्रियों से सहायता लेनी पड़ती है और भाषा मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। श्रोता के मन में भी वह अमूर्त रूप में विद्यमान रहती है। इसलिए जब वक्ता द्वारा उच्चरित भाषा श्रवणेंद्रिय के माध्यम से श्रोता तक पहुंचती है, तो वह वक्ता के कथन का अभिप्राय तुरंत समझ लेता है।

इस प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता के बीच सामंजस्य होना जरूरी होता है, अन्यथा संप्रेषण बाधित होता है। कई बार वक्ता और श्रोता के बीच बौद्धिक स्तर की भिन्नता के कारण भी अर्थ संप्रेषण संभव नहीं हो पाता। भाषिक संप्रेषण की दृष्टि से भाषा के तीन पक्ष माने गए हैं–

1. उच्चारण पक्ष
2. संवहन पक्ष
3. ग्रहण पक्ष।

भाषा के प्रयोजन की विविधता के कारण ही हम भाषा को विभिन्न संदर्भों में देखते हैं। कुछ विद्वान इसे मानव मन की सर्जनात्मक शक्ति के रूप में देखते हैं, तो कुछ मानव व्यवहार की सामाजिक शक्ति के रूप में। भाषा के विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपनी–अपनी दृष्टि से विचार किया है एवं विभिन्न भाषाविदों ने भाषा की भिन्न–भिन्न परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं, जिनमें से मुख्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों के व्यवहार को भाषा कहते हैं।"
2. डॉ. बाबू राम सक्सेना के अनुसार, "जिन ध्वनि–चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उनके समष्टि रूप को 'भाषा' कहते हैं।
3. हेनरी स्वीट के शब्दों में, "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।"
4. प्लेटो के अनुसार, "विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है। विचार, आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।"
5. वेंद्रिय के शब्दों में, "भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत का आशय, उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। ये प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे–नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।"
6. महर्षि पतंजलि के अनुसार, "व्यक्ता वाचि वर्णा येषां ते इमे व्यक्त वाचः।" अर्थात भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों के समक्ष भली–भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्वयं स्पष्ट रूप से समझ सकता है।

(महाभाष्य–1.3.38)

टिप्पणी

7. चॉम्स्की के शब्दों में, "I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed of a finite set of elements."

8. ब्लॉक तथा ट्रेगर के शब्दों में–"A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group cooperates."

9. डॉ. पी.डी. गुणे के अनुसार, "भाषा का व्यापक़तम रूप में अर्थ है कि हमारे विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने वाले ऐसे संकेतों का कुल योग जो देखे या सुने जा सकें और जो इच्छानुसार उत्पन्न किए एवं दोहराए जा सकें।"

10. A.H. Gardiner के अनुसार, "विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्त ध्वनि संकेत ही भाषा है।" (The common definition of speech is the use of articulate sound-symbols for the expression of thought.)

11. Mario Apei तथा Frank Gayhor के अनुसार, "भाषा उन सार्थक और विश्लेषण समर्थ मानवोच्चारित ध्वनियों को कहते हैं, जिनका प्रयोग मानव, विचारों और भावों को व्यक्त करने के लिए करता है।"

12. डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित अध्ययन विश्लेषणीय यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग परस्पर भावों और विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।"

13. डॉ. मंगलदेव के शब्दों में, "भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे वे अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारित शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

14. सपीर के शब्दों में, "Language is a purely human and non-instinctive method of communicating ideas, emotions and desires by means of voluntarily produced symbols."

15. जेस्परसन के अनुसार, "मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपने विचार प्रकट करता है। मानव मस्तिष्क वस्तुतः विचार प्रकट करने के लिए ऐसे शब्दों का निरंतर उपयोग करता है। इस प्रकार के कार्य–कलाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है।"

16. इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में कहा गया है, "Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which human beings, as members of a social group and participants in culture interact and communicate."

17. मैक्समूलर के अनुसार, "भाषा और कुछ नहीं है, केवल हमारी चतुरबुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है, जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता से दूसरों के समक्ष प्रकट कर सकते हैं। इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।"

टिप्पणी

18. संस्कृत विद्वानों ने भी भाषा की परिभाषा दी है। उन्होंने भाषा की परिभाषा करते समय अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषों से बचने की सलाह दी है। न्यायशास्त्र के अनुसार,

तदेव हि लक्षणं यद्व्याप्ति–अतिव्याप्ति
असंभवरूपदोषत्रय शून्यम्।

आचार्य कपिल ने भाषा के लिए कहा है–

स्पुफटवाक्करणोपात्तो, भावाभिव्यक्तिसाध्कः
संकेतितो ध्वनिव्रातः सा भाषेत्युच्यतेबुधैः।।

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

"व्यक्ता वाचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः"

भर्तृहरि के अनुसार–

"शब्द कारणमर्थस्य स हि तेनोपजाएते"

तथा

"च बुद्धिविषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते।"
"बुद्धयर्थादेव बुद्धर्थे जाते तदानि दृश्यते।"

अमरकोष में कहा गया है–

"ब्रह्मा तु भारती भाषा गीर् वाक् वाणी सरस्वती।"

सुकुमार सेन के अनुसार–

"अर्थवान कंठोद्गीर्ण ध्वनि–समष्टि ही भाषा है।"

पं. कामताप्रसाद गुरु के अनुसार, "भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों के समक्ष भली–भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।"

आचार्य किशोरीदास बाजपेयी के अनुसार, "विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने विचार या मनोभाव दूसरों के प्रति बहुत सरलता से प्रंकट करते हैं।"

आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार, "उच्चारित ध्वनि संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।"

डॉ. सरयूप्रसाद अग्रवाल के अनुसार, "भाषा वाणी द्वारा व्यक्त स्वच्छंद प्रतीकों की वह रीतिबद्ध पद्धति है, जिससे लोग समाज में अपने भावों का परस्पर आदान–प्रदान करते हुए एक दूसरे को सहयोग देते हैं।"

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार, "भाषा यादृच्छिक वाक्य प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।"

पी.डी. गुणे के अनुसार, "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण भाषा है।"

टिप्पणी

डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के अनुसार, "भाषा वागेन्द्रिय द्वारा निस्सृत उन ध्वनि प्रतीकों की संरचनात्मक व्यवस्था है, जो अपनी मूल प्रकृति में यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और जिसके द्वारा किसी भाषा समुदाय के लोग अपने अनुभवों को व्यक्त करते हैं, अपने विचारों को संप्रेषित करते हैं और अपनी सामाजिक अस्मिता, पद तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों को सूचित करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अपनी प्रकृति में भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है।

प्रतीक

प्रतीक वह वस्तु है, जो किसी के लिए कही अन्य वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं जिसके बारे में सी.एस. पीयर्स ने कहा है, "A sign is something that stands to some body for something else in some respect or capacity." जब हम 'घोड़ा' शब्द के रूप में विचार करते हैं, तब उसको भी प्रतीकवत् प्रयुक्त पाते हैं। उच्चरित या लिखित रूप में शब्द घोड़ा, स्वयं घोड़ा नहीं होता, वह तो घोड़ा–वस्तु के लिए प्रयुक्त प्रतीकजन्य वह भाषिक वस्तु है, जिसे उसके प्रयोगकर्त्ता वास्तविक घोड़े के स्थान पर व्यवहार में लाते हैं।

प्रतीक की धारणा त्रिवर्गीय संकेतन संबंधों पर आधारित है। इन संबंधों का निर्माण तीन इकाइयों का आधार है, जिन्हें हम 'संकेतित वस्तु', 'संकेतार्थ' और 'संकेत प्रतीक' कह सकते हैं। संकेतित वस्तु बाह्य जगत में स्थिर इकाई है; जैसे घोड़ा, पुस्तक, फोन आदि। प्रयोगकर्त्ता के मन में स्थित उस इकाई की संकल्पना ही 'संकेतार्थ' है। इस संकेतार्थ को अभिव्यक्त करने वाली इकाई 'प्रतीक' है, जो संकेतित वस्तु के स्थान पर कुछ विशेष संदर्भों में प्रयुक्त होती है।

संकेतित वस्तु (बाह्य जंगल में स्थित घोड़ा)

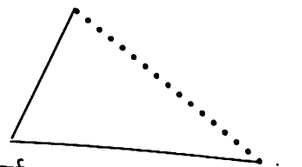

(प्रयोगकर्त्ता के मन में स्थित घोड़ा) (–शब्द रूप में प्रयुक्त घोड़ा)

यह ध्यातव्य है कि संकेतित वस्तु और संकेतार्थ में सीधा संबंध है, संकेतार्थ और प्रतीक के बीच का भी संबंध सीधा है, लेकिन संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध सहज और सीधा नहीं है। प्रतीक सीधे वस्तु की ओर संकेतित नहीं करता, बल्कि उसको संकेतित करने के लिए उसे संकेतार्थ का रास्ता चुनना पड़ता है। संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध आरोपित होता है। उपर्युक्त आरेख में संकेतार्थ और संकेतित वस्तु का सीधा संबंध और संकेतित वस्तु और प्रतीक का संबंध आरोपित है। संकेतार्थ के निर्माण में केवल बाह्य जगत की वस्तुएं ही अपना योग नहीं देतीं, अपितु व्याख्याता या प्रयोगकर्ता का जातीय इतिहास, उसकी सभ्यता और संस्कृति भी अपना योग देती है। इसीलिए भाषिक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त शब्दों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अर्थ भी हुआ करता है। जैसे 'देवी' शब्द हिंदू

टिप्पणी

समाज और हिंदू संस्कृति का बोधक है जबकि 'मल्लिका' शब्द जिस संस्कृति का द्योतक है वह 'देवी' के सामाजिक अर्थ से भिन्न है।

सस्यूर के अनुसार भाषा की प्रत्येक सार्थक इकाई एक भाषिक प्रतीक है। वह भाषिक प्रतीक को कथ्य और अभिव्यक्ति की संश्लिष्ट इकाई के रूप में मानते हैं। प्रतीक का संकेतार्थ काव्य से है और अभिव्यक्त इस संकेतार्थ को व्यक्त करने वाले ध्वनि समूह से। यदि घोड़ा शब्द एक भाषिक प्रतीक है, तब कथ्य इस शब्द का संकेतार्थ माना जाएगा जबकि अभिव्यक्त इस शब्द का ध्वनि संयोजन– घ+ओ+ड़+आ। यह कथ्य और अभिव्यक्ति का एकीकरण ही होता है कि अभिव्यक्ति के अभाव में कथ्य पक्ष, प्रतीक रूप में सिद्ध नहीं माना जा सकता। एक के बिना दूसरे की संकल्पना नहीं की जा सकती। मन में किसी प्रतीक का अभिव्यक्ति पक्ष के आने के साथ ही उसका कथ्य पक्ष भी तुरंत उत्पन्न होता है; जैसे घोड़ा या पुस्तक शब्द सुनते ही श्रोता की कल्पना में उसके कथ्य यथा घोड़ा या पुस्तक की संकल्पना उसी समय उभर आती है।

भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक होता है। अपने अभिव्यक्ति पक्ष के लिए भाषिक प्रतीक जिस माध्यम को अपनाता है, उसका आधार वागेन्द्रिय होता है। वक्ता भाषिक प्रतीक का सहारा लेकर वक्ता के रूप में शब्दों का उच्चारण करता है, श्रोता के रूप में दूसरा व्यक्ति उसे सुनता है। अपने विचारों को दूसरे तक संप्रेषित करने के लिए मनुष्य अनेक संकेतों; जैसे झंडा दिखाकर, सीटी बजाकर, हाथ हिलाकर – का सहारा ले सकता है, पर उसे सही अर्थों में न तो भाषिक प्रतीक कहा जा सकता है न भाषा।

भाषिक प्रतीक का अभिव्यक्ति माध्यम मनुष्यों की वागेन्द्रिय से निस्सृत ध्वनियां हैं। भाषिक प्रतीक अपनी मूल प्रकृति में ध्वनिपरक होता है, परंतु प्रत्येक ध्वनि प्रतीक, भाषिक नहीं होता। ताली, चुटकी बजाकर हम अपने मनोभावों को व्यक्त कर सकते हैं, परंतु ये ध्वनि प्रतीक भाषिक प्रतीकों के अंतर्गत नहीं आते। भाषिक प्रतीक जिस ध्वनि को अपना अभिव्यक्ति माध्यम बनाता है, वह वागेन्द्रिय द्वारा निस्सृत होना चाहिए।

भाषिक प्रतीक कथन और अभिव्यक्ति के संबंधों की प्रकृति पर आधरित होते हैं। ये सामान्यतः तीन प्रकार के होते हैं–(1) प्रतिमापरक (2) संकेतपरक (3) सामान्य।

1. जिन प्रतीकों में कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों का आधार सादृश्य होता है, वे प्रतिमापरक होते हैं। किसी देश का चित्र सादृश्य तत्व के आधार पर संकेतार्थ को व्यक्त करता है।
2. सूचनापरक या संकेतपरक प्रतीक – जब कथ्य और अभिव्यक्ति के बीच के संबंधों का आधार कार्य–कारण का सहज और प्राकृतिक संबंध रहता है। बादलों का गर्जन–तर्जन वर्षा एवं तूफान की सूचना देता है, धुआं आग का प्रतीक है।
3. सामान्य प्रतीक में काव्य और अभिव्यक्ति में कोई प्राकृतिक संबंध नहीं होता। इन प्रतीकों में कथ्य और प्रतीक के बीच संबंधों की प्रकृति यादृच्छिक और रूढ़िपरक होती है।

भाषिक प्रतीक अपनी प्रकृति में मूलतः सामान्य (यादृच्छिक और रूढ़िपरक) होता है। इसीलिए एक ही कथ्य के लिए भिन्न–भिन्न भाषाओं में भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तिरूप मिलते

टिप्पणी

हैं। अभिव्यक्ति और कथ्य में यादृच्छिक संबंधों के परिणामस्वरूप अभिव्यक्ति पक्ष में परिवर्तन के बिना ही भाषिक प्रतीकों के संकेतार्थ में परिवर्तन आ जाता है। भाषिक प्रतीकों में पाए जाने वाले अर्थ विस्तार एवं अर्थ संकोच इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

प्रतीकों की व्यवस्था

भाषा प्रतीकों की सार्थक व्यवस्था है। भाषा वाक्य या भाषिक प्रतीकों की शृंखला तो होती है पर भाषिक प्रतीकों की हर कड़ी भाषा या वाक्य का दर्जा नहीं पाती। प्रत्येक मातृभाषी अपनी भाषा में प्रयुक्त प्रतीकों की व्यवस्था को ज्ञात या अज्ञात रूप में पहचानता है और उसके आधार पर उन भाषिक प्रतीकों को पहचानने में सक्षम होता है, जो मान्य होते हैं।

प्रतीक भाषा की वह व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत किसी शब्द विशेष का एक निश्चित अर्थ होता है। यह अर्थ शब्द के गुण से नितांत भिन्न होता है। प्रतीक शब्द के अनिवार्य गुण या धर्म से भिन्न अपनी सत्ता स्वतंत्र रखता है। प्रतीक मूल नहीं होता, वह किसी अन्य पदार्थ (भाव आदि) के लिए प्रयुक्त होता है। प्रतीक में मूल पदार्थ को अनुभव करने की शक्ति होती है। प्रतीक पद्धति का प्रयोग करने वाले लोगों के बीच एक ऐसा आंतरिक समझौता होता है, जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति जिस आशय से किसी प्रतीक का प्रयोग करता है, दूसरा व्यक्ति उस प्रतीक से वही आशय ग्रहण करता है। घोड़ा, पुस्तक आदि शब्द रचनात्मक प्रतीक हैं जो एक मान्यक्रम में प्रयुक्त होकर एक निश्चित अर्थ देते हैं, जिन्हें भाषा के प्रयोक्ता उसी अर्थ में बोलते और सुनते हैं। अतः भाषाई ध्वनियां वे प्रतीक हैं, जो अपने द्वारा किसी दूसरे आशय को अभिव्यक्त करती हैं।

भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था सापेक्ष होती है और हर व्यवस्था की तरह कुछ संरचनात्मक नियमों की अपेक्षा रखती है। अर्थात प्रत्येक भाषा के अपने नियम होते हैं, जिन नियमों के अनुसार भाषिक प्रतीक कड़ी के रूप में व्यवस्थित होते हैं जैसे हिंदी में कर्त्ता + कर्म + क्रिया (मैं आम खा रहा हूं) के क्रम का निर्वाह करते हुए हिंदी भाषी बोलता है तो अंग्रेजी में कर्ता+क्रिया+कर्म (I am eating mango) की व्यवस्था का निर्वाह किया जाता है। भाषिक प्रतीकों के क्रम का नियम हिंदी में कर्म को 'क्रिया' के पहले रखता है, जबकि अंग्रेजी में उसे क्रिया के बाद लाता है।

1.2.2 भाषा के अभिलक्षण

भाषा के अभिलक्षण का तात्पर्य है– भाषा की विशेषता अथवा मूलभूत लक्षणा। भाषा के अभिलक्षण अग्रलिखित हैं–

1. **यादृच्छिकता–** 'यादृच्छिक' अर्थात् 'माना हुआ' या 'जैसी इच्छा हो'। कथ्य और अभिव्यक्ति के संबंधों का आधार यादृच्छिक होता है, न भौतिक, न शरीर क्रियात्मक। भाषा में किसी वस्तु या भाव का किसी शब्द से सहज–स्वाभाविक या तर्कपूर्ण संबंध नहीं है। यदि सहज–स्वाभाविक संबंध होता तो सभी भाषाओं में एक वस्तु के लिए एक ही शब्द होता। विभिन्न भाषाओं के सभी शब्दों में यह यादृच्छिकता पाई जाती है। यादृच्छिकता अभिलक्षण का ही परिणाम है कि अनुकरणात्मक शब्दों की अभिव्यक्ति भी भिन्न भाषाओं में भिन्न होती है यद्यपि

टिप्पणी

अनुकरणनात्मक शब्द की ध्वन्यात्मक बुनावट किसी वस्तु या क्रिया के भौतिक प्रयोग से उत्पन्न ध्वनियों के अनुकरण पर होती है। उदाहरण के लिए शाब्दिक यादृच्छिकता को देखें तो पानी के लिए अंग्रेजी में 'वाटर' फारसी में 'आब' का प्रयोग होता है। व्याकरण के स्तर पर भी हिंदी और अंग्रेजी के वाक्य गठन में भेद यादृच्छिकता के ही उदाहरण हैं।

2. **सृजनात्मकता–** व्यक्ति ऐसे अनेकानेक वाक्यों का रोज ही प्रयोग करते हैं जिनका ठीक उसी रूप में पहले कभी भी प्रयोग नहीं हुआ होता। भाषा में शब्द और रूप तो प्रायः सीमित होते हैं, और अपनी आवश्यकतानुसार हम उन्हीं को आधार बनाकर सादृश्य के आधार पर नये–नये वाक्यों का सृजन एवं उनका प्रयोग करते हैं। सृजनात्मकता वक्ता और श्रोता दोनों ही की भाषिक क्षमता में होती है और यह उसी का परिणाम है कि वक्ता नित्य नये–नये वाक्य का प्रयोग कर लेता है और श्रोता उन्हें समझ लेता है। उदाहरण के तौर पर देखें तो मैं, तुम, वह, हम इन चार शब्दों से कई वाक्यों का सृजन किया जा सकता है, जैसे–तुमने मुझसे कहलवाया, मैंने तुमसे कहलवाया, तुमने हमसे कहलवाया, उसने तुम्हें मुझसे कहलवाया आदि।

3. **अनुकरणग्राह्यता–** जन्म से कोई भी बच्चा मां के पेट से कोई भाषा सीखकर नहीं आता, मानव–भाषा समाज–विशेष से अनुकरण द्वारा सीखी या ग्रहण की जाती है। मानव–भाषा आनुवंशिक नहीं होती, जैसी कि अन्य जीव–जंतुओं की भाषाएं होती हैं। सभी जीव–जन्तु अपनी भाषा अपने समाज से नहीं सीखते, बल्कि उनकी भाषिक क्षमता उनमें जन्मजात होती है। भाषा के इस अभिलक्षण को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा गया है; जैसे सांस्कृतिक प्रेषणीयता, क्योंकि संस्कृति के साथ–साथ, उसके एक अंगरूप में भाषा सीखी जाती है, परंपरानुगामिता क्योंकि परंपरा या रूढ़ि के रूप में भाषा सीखी जाती है, सीखने के योग्य होना या अधिगम्यता क्योंकि भाषा सीखी जा सकती है।

4. **परिवर्तनशीलता–** मानव के अतिरिक्त अन्य जीव–जंतुओं की भाषा में कोई परिवर्तन नहीं होता, यह अपरिवर्तनशील होती है। जबकि मानव–भाषा हमेशा नियमों की सर्जनात्मकता की प्रवृत्ति से संचालित रहती है और परिवर्तित होती रहती है। भाषा निरंतर परिवर्तनशील रही है। भाषाविज्ञानी मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की भाषा उसकी आयु के अनुसार कुछ न कुछ बदलती रहती है। एक ही समाज के लोग अपने अपने ढंग से भाषा का व्यवहार करते हैं। छोटे छोटे परिवर्तन क्रमशः एकत्र होकर बड़े परिवर्तनों का रूप ले लेते हैं। इसलिए कुछ भाषाविज्ञानी किसी मनुष्य की व्यक्तिगत बोली (ईडियोलेक्ट) को भाषा की एकमात्र यथार्थ इकाई मानते हैं।

भाषा एक से अधिक मनुष्यों के बीच बातें कहने–सुनने का साधन और माध्यम है। भाषा का व्यवहार करते हुए मनुष्य जब ध्वनियों से काम लेता है, तब अपनी बात कहने और दूसरे की बात समझने के लिए इन ध्वनियों के सभी भौतिक लक्षण

टिप्पणी

उसके लिए उपयोगी नहीं होते, वह उनमें से कुछ लक्षणों पर ही ध्यान देता है जो सामाजिक स्तर पर आदान प्रदान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, वैसे ही व्यक्तिगत स्तर पर वह भाषा में जो भी परिवर्तन करता है, वह महत्वपूर्ण नहीं होता; महत्वपूर्ण वह परिवर्तन होता है जो सामाजिक स्तर पर भाषा क बोलने वाले समुदाय के लिए आवश्यक होता है। भाषा के ध्वनियों का प्रयोग जहां सार्थक होता है, वहीं वह भाषाविज्ञान के लिए विवेच्य होता है; भाषा संबंधी परितर्वन जहां समाज के लिए सार्थक होते हैं, भाषा बोलने वाले समुदाय के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, वहीं वे भाषाविज्ञान के लिए विवेच्य होते हैं।

भाषाविज्ञान के विकास को सामाजिक विकास से अलग हटकर नहीं देखा जा सकता। मनुष्य ने अपने विकास क्रम में पशुओं से अलग पहचान बनाई और पशुओं से भिन्न स्तर पर वह ध्वनि–संकेतों से काम लेकर सामाजिक विकास की अनेक मंजिलें पार की। विभिन्न समुदायों एवं समाजों की भाषाओं से शब्द तथा संकेत ग्रहण करते हुए भाषा निरंतर विकसित होती गई।

5. **विविक्तता**– मानव भाषा के भिन्न–भिन्न स्वरूप हैं जो कई घटकों और इकाइयों में विभाजित हैं। दो या दो से अधिक ध्वनियों के मेल से शब्द का निर्माण होता है और दो से अधिक शब्दों से वाक्य बनता है। यह बहुघटकता, विच्छिन्नता, विविक्तता मानव भाषा में ही पाई जाती है अन्य जीवों की भाषा में नहीं पाई जाती। पशु–पक्षियों की भाषा ध्वनि संकेतों में होती है जिन्हें उनके साथी पशु–पक्षी समझते हैं अतः पशु–पक्षी अन्य जीवों से खतरा होने की सूचना अपने साथियों को ध्वनि संकेतों से ही देते हैं और अपनी शारीरिक जरूरतों और इच्छाओं को आपस में ध्वनि संकेतों द्वारा ही प्रदर्शित करते हैं। अतः विविक्तता मानव–भाषा का अभिलक्षण है।

6. **द्वैतता**– भाषा में प्रत्येक वाक्य और कथन में सार्थक और निरर्थक दो स्तर की इकाइयां होती हैं। अतः इन दो स्तरों की स्थिति ही द्वैतता कहलाती है।

   सार्थक इकाइयों को रूपिम (शब्द, धातु, प्रत्यय, उपसर्ग, कारक, चिह्न आदि) कहते हैं और जिनसे सार्थक इकाइयों का निर्माण होता है वे ध्वनियां (निरर्थक इकाई) कहलाती हैं।

7. **भूमिकाओं की परस्पर परिवर्तनीयता**– दो व्यक्ति A और B जब आपस में बातचीत करते हैं तो कभी A वक्ता की और B श्रोता की और कभी B वक्ता की और A श्रोता की भूमिका में होते हैं। इस प्रकार A और B दोनों की वक्ता और श्रोता के रूप में भूमिकाएं बदलती रहती हैं। वक्ता बोलता है तो श्रोता सुनता है, फिर जब श्रोता उत्तर देता है या अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है तो वह वक्ता बन जाता है और तब प्रथम वक्ता श्रोता हो जाता है। यही भूमिकाओं की अदला–बदली है या उनका क्रम परिवर्तन या उनकी परस्पर परिवर्तनीयता है।

8. **अंतरणता**– मानव भाषा वर्तमान के साथ–साथ भूत एवं भविष्य के बारे में भी कहने की समर्थता रखती है जबकि मानवेतर भाषा ऐसा करने में असमर्थ है।

टिप्पणी

मानवेतर भाषा केवल वर्तमान के विषय में ही सूचित कर सकती है और जहां भाषा व्यापार हो रहा है उसी स्थान और उसके इर्द–गिर्द के विषय में सूचित कर सकती है। लेकिन मानव भाषा में कालांतरण करने का गुण है और मानव भाषा में जहां भाषा व्यापार हो रहा है उस स्थान और उसके इर्द–गिर्द के विषय में सूचित करने की भी समर्थता है। अतः कहा जा सकता है कि स्थान और काल का अंतरण करना मानव भाषा के अभिलक्षणों में से एक अभिलक्षण है।

9. **मौखिकता–श्रव्यता**– मानव भाषा का उच्चारण मुंह से किया जाता है; जैसे हम प्यास लगने पर अपने नौकर से एक गिलास पानी मांगने के लिए मुंह से बोलते हैं और वह हमारे बोले गए शब्दों को अपने कानों से सुनकर हमें पानी का गिलास दे देता है, यह मौखिक श्रव्यता है। हमने कहा और नौकर ने श्रवण किया। मानवेतर प्राणियों द्वारा मुंह से निकाली गई ध्वनियों को मानवेतर प्राणियों के वर्ग के अन्य प्राणी कानों से श्रवण करके समझ लेते हैं और अपनी प्रतिक्रिया करते हैं।

10. **असहजवृत्तिकता**– मानव के सामने जब अचानक दुःख, भय और खुशी की स्थिति आती है तो उसके मुंह से असहज ही कुछ शब्द निकलते हैं। मानवेतर प्राणी भी भय, कामेच्छा और भूख की स्थिति में अपने मुंह से कुछ ध्वनियां निकालते हैं। जिस अर्थ में मानव भाषा होती है, मानवेतर ध्वनियां उस अर्थ में भाषा नहीं होती। जीवन की सहजात वृत्तियों से मानव भाषा का संबंध नहीं होता, यह असहजवृतिक होती है।

1.3 भाषाविज्ञान का स्वरूप : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान का संबंध विश्व की सभी मानवीय भाषाओं और बोलियों से है, चाहे वे जीवित हैं अथवा मृत, साहित्यिक हैं अथवा असाहित्यिक, संस्कृत हैं अथवा प्राकृत, शुद्ध हैं अथवा अशुद्ध, लिखित हैं या मौखिक। इन सुविस्तृत सीमाओं से आबद्ध होकर भाषाविज्ञान का क्षेत्र अत्यंत विशाल हो जाता है और साहित्य संपन्न प्राचीन एवं अर्वाचीन भाषाएं, दैनिक व्यवहार में आने वाली समस्त बोलियां, शिलालेखों, प्रागैतिहासिक अभिलेखों एवं ग्रंथों में सुरक्षित समग्र भाषाएं इस विज्ञान के पर्यालोचन का विषय बन जाती हैं। इतना ही नहीं, काल्पनिक भाषाओं के अध्ययन को भी इसमें सम्मिलित किया जाता है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में हिंदी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी आदि अनेक जीवित भाषाएं हैं। संस्कृत, पालि, प्राकृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाएं जो व्यवहार में नहीं हैं, मृत समझी जाती हैं वे भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आती हैं। आजकल भाषा वैज्ञानिकों ने एक ऐसी मूल भाषा की कल्पना की है जिसमें समस्त आर्य परिवार की भाषाएं विकसित हुई हैं। इसे ही 'भारोपीय' (काल्पनिक) भाषा कहा जाता है।

इस विषय में डॉ. श्यामसुंदर दास का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि 'भाषाविज्ञान में बड़े से बड़े कवि और नेता की अपेक्षा एक अपढ़–गंवार की बोली

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. गार्ड भी ..... या ..... झंडी के माध्यम से ट्रेन को रुकने या चलने का संकेत प्रदान करता है।
2. भाषिक प्रतीकों की व्यवस्था ..... होती है।

सही/गलत बताइए–

3. मनुष्य अपनी वागेंद्रियों की सहायता से जिन संकेतों का उच्चारण करता है, वे ही भाषा के अंतर्गत आते हैं।
4. मानवेतर जीवों की भाषा परिवर्तनशील होती है।

टिप्पणी

भी कम उपादेय नहीं समझी जाती। इसे क्षेत्र, देश, काल अथवा जाति की संकुचित सीमाओं में भी नहीं बांधा जा सकता। समस्त संसार की, सब कालों की और सब जातियों की भाषाएं एवं बोलियां इस शास्त्र की पर्यालोचना में आती हैं। जीवित और मृत भाषाओं की तो बात ही क्या है, काल्पनिक मूल भाषाओं तक का विचार इस विज्ञान में होता है। कहीं भी, कभी भी जो शब्द मानव मुख से निकल पड़ता है, उसका विश्लेषण करते हुए उसे भाषाविज्ञान की परिधि में लाया जाता है। उसकी परीक्षा से लाभ उठाना, भाषाविज्ञान अपना कर्तव्य समझता है।

भाषाविज्ञान के इतने सुविस्तृत क्षेत्र को देखते हुए उसकी सीमाओं का निर्धारण कोई सुगम कार्य नहीं है। भाषाविज्ञान के अतिरिक्त, भाषा का संबंध व्याकरण एवं साहित्य से भी है। भाषाविज्ञान को इन दोनों से भी पूर्ण सहायता मिलती है। साहित्य के अनुशीलन से उसे शब्द के रूप और अर्थ का पूर्ण इतिहास विदित होता है तथा व्याकरण की नींव पर तो उसके विशाल भवन का निर्माण होता ही है। साहित्य का संबंध भाषा में निहित भावों और विचारों से रहता है और व्याकरण भाषा की शुद्धि एवं अशुद्धि पर विचार करता है। भाषा कैसी है? इसका ज्ञान व्याकरण कराता है, वह एक कला है, जिसका उद्देश्य साध्य का ज्ञान है। इसी दृष्टिकोण को आधार बनाकर वैयाकरण भाषा के अध्ययन में प्रवृत्त होता है इसके विपरीत भाषा शास्त्री भाषा के सभी पक्षों का अध्ययन करता है। जो भाषा उसके समक्ष है, वह ऐसी क्यों है? उसे यह रूप किस प्रकार प्राप्त हुआ? वह इन सब तथ्यों का पता लगाता है। इस प्रकार भाषा का वर्तमान रूप क्या है? यह वैयाकरण बताता है। उसके भाव क्या हैं? यह साहित्यकार बताएगा, किंतु भाषा शास्त्री का कार्य इन दोनों से भी आगे बढ़कर भाव के साधन की मीमांसा करना है। वह भाषा के आंतरिक जीवन के सूत्र का पता लगाने, उसकी उत्पत्ति को खोजने, उसके क्रमिक विकास की कहानी जानने, उसके विकार एवं परिवर्तनों संबंधी सिद्धांतों की स्थापना करने का अथक प्रयास करता है, जिससे भाषा के वर्तमान प्रकट रूपों की एकता और अनेकता दोनों को सम्यक रूप से समझा जा सके। वह भाषा और मनुष्य के संबंध का भी अध्ययन करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान भाषा के संपूर्ण अध्ययन का एक ऐसा विज्ञान है, जो भाषा के अति विस्तृत क्षेत्र को अपनी अनेक शाखाओं और प्रशाखाओं में आबद्ध किए हुए हैं। ध्वनि–विज्ञान, शब्द–विज्ञान, पद–विज्ञान (रूप–विज्ञान), वाक्य–विज्ञान एवं अर्थ–विज्ञान आदि सभी भाषाविज्ञान के प्रमुख अंग हैं जो भाषा का सांगोपांग एवं सम्यक अध्ययन प्रस्तुत करने में सहायक हैं। भाषाविज्ञान के स्वरूप का परिचय करना भी यहां आवश्यक प्रतीत होता है।

ध्वनि–विज्ञान के अंतर्गत भाषा की संपूर्ण ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। भाषा के अंदर इसका बहुत महत्व होता है, क्योंकि यही भाषा की लघुतम इकाई है और स्वयं अविभाज्य है। ध्वनियों के संयोग से ही शब्द, पद, वाक्य और क्रमानुसार भाषा का स्वरूप निर्धारण होता है। ध्वनियों के उच्चारण, उच्चारण स्थान, ध्वनि नियम, ध्वनि परिवर्तन आदि का अध्ययन होता है, जिससे भाषा एवं भाषाओं के स्वरूप को जानने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

टिप्पणी

ध्वनि–विज्ञान के उपरांत भाषाविज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत करने वाला महत्वपूर्ण अंग रूप विज्ञान है जिसमें शब्द एवं पदों का सम्यक अध्ययन किया जाता है। ध्वनि अर्थात अक्षरों के सार्थक पुंज को शब्द कहा जाता है और जब यह उपसर्गों एवं प्रत्ययों के द्वारा वाक्य में प्रयोग करने योग्य हो जाता है, तब इसे पद कहा जाता है। किसी भी विकसित भाषा का एक सुव्यवस्थित शब्द–समूह होता है। इसमें विविध प्रकार के शब्दों का भंडार होता है जिन्हें तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों के नाम से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार रूप विज्ञान भाषा के समस्त पदों एवं शब्दों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

भाषाविज्ञान के तृतीय महत्वपूर्ण अंग को वाक्य–विज्ञान कहा जाता है। वाक्य भाषा की इकाई का नाम है। इस शाखा में वाक्य की संरचना, उसके आवश्यक उपकरणों आदि का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। अनेक पदों से वाक्य का निर्माण होता है, उसके विन्यास का भाषा में एक स्थिर नियम है।

वाक्य सार्थक होता है और तभी वह सार्थक भाषा की रचना करने में सहायक होता है। वाक्य में दो बातें अपेक्षित हैं – उद्देश्य एवं विधेय। वाक्य रचना की विशिष्ट पद्धति के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं– कर्म वाच्य, कर्तृवाच्य एवं भाव वाच्य, और अर्थ की दृष्टि से वाक्य आठ प्रकार का होता है। इस प्रकार वाक्य विज्ञान के अंतर्गत अंगों का पारस्परिक संबंध, उनके रूपांतर, भेद, संरचना–पद्धति आदि का अध्ययन किया जाता है।

अर्थ विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि, पद एवं वाक्यों से युक्त भाषा के अर्थ पर प्रकाश डाला जाता है। अर्थ ही शब्द की आत्मा है, निरर्थक भाषा का कोई अस्तित्व नहीं होता। यही कारण है कि कालिदास ने अपने अमर काव्य 'रघुवंश' में शब्द और अर्थ की भांति अभिन्न पार्वती एवं परमेश्वर की वंदना, शब्द एवं अर्थ का समुचित ज्ञान कराने के लिए की है। अर्थ–विज्ञान के अंतर्गत अर्थ परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है, जिसमें अर्थ संकोच, अर्थ विस्तार एवं अर्थादेश आदि तीन बातें प्रमुख रूप से विचारणीय होती हैं। अर्थ–विज्ञान के ही अंतर्गत उन सब बोधिक नियमों का भी अध्ययन किया जाता है जो अर्थ परिवर्तन के अनेक बुद्धिगत कारणों की भली–भांति परख करते हुए अनेक नियमों एवं सिद्धांतों के निर्धारण में सहायक होते हैं। जैसे स्कूल, पाठशाला, मकतब आदि विभिन्न नाम शिक्षण संस्थाओं के ही हैं, किंतु वे विशेष प्रकार की शिक्षाओं की ओर इंगित करते हैं। इस प्रकार अर्थ विज्ञान में शब्द एवं अर्थ का तात्पर्य, उनके स्वरूपों, पारस्परिक संबंधों आदि का सम्यक अध्ययन किया जाता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि भाषाविज्ञान की सीमाएं अत्यंत विस्तृत हैं, जो भाषाविज्ञान के लिए अत्यंत विशाल क्षेत्र का निर्धारण करती हैं। यह प्रत्येक स्वरूप में, प्रत्येक काल में, विश्व के प्रत्येक कोने में पाई जाने वाली मानव जाति का समग्र रूप से वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करती हैं।

1.3.1 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

भाषाविज्ञान के अध्ययन की वर्णनात्मक पद्धति अति विशिष्ट एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है। प्राचीनकाल में तो इसका व्यवहार ही सबसे अधिक मात्रा में हुआ करता था। व्याकरण इसका प्राचीन नाम है तथा इसे शिक्षा के छह अंगों में प्रमुख रूप से गिना जाता था।

टिप्पणी

इस पद्धति के अंतर्गत किसी विशेष युग की किसी एक भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, प्रत्यय, विभक्ति, उपसर्ग, कारक, सामासिकता आदि रूपों की वर्णनात्मक समीक्षा करते हुए, उसकी ध्वनि, वाक्य–संगठन, संस्कृत, असंस्कृत आदि रूपों का समुचित अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। इस अध्ययन का किसी एक भाषा के काल विशेष में दृष्टिगत होने वाले विशेष रूप के अध्ययन के लिए बहुत महत्व होता है, क्योंकि इसके द्वारा उस काल में प्रचलित उस भाषा के साधु एवं असाधु रूपों के निर्माण एवं प्रचलन का सम्यक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। भारतीय व्याकरण में इस पद्धति का सम्यक परिदर्शन किया जा सकता है। इस क्षेत्र में पाणिनि, पतंजलि, वररुचि जैसे विद्वानों का स्थान प्रमुख है। पाणिनि व्याकरण तो सर्वथा अनूठा है, जिसमें संस्कृत–व्याकरण प्रणालियों का अध्ययन अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से और बड़ी गहनता एवं तत्परता के साथ किया गया है। इस पर पतंजलि का भाष्य इसके महत्व को और भी अधिक बढ़ा देता है। आज तक इसका प्रचार–प्रसार उसी रूप में चला आ रहा है।

आजकल भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वर्णनात्मक पद्धति की बहुलता दृष्टिगोचर होती है, जिसका प्रमुख कारण उसका निजी वैशिष्ट्य है जो उसे अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बना देता है। इसमें किसी भी एक भाषा के ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए ऐसे नियम निर्धारित किए जाते हैं, जो भाषा को समरूपता एवं स्थायित्व प्रदान करते हैं। यद्यपि इस अध्ययन की संबद्धता विशेष रूप से किसी एक सीमा एवं काल तक ही होती है, फिर भी इससे इसकी उपयोगिता कम नहीं हो जाती। कुछ विद्वान इसकी समग्रता पर भी प्रश्न चिह्न लगाने का प्रयास करते हैं और इसके अंतर्गत किसी भाषा की ध्वनि, शब्द रचना, रूप विकास, वाक्य–संगठन आदि का तो अध्ययन कर लेते हैं, किंतु अर्थ का अध्ययन इसके अंतर्गत करना उपयुक्त नहीं समझते। वे यह भूल जाते हैं कि भाषा के ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि बाह्य रूप जहां भाषा के शरीर हैं, वहीं अर्थ उसकी आत्मा है। आत्मा–रहित शरीर जिस प्रकार अपूर्ण एवं निष्प्राण होता है, उसी प्रकार अर्थ के बिना भाषा भी निष्प्राण है। वैसे भी, शब्द और अर्थ की सत्ता पूर्ण रूप से अभिन्न है, अतएव इसके अंतर्गत अर्थ का अध्ययन न करना समीचीन नहीं है। जिस प्रकार यदि हम किसी शब्द अथवा वाक्य को सुनें और वह किसी अर्थ की प्रतीति कराने वाला न हो अथवा हम उसका अर्थ ही न जानते हों तो वह किसी भी प्रकार हमारा उपकारक नहीं हो सकता। इसी प्रकार शब्द–विज्ञान, ध्वनि–विज्ञान, वाक्य–विज्ञान आदि विभिन्न अंगों का निरूपण करने पर भी यदि किसी पद्धति के अंतर्गत उसके अर्थ–विज्ञान का सम्यक अध्ययन नहीं किया जाता तो उससे कोई लाभ होने की आशा नहीं है और साथ ही वह अपूर्ण, अनुपयोगी एवं अपर्याप्त भी समझा जाएगा।

किसी भी भाषा में जितना महत्व ध्वनि, शब्द, पद एवं वाक्य का होता है, उससे भी अधिक उनका अर्थ महत्वपूर्ण होता है। अर्थ ही भाषा का एक ऐसा तत्व है, जो सुसभ्य एवं सुविकसित मानव समाज की भाषा को पशु–पक्षियों की भाषा से भिन्न करता है। अतएव वर्णनात्मक पद्धति के अंतर्गत अर्थ तत्व का भी पूर्ण अध्ययन किया जाना चाहिए, जिससे वह भाषा को समग्र रूप से प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके, क्योंकि यदि कोई पद्धति भाषा के ध्वनि पक्ष तक ही सीमित रही और उसने श्रवण पक्ष को उपेक्षित कर दिया तो उससे भाषा संबंधी विज्ञान को समृद्ध करने की आशा करना व्यर्थ है।

टिप्पणी

1.3.2 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में किसी भाषा के काल विशेष के स्वरूप का अध्ययन अपेक्षित होता है, किंतु इसके विपरीत ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति में एक ही भाषा के विभिन्न कालों एवं सोपानों के स्वरूपों का सापेक्ष अध्ययन किया जाता है। अतएव भाषाविज्ञान की ऐतिहासिक पद्धति वह है, जिसमें एक भाषा या विभिन्न भाषाओं के पद, शब्द, ध्वनि, वाक्य रूप आदि के उद्भव एवं विकास का काल–क्रमानुसार अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। किस भाषा ने अपने पुराने स्वरूप का परित्याग करके नूतन कलेवर धारण किया अथवा किस प्रकार वह विभिन्न विकास के सोपानों को पार करती हुई अपने वर्तमान रूप को प्राप्त हुई है, इन सब तथ्यों की व्याख्या करना ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का कार्य है। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे गत्यात्मक एवं विकासात्मक प्रणाली कहना भी समीचीन समझते हैं। उदाहरण के लिए, संस्कृत भाषा जो सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में दृष्टिगत होती है, वह वैदिक युग से लेकर वैदिक, लौकिक, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सोपानों को पार करती हुई आधुनिक भाषाओं के ध्वनि, पद, वाक्य एवं अर्थ की दृष्टि से किस प्रकार विकसित हुई, यह सब–कुछ बताना ही ऐतिहासिक पद्धति का कार्य है। इसके साथ–साथ, इस विकास अथवा ह्रास के क्या कारण थे, उन कारणों के क्या परिणाम हुए, आदि विषय भी अनायास ही इसके अंतर्गत आ जाते हैं।

भाषाविज्ञान की ऐतिहासिक पद्धति में वर्णनात्मक पद्धति का समावेश भी अनायास ही हो जाता है, क्योंकि क्रमिक विकास का प्रदर्शन करते समय काल विशेष की स्थिति को दिखाना भी आवश्यक हो जाता है। भाषा परिवर्तन के विषय में यह एक अटल सिद्धांत है कि भाषा प्रतिपल निरंतर परिवर्तित होती रहती है, किंतु यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि उसे तत्काल ग्रहण कर पाना संभव नहीं है। परंतु जब यह बढ़कर पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होने लगता है, तभी हमारे अनुभव का विषय बनता है। अतएव यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि भाषा के विकास के भी अनेक सोपान हैं जिनका अंतराल अति सूक्ष्म होता है और उन विकासात्मक सोपानों की भी ऐतिहासिक पद्धति गत्यात्मक होती है। उदाहरण के लिए यदि हमें आज हिंदी में प्रचलित किसी शब्द का उद्भव और विकास जानना है तो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि अनेक सोपानों को पार करते हुए उसके मूल रूप तक पहुंचना होगा।

1.3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

तुलनात्मक पद्धति भाषाविज्ञान की वह धारा अथवा अध्ययन पद्धति है, जिसमें ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक पद्धतियों का भी अंतर्भाव हो जाता है। जिस पद्धति के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, पदों, शब्दों, वाक्यों, रूपों, एवं अर्थों आदि भाषा–अवयवों की परस्पर तुलना करते हुए अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है, उसे भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति कहते हैं।

भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति में वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक दोनों ही पद्धतियों की आवश्यकता होती है, अतएव यह पद्धति भी भाषाविज्ञान की आधारभूत पद्धति है। यह कहना भी उचित प्रतीत होता है कि भाषाविज्ञान का उद्भव तुलनात्मक पद्धति के आधार पर

टिप्पणी

ही हुआ था। जब परस्पर आदान–प्रदान की सुविधा हो जाने पर और विभिन्न भाषा–भाषियों के परस्पर संपर्क से भाषा विद्वानों को यह ज्ञात हुआ कि अनेक भाषा के शब्दों में परस्पर बहुत साम्य है तो उन्हें तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भाषाविज्ञान के आविष्कार की आवश्यकता अनुभव हुई। यह साम्य निम्न तालिका में देखा जा सकता है –

संस्कृत	हिंदी	लैटिन	ग्रीक	फारसी	अबेस्ता	फ्रेंच	डेनिश	अंग्रेजी	जर्मन
पितृ	पिता	पातर	पातर	पिदर	पितर	पेरे	फ़ादर	फादर	वातर
भातृ	भाई	फ्रातर	फातर	बिरादर	ब्रातर	पेरे	ब्रादर	ब्रदर	ब्रूयदर

आज यदि हमें किसी भी विकसित भाषा का सम्यक अध्ययन करना है तो तुलनात्मक पद्धति का सहारा अवश्य लेना पड़ेगा। जैसे आज यदि हम हिंदी ध्वनियों का सम्यक अध्ययन करना चाहें, तो संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के साथ ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, कन्नौजी, बुंदेली, भोजपुरी, मैथिली आदि सभी भाषाओं की ध्वनियों का भी सम्यक अध्ययन करना पड़ेगा। वस्तुतः यह तुलनात्मक पद्धति ही भाषाविज्ञान के मौलिक रूप की प्रतीक है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5.ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत भाषा की संपूर्ण..... का अध्ययन किया जाता है।

6.भाषाविज्ञान के अध्ययन की.....पद्धति अति विशिष्ट एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है।

सही/गलत बताइए–

7.भाषाविज्ञान के इतने सुविस्तृत क्षेत्र को देखते हुए उसकी सीमाओं का निर्धारण कोई सुगम कार्य नहीं है।

8.भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति में वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक दोनों ही पद्धतियों की आवश्यकता नहीं होती है, अतएव यह पद्धति भी भाषाविज्ञान की आधारभूत पद्धति नहीं है।

1.4 भाषाविज्ञान का अन्य अनुशासनों से संबंध

ज्ञान अखंड और अनंत है। विभिन्न नदियों के सागर में मिलने के समान ही वह भी अनंत धाराओं के रूप में प्रवाहित होता हुआ एक ही अखंड ज्योति में जाकर विलीन हो जाता है। जिज्ञासा के क्रम में एक स्थान ऐसा भी आता है, जहां शास्त्र और ज्ञान की काल्पनिक उपाधियां समाप्त हो जाती हैं और एकाकार होकर ज्ञान अविभाज्य रूप में दृष्टिगत होने लगता है। परंतु व्यवहार की दृष्टि से उसके भेद करके अध्ययन करने में थोड़ी सुविधा रहती है और हम उसे विभिन्न शास्त्रों और विज्ञानों का रूप देकर संतुष्ट हो जाते हैं। अतएव इन भेदों के उपरांत भी अनेकता को प्राप्त शास्त्रों और विज्ञानों का अन्योन्याश्रित संबंध बना ही रहता है। कुछ शास्त्र परस्पर निरपेक्ष भी होते हैं, किंतु कुछ परस्पर सापेक्ष होते हैं। यहां भाषाविज्ञान के सापेक्ष शास्त्रों का अध्ययन ही अभिप्रेत है।

भाषाविज्ञान, भाषा का क्रमबद्ध ज्ञान है। भाषा मानव जीवन का अत्यंत उपकारक माध्यम है। अपने अनेक मंतव्य और भाव हम परस्पर भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त कर सकते हैं, अर्थात भाषा के माध्यम से ही हम एक–दूसरे के विचारों से अवगत होते हैं, अपनी इच्छा या अभिलाषा व्यक्त करते हैं और लोक–व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं। भाषा ही हमें ज्ञान–विज्ञान के अनुसंधान में सहायता प्रदान करती है और भाषा से ही हम प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर प्रकृति के विविध रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ होते हैं। जब भाषा हमारे जीवन, जगत, ज्ञान–विज्ञान के सभी क्षेत्रों में अपना अधिकार रखती है, तब भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषाविज्ञान का संबंध ज्ञान–विज्ञान की अन्य शाखाओं एवं ज्ञान विज्ञान के प्रतिपादक विविध शास्त्रों से होना स्वाभाविक है। भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विद्वान भाषाविज्ञान का विविध शास्त्रों से बड़ा ही निकट एवं घनिष्ठ संबंध मानते हैं।

• भाषाविज्ञान और व्याकरण का संबंध

टिप्पणी

भाषाविज्ञान के वास्तविक रूप को समझने के लिए व्याकरण के अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। इन दोनों का घनिष्ठ संबंध है। एक का अध्ययन करते हुए दूसरे का ज्ञान प्राप्त होना स्वाभाविक है। व्याकरण भाषा के टुकड़े–टुकड़े करके उसके ठीक स्वरूप को सामने लाता है, तथा भाषाविज्ञान को पढ़ते हुए व्याकरण की जानकारी हो जाती है। जैसा कि भर्तृहरि ने कहा भी है –

साधुत्व ज्ञानं विषया सैवा व्याकरण स्मृतिः

अर्थात, "व्याकरण का कार्य भाषा तथा उसके शब्दों की साधुता तथा असाधुता का ज्ञान प्राप्त कराना है।"

प्राचीन काल में व्याकरण और भाषाविज्ञान में कोई विशेष अंतर नहीं माना जाता था अतः भाषाविज्ञान को 'तुलनात्मक व्याकरण' कहा गया था। परंतु दोनों में कुछ समानता होते हुए भी पर्याप्त भेद दिखाई देता है।

किसी भी भाषा का शुद्ध उच्चारण, शुद्ध प्रयोग एवं शुद्ध लेखन व्याकरण द्वारा ही संभव है। व्याकरण भाषा–विज्ञान को विरासत रूप में बहुत कुछ देता है। वह किसी भाषा का दिग्दर्शक ही नहीं होता अपितु पथ–प्रदर्शक भी होता है। व्याकरण किसी समय–विशेष के एवं भाषा के शुद्ध प्रयोग संबंधी नियमों का समूह है, जबकि भाषा–विज्ञान की वर्णनात्मक पद्धति द्वारा किसी भी भाषा की समस्त संरचनात्मक विशेषताओं का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। व्याकरण भाषा–विज्ञान द्वारा प्रस्तुत सामग्री का प्रयोग करते हुए ऐसे नियमों का निर्माण करता है, जिनसे भाषा का शुद्ध प्रयोग किया जा सके। व्याकरण किसी भाषा तक ही सीमित रहता है, जबकि भाषा–विज्ञान भाषाओं के व्याकरणिक अध्ययन के साथ, एक साथ कई भाषाओं का तुलनात्मक विवेचन भी करता है। व्याकरण किसी एक भाषा के सिद्ध एवं निष्पन्न रूपों की ही व्याख्या एवं मीमांसा करता है, जबकि भाषा–विज्ञान सिद्ध एवं असिद्ध, प्रचलित एवं अप्रचलित तथा शुद्ध एवं अशुद्ध, सभी रूपों की मीमांसा एवं विवेचना करता है। व्याकरण में केवल संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, प्रत्यय आदि रूपों का ही विवेचन किया जाता है जबकि भाषा–विज्ञान में इन भाषा रूपों के अतिरिक्त ध्वनियों, वाक्यों, अर्थों का भी अध्ययन किया जाता है। व्याकरण केवल इतना ही बताता है कि 'पाषाण' शब्द एकवचन है, संज्ञा है, पुल्लिंग है आदि–आदि। पर भाषा–विज्ञान इस सब के अलावा यह भी बतलाता है कि यह किस तरह अपने मूल रूप 'पाषाण' से विकृत होकर पहले 'प्रस्तर' बना और फिर 'पत्थर' बना। व्याकरण एक निश्चित काल तक सीमित रहता है, जबकि भाषा–विज्ञान का क्षेत्र इससे कहीं ज्यादा विस्तृत है। व्याकरण केवल नियमों या सिद्धांतों के आधार पर भाषा की विवेचना करता है, जबकि भाषा–विज्ञान भाषा के अनुशीलन के आधार पर नियमों का निर्धारण करता है। व्याकरण भाषा की दार्शनिक व्याख्या करता है, जबकि भाषा–विज्ञान भाषा का वर्गीकरण एवं विश्लेषण करके उसकी वैज्ञानिक व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। व्याकरण केवल नियम, उपनियम एवं अपवादों की ही व्याख्या करता है जबकि भाषा–विज्ञान इससे दो कदम और आगे बढ़कर भाषा की ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक व्याख्या करता हुआ प्रत्येक शब्द के क्रमिक विकास का इतिहास भी प्रस्तुत करता है।

टिप्पणी

वस्तुतः भाषा–विज्ञान यथार्थपरक है क्योंकि वह भाषा में प्रचलित सभी प्रयोगों को ग्रहण कर उनका अध्ययन करता है, जबकि व्याकरण आदर्शवादी है। उसमें केवल शिष्टजनों की भाषा ही स्थान पाती है। भाषा–विज्ञान अपने अनुसंधान की दिशा में प्रवृत्त होकर खोज करता है कि अमुक शब्द का मूल रूप क्या था और किन परिस्थितियों से गुजरता हुआ वह अपने वर्तमान रूप तक पहुंचा है। व्याकरण ही भाषा–विज्ञान को विविध ध्वनियों, रूपों एवं प्रयोगों से परिचित कराता है। यही नहीं वह भाषा की प्रवृत्ति एवं उसके प्रयोगों से भाषा–विज्ञान को अवगत तो कराता ही है, साथ ही साथ वह यह भी बताता है कि अमुक भाषा में कितनी ध्वनियां प्रचलित हैं, कितने वर्णों का प्रयोग होता है, उनके उच्चारण की विधि क्या है? उनमें से कौन–सी सार्थक ध्वनियां हैं और कौन–सी निरर्थक, और शब्दों के वर्तमान रूप कौन से हैं तथा उनके प्रयोगों में क्या विशेषता है? इस प्रकार व्याकरण भाषा–विज्ञान को व्यवस्थित रूप देने के लिए सर्वाधिक कच्चा माल (सहायक सामग्री) प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त व्याकरण, भाषा–विज्ञान के स्वन विज्ञान, पद–विज्ञान, शब्द–विज्ञान और अर्थ–विज्ञान के अध्ययन में भी काफी सहायता प्रदान करता है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि दोनों में अंतर की अपेक्षा संबंध अधिक है।

भाषाविज्ञान और व्याकरण में साम्य

1. भाषाविज्ञान और व्याकरण दोनों का संबंध भाषा से है। दोनों ही भाषा के विषय में अध्ययन करते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं और उसके संबंध में नवीन तथ्यों तथा नियमों पर प्रकाश डालते हैं।
2. व्याकरण में चार दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है –

(क) वर्णनात्मक (ख) विश्लेषणात्मक

(ग) ऐतिहासिक (घ) तुलनात्मक

भाषाविज्ञान में भी इन्हीं दृष्टिकोणों के आधार पर अध्ययन किया जाता है। विश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक रूपों में भाषाविज्ञान और व्याकरण प्रायः अभिन्न से हैं। अब कुछ विद्वान इन रूपों को भाषाविज्ञान के अंतर्गत मानते हैं। केवल व्याकरण को वर्णनात्मक रूप प्रदान करते हैं।

• भाषाविज्ञान और साहित्य

भाषाविज्ञान और साहित्य दोनों भाष्य पर आधारित हैं। साहित्य भाषा का स्थायी रूप है। भाषा के अभाव में दोनों का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। भाषाविज्ञान के हेतु साहित्य से पर्याप्त सामग्री मिलती है। भाषा के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का सबल आधार साहित्य ही है। यदि किसी भाषा के वर्तमान बोलचाल रूप के साथ उसका मध्य युगीन तथा प्राचीन साहित्य न प्राप्त हो तो ऐतिहासिक अध्ययन असंभव होगा। किसी भी भाषा का ऐतिहासिक अध्ययन उस भाषा की उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से ही हो सकता है। भाषा का क्रमिक विकास कैसे हुआ और आज किस रूप में विकसित है, आदि प्रश्नों का हल साहित्य के द्वारा ही संभव होता है। साहित्य ही यह बता सकता है कि प्राचीन वैदिक भाषा को किस तरह व्याकरण के नियमों से शुद्ध एवं परिष्कृत करके उसके संस्कृत रूप का

टिप्पणी

विकास हुआ, क्योंकि वैदिक भाषा के उत्तरकाल में लिखित 'रामायण', 'महाभारत' आदि संस्कृत के महाकाव्यों में वह रूप विद्यमान है। साहित्य से ही यह बोध होता है कि किस तरह व्याकरण के नियमों से मुक्त कोई दूसरी भाषा भी जनसाधारण में उस समय प्रचलित थी, जिस समय वैदिक भाषा का संस्कार और परिष्कार हो रहा था, क्योंकि प्राकृत एवं पालि भाषा का साहित्य उस भाषा को आज तक संजोए हुए है। साहित्य से ही यह पता लगता है कि किस तरह संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से हिंदी की उत्पत्ति हुई, और खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, बघेली, भोजपुरी आदि बोलियों का प्रादुर्भाव हुआ तथा खड़ी बोली उत्तरोत्तर विकसित होती हुई आज एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में प्रचलित है। वास्तव में साहित्य ने ही भाषा–विज्ञान के अध्ययन को जन्म दिया है।

ऐसी स्थिति में दो या दो से अधिक भाषाओं के साहित्य के अभाव में तुलनात्मक अध्ययन भी असंभव–सा होगा। हिंदी के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन हेतु संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश का भी साहित्य–आधार आवश्यक है। भाषा की विभिन्न ध्वनियों तथा शब्दों के विकास–ह्रास का अध्ययन भी साहित्य के माध्यम से होता है। साहित्य भी भाषाविज्ञान से पर्याप्त सहायता लेता है। भाषाविज्ञान साहित्य के विभिन्न क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग और उनका अर्थ–निर्णय प्रस्तुत करता है। भाषाविज्ञान के सहयोग से साहित्यिक कृति के शुद्ध पाठ का निर्धारण संभव होता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान और साहित्य में घनिष्ठ संबंध है और दोनों एक–दूसरे के अत्यंत सहयोगी हैं।

• भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान

भाषा को विज्ञान की वाहिका माना जाता है। विचारों का सीधा संबंध मस्तिष्क से है। भाषा की आंतरिक गुत्थियों को सुलझाने में मनोविज्ञान भाषाविज्ञान की बहुत मदद करता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान में गहरा संबंध है। भाषा के उद्‌भव एवं प्रारंभिक रूप की जानकारी प्राप्त करने में बाल–मनोविज्ञान और अविकसित लोगों का मनोविज्ञान बहुत बड़े सहायक हैं। वाक्य विज्ञान के अध्ययन एवं ध्वनि परिवर्तन के कारणों की जानकारी प्राप्त करने के लिए मनोविज्ञान सहायता करता है उसी प्रकार भाषाविज्ञान भी मनोविज्ञान का कई विषयों में बहुत बड़ा सहायक है; जैसे मानसिक रूप से असंतुलित लोगों का मनोवैज्ञानिक उपचार करने वाले डॉक्टरों को उनके द्वारा कही जाने वाली बेतुकी बातों का विश्लेषण करने में और पागलों की मानसिक गुत्थियों व ग्रंथियों का पता लगाने में भाषाविज्ञान की सहायता ली जाती है। इन दोनों का एक'–दूसरे का सहायक होने के कारण इनमें एक घनिष्ठ संबंध है।

• भाषाविज्ञान और शरीरविज्ञान

जब हम भाषा के शब्दों का उच्चारण करते हैं तो स्वर–यंत्र, स्वर–तंत्री, नासिका विवर, कौवा, तालु, जीभ, दांत, कंठ, मूर्धा, ओठ और नाक के कारण हमारे मुख से निकलने वाली ध्वनियों में क्या–क्या परिवर्तन आते हैं इनका अध्ययन करने में शरीरविज्ञान की सहायता ली जाती है। भाषाविज्ञान कर्ण द्वारा ध्वनि को श्रव्य करने और लिखित भाषाओं को आंखों द्वारा पढ़े जाने की प्रक्रिया का अध्ययन भी शरीर विज्ञान की मदद से ही करता है। अतः भाषाविज्ञान और शरीरविज्ञान में गहरा संबंध है।

टिप्पणी

मानव के शरीर की संरचना का लेखा–जोखा शरीर–विज्ञान के अंतर्गत सन्निहित होता है। शरीर–विज्ञान से ही यह स्पष्ट होता है कि मानव शरीर के फेफड़ों, स्वर–तंत्रियों, कंठ–पिटक, काकल, तालू, मूर्धा, वर्त्स, दंत मूल, दंत, जिह्वा, ओष्ठ आदि ध्वनि उत्पादन एवं ध्वनि उच्चारण में सहायक अवयवों की संरचना कैसी है और इनसे किस तरह क्रिया होती है, किस तरह मुख से निःसृत ध्वनि को ग्रहण करने वाले कानों की संरचना हुई, कैसे वे ध्वनि को ग्रहण करते हैं, कैसे ध्वनि कर्ण–कुहरों के माध्यम से मस्तिष्क तक पहुंचती है, कैसे मस्तिष्क को ध्वनि के माध्यम से पदार्थ, भाव या विचार का बोध होता है, मस्तिष्क की संरचना कैसे हुई, मस्तिष्क कैसे कार्य करता है आदि विविध शरीर संबंधी जिज्ञासाओं का समाधान शरीर–विज्ञान ही करता है। इसी प्रकार ध्वनियों का उच्चारण करते या सुनते समय शारीरिक अवयवों में जो प्रतिक्रियाएं होती हैं उसी के आधार पर भाषा विज्ञान का रूप भी निर्धारित होता है जैसे– दांतों के प्रयोग से बोले जाने वाली ध्वनियां दंत्य और होंठों के प्रयोग से बोली जाने वाली ध्वनियां ओष्ठ्य कहलाती हैं।

• भाषाविज्ञान और भूगोल

प्रायः देखने में आया है कि किसी क्षेत्र की स्थानीय स्थिति भाषा को काफी प्रभावित करती है। किसी भी क्षेत्र के आस–पास पाए जाने वाले जीव–जंतुओं, वनस्पतियों आदि के नाम, गुण, दोष आदि के लिए वहां की स्थानीय भाषा में कुछ शब्दों का प्रयोग होता है। भौगोलिक स्थिति ही किसी भाषा का अधिक क्षेत्र में फैलाव होने या कम क्षेत्र में फैलाव होने का कारण बनती है। जहां भौगोलिक स्थितियां लोगों के आपसी मेल–मिलाप, व्यापार, सामाजिक संबंधों में रुकावट डालती हैं; जैसे समुद्र, रेगिस्तान, दुर्गम पहाड़ आदि, वहां भाषा का प्रसार कम होगा। इसके विपरीत भौगोलिक स्थितियां जहां लोगों के मेल–मिलाप, व्यापार एवं सामाजिक संबंधों में रुकावट का कारण नहीं बनतीं वहां विभिन्न बोलियों और भाषा का प्रसार हो जाता है। भाषाविज्ञान की एक शाखा भाषा–भूगोल है। किसी स्थान के प्रागैतिहासिक काल के भूगोल के अध्ययन में भाषाविज्ञान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भाषा–भूगोल और भूगोल आपस में अधिक संबद्ध हैं जिसकी अध्ययन पद्धति काफी हद तक भूगोल की पद्धति पर आश्रित है।

• भाषाविज्ञान और इतिहास

इतिहास एवं भाषाविज्ञान के संबंध को निम्नलिखित तीन रूपों में वर्णित किया जा सकता है–

(1) **सामाजिक इतिहास**– भाषाविज्ञान और सामाजिक इतिहास में गहरा संबंध है। सामाजिक व्यवस्था और समाज की परंपराएं भाषा को प्रभावित करती हैं। प्रागैतिहासिक काल के समय के अध्ययन हेतु उस समय की भाषा से भी सहायता ली जाती है। मूल भारोपीय लोगों की सामाजिक दशा कैसी थी, यह भारोपीय परिवार की भाषाओं के अध्ययन के आधार पर ही जाना जा सकता है। प्राचीन साहित्य में उस औरत को विधवा कहा जाता था जिसका पति मर जाता था लेकिन

टिप्पणी

इस प्राचीन साहित्य में उस व्यक्ति के लिए जिसकी पत्नी मर जाती थी, कोई शब्द नहीं था। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पति तो पत्नी की मृत्यु उपरांत शादी कर लेता था इसलिए पत्नीविहीन पति के लिए किसी शब्द का उल्लेख नहीं मिलता लेकिन इसके विपरीत पतिविहीन पत्नी पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी, इसलिए संभवतः उसके संबोधन के लिए 'विधवा' शब्द तय किया गया हो। भारतीय भाषाओं में परिवारों के रिश्तों को अलग–अलग नामों से संबोधित किया जाता है; जैसे माता–पिता, चाचा, ताऊ, भाई–बहन, फूफा, साला, जीजा, मामा आदि लेकिन यूरोपीय भाषाओं में पारिवारिक रिश्तों के लिए अलग–अलग शब्द नहीं है। संस्कृत भाषा में बुआ को 'पितृस्वसा' कहा जाता है लेकिन फूफा के लिए कोई शब्द नहीं मिलता। इसी प्रकार मौसी को 'मातृस्वसा' कहा जाता है लेकिन मौसा के लिए कोई शब्द नहीं मिलता। इससे उस समय की कुटुम्ब अवस्था की जानकारी मिलती है।

(2) **धार्मिक इतिहास**– धर्म का भाषा पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। धर्म एवं सांप्रदायिकता के कारण ही भारत में हिंदी–उर्दू की समस्या पैदा हुई। धार्मिक क्रियाओं के लोप के साथ–साथ उनके लिए प्रचलित शब्दों का भी लोप हो गया। लोग अपने बच्चों के जो नाम रखते हैं उनसे भी कौन–किस धर्म का अनुयायी है इसका पता चल जाता है। मध्ययुग का इतिहास तत्कालीन ब्रजभाषा एवं अवधी के महत्व के कारणों पर प्रकाश डालता है। एक देश के धर्म का दूसरे देश पर पड़ने वाले प्रभाव के अध्ययन में धर्म से संबंधित शब्दों का अध्ययन बड़ा सहायक होता है। भाषाविज्ञान से धर्म के प्राचीन रूप की कई गुत्थियां सुलझाई जा सकती हैं। अतः भाषाविज्ञान और धार्मिक इतिहास एक–दूसरे के सहायक हैं।

(3) **राजनीतिक इतिहास**– किसी देश में किसी अन्य देश का राज्य होने से किस प्रकार दोनों देशों की भाषाएं एक–दूसरे की भाषाओं से प्रभावित होती हैं इसका स्पष्ट उदाहरण है हमारे देश भारत में अंग्रेजों का शासन। अंग्रेजी भाषा से भारत की भाषाएं और भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी भाषा प्रभावित हुई जिसके परिणामस्वरूप कई हजार अंग्रेजी शब्दों का भारतीय भाषाओं में प्रवेश हो गया और भारतीय भाषाओं के कई हजार शब्दों ने अंग्रेजी भाषा में प्रवेश कर लिया। राजनीतिक इतिहास से ही पता चलता है कि किसी भाषा में अन्य भाषा के शब्दों के प्रवेश के पीछे क्या कारण है या क्या कारण थे। इस प्रकार भाषाविज्ञान और राजनीतिक इतिहास में गहरा संबंध है।

• भाषाविज्ञान और भौतिकशास्त्र

हम अपने पास बैठे किसी व्यक्ति से बात करते समय जो ध्वनियां मुंह से निकालते हैं, हमें लगता है कि वे ध्वनियां सीधी उस व्यक्ति के कानों तक पहुंच गईं और उसने हमारी बात का उत्तर दे दिया, लेकिन ऐसा नहीं होता। हमारे मुंह से निकली ध्वनियां सामने बैठे व्यक्ति तक पहुंचने से पहले आकाश में लहरों के रूप में चलती हैं और उसके बाद सुनने वाले के कानों तक पहुंचती हैं। इन लहरों का अध्ययन करने में भौतिकशास्त्र हमें सहायता प्रदान

टिप्पणी

करता है। इन लहरों के स्वरूप एवं भाषा ध्वनियों और अन्य लहरों में क्या अंतर होता है इसका पता हमें भौतिक शास्त्र की सहायता से ही चलता है।

• भाषाविज्ञान और तर्कशास्त्र

भाषाविज्ञान व्याख्या प्रधान विषय है न कि वर्णनात्मक विज्ञान। व्याख्या के लिए तर्क का होना आवश्यक है, इसलिए भाषाविज्ञान और तर्क शास्त्र के संबंध को यह जानते हुए भी कि तर्कशास्त्र का भाषा विज्ञान से कोई सीधा संबंध नहीं होता, फिर भी इनमें कुछ संबंध है इस बात को नकारा नहीं जा सकता। यास्क मुनि ने अपने अर्थविज्ञान–विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ 'निरुक्त' में तर्कशास्त्र से बहुत सहायता ली है। दूसरी ओर तर्कशास्त्र भी भाषाविज्ञान का कम ऋणी नहीं है। तर्क भाषा के ही सहारे चलता है, अतएव उसे अपने अध्ययन में बड़ी सतर्कता से प्रतिक्षण अपने सामने आने वाले शब्दों एवं वाक्यों पर वैज्ञानिक दृष्टि रखनी पड़ती है।

• भाषाविज्ञान और दर्शन

दर्शन और भाषाविज्ञान दोनों के घनिष्ठ संबंध को देखते हुए भारत में दार्शनिकों, मीमांसकों, नैयायिकों द्वारा अपने विषयों पर विचार करने के साथ–साथ भाषाविज्ञान की भी अनेक बातों पर विचार किया गया। मीमांसा के अन्विताविधानवाद सिद्धांत के अनुसार भाषा में वाक्य की सत्ता मूल है–ऐसा माना गया है। इस सिद्धांत में पद को वाक्य के तोड़े हुए अंश माना गया है। इसके विपरीत, अभिहितान्वयवाद के अनुसार पद को सत्ता माना गया है और वाक्य को उसी का जोड़ा हुआ रूप। कुछ समय तक भाषाविज्ञान की अर्थविज्ञान–शाखा को भी दर्शन के अंतर्गत माना जाता रहा है। दर्शन और भाषाविज्ञान एक–दूसरे से संबद्ध हैं।

• भाषाविज्ञान और मानवविज्ञान

मानवविज्ञान से भाषाविज्ञान का निकट का संबंध है। भाषा का मानव की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग होने के कारण, सांस्कृतिक मानवविज्ञान के अध्ययन में स्थान होना अनिवार्य है। लेकिन मानवविज्ञान के अंतर्गत आने वाले उपविज्ञानों में भाषाविज्ञान अपेक्षाकृत स्वयं में पूर्ण और स्वतंत्र है। शब्द और भाषा दोनों अपने–आप में अंतिम रूप से स्वयं पूर्ण न होकर उन विशिष्ट समाजों की सांस्कृतिक चेतना पर आश्रित होते हैं जिनमें उनका विकास होता है। शब्द व्यक्ति और समाज की चेतनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। भाषा तथा उसके स्वरूप और गठन का अध्ययन जीवन के अन्य पक्षों से अलग भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है। जिस तरह भाषा के स्वरूप का विश्लेषण हमें सांस्कृतिक समस्याओं के मर्म तक पहुंचने में सहायक हो सकता है, उसी तरह संस्कृतियों के गठन तथा उनकी प्रक्रियाओं संबंधी ज्ञान से हमें भाषाविज्ञान की कतिपय उलझी हुई समस्याओं को समझने में भी सहायता मिल सकती है। अतः भाषा वैज्ञानिक और मानव विज्ञानवेत्ताओं ने नृतात्विक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया है। मानव विज्ञान के आधार पर हम न केवल अपने सांस्कृतिक इतिहास की रूपरेखा तैयार करते हैं, वरन हमें उससे उन सर्वदेशीय तथा सर्वकालीन सामाजिक नियमों की खोज और निरूपण में भी सहायता मिलती है जिनसे हम मानवसमाज के संगठन और प्रक्रियाओं को भली–भांति समझ सकते हैं।

इस प्रकार अनेक विज्ञानों से मिलकर भाषाविज्ञान का निरंतर विकास हुआ।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. भाषाविज्ञान, भाषा का..... .....ज्ञान है।
10. भाषाविज्ञान में भाषा रूपों के अतिरिक्त ....., वाक्यों, अर्थों आदि का अध्ययन किया जाता है।

सही/गलत बताइए–

11. किसी देश में किसी अन्य देश का राज्य होना दोनों ही देश की भाषाओं को प्रभावित करता है।
12. सामाजिक व्यवस्था तथा परंपराओं का भी प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर भाषा से भी सामाजिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

टिप्पणी

1.5 अनुप्रयुक्त एवं समाज भाषाविज्ञान : अभिप्राय और स्वरूप

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान के अंतर्गत सैद्धांतिक भाषाविज्ञान में प्रस्तुत सिद्धांतों का अनुप्रयोग क्षेत्र विशेष में किया जाता है। अतः यह शुद्ध विज्ञान नहीं है। यह वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित तकनीक है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में 'अनुप्रयुक्त' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के शब्द 'अप्लाइड' का समानार्थी/प्रतिशब्द है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में भाषाविज्ञान से प्राप्त सिद्धांतों का मानव जाति की जरूरतों के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोग किया जाता है। प्रत्येक विज्ञान के तीन पक्ष माने गए हैं– सिद्धांत पक्ष, अनुप्रयोग पक्ष और व्यावहारिक पक्ष। इस तरह अनुप्रयोग पक्ष सिद्धांत और व्यवहार के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। भाषा के दो पक्ष हैं– सामर्थ्य एवं निष्पादन। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का संबंध निष्पादन से है। 'कैसे' पर आधारित प्रश्नों में इसका मूल ढूंढ़ा जाता है; जैसे कैसे उच्चारण होगा, कैसे पदरचना होगी, कैसे वाक्यरचना होगी और कैसे अर्थ का संप्रेषण होगा। विज्ञान का सिद्धांत पक्ष 'कैसे' पर आधारित होता है। इसके अंतर्गत विवेच्य विषय के स्वरूप का विश्लेषण करके सिद्धांतों की स्थापना की जाती है। इन सिद्धांतों के आधार पर 'कैसे' पर आधारित प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत किया जाना अनुप्रयोग पक्ष कहलाता है। भाषा विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर 'कैसे' पर आधारित प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करना अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का लक्ष्य होता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के उदाहरण हैं– भारत में केंद्रीय भारतीय भाषा संस्थान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, केंद्रीय अंग्रेजी एवं विदेश भाषा संस्थान आदि। इन संस्थानों में हिंदी और अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं का भाषाविज्ञान द्वारा प्रशिक्षण दिया जाना अनुप्रयुक्त भाषा–नियोजन से भी संबंधित है। यह विज्ञान भाषा में क्या सिखाया जाए, कब और कैसे सिखाया जाए और इनको कैसे व्यवस्थित किया जाना चाहिए, जैसे प्रश्नों का उत्तर देता है। इस प्रकार भाषा शिक्षण का पाठ्यक्रम और शिक्षण सामग्री तैयार करने में इस विज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का प्रयोग भाषा–शिक्षण की समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने के लिए भी किया जाता है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को सैद्धांतिक भाषाविज्ञान पर आधारित एक तकनीक अथवा यह स्वयं एक विज्ञान है– इनमें से क्या माना जाए, इस विषय में दो मत सामने आते हैं। वे भाषा विज्ञानी जो इसे विज्ञान मानने के पक्ष में हैं, उनका कहना है कि सच है कि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान द्वारा किसी क्षेत्र में उपयोग हेतु सैद्धांतिक भाषाविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर तथ्यों का चयन किया जाता है, लेकिन इस चयन की प्रक्रिया के मूल में कार्य तो चयन का सिद्धांत, प्रासंगिकता का सिद्धांत और प्रयोजनीयता का सिद्धांत आदि सिद्धांत ही करते हैं। इस प्रकार इसके अपने सिद्धांत भी हैं अतः इसे विज्ञान ही माना जाना चाहिए।

दूसरी ओर इसे विज्ञान न मानकर भाषा विज्ञान पर आधारित एक तकनीक मानने वालों का कहना है कि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान, भाषाविज्ञान के सिद्धांतों को लेकर ही आगे बढ़ता है, इसका अपना कोई सिद्धांत नहीं होता, जबकि विज्ञान का सिद्धांत पक्ष होना

टिप्पणी

अनिवार्य होता है, इसलिए इसे विज्ञान न मानकर सैद्धांतिक भाषाविज्ञान पर आधारित केवल एक तकनीक ही मानना चाहिए। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का उद्‌भव भाषाशिक्षण की समस्याओं के समाधान के लिए हुआ था। इसलिए इसे भाषाशिक्षण क्षेत्र के लिए उपयोगी समझा जाता था लेकिन अब इसे संगणक भाषाविज्ञान और समाज भाषाविज्ञान से भी जोड़ा जा रहा है। अंतः अब अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हो गया है।

समाज भाषाविज्ञान

समाज भाषाविज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा और इस भाषा को जिस समाज के व्यक्तियों द्वारा बोला जाता है उनके बीच के संबंध का अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। इसमें समाज के भाषा पर पड़ने वाले प्रभावों और भाषा के समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञान में भाषा की सबसे बड़ी इकाई 'प्रोक्ति' होती है। समाज भाषाविज्ञान द्वारा समाज के परिप्रेक्ष्य में भाषा का वास्तविक अध्ययन किया जाता है। समाज भाषा वैज्ञानिक समाज भाषाविज्ञान को ही वास्तविक भाषाविज्ञान मानते हैं।

लेबाव के कथनानुसार, "समाज भाषाविज्ञान ऐसी कोई अलग विधा नहीं मानी जा सकती, क्योंकि समाज भाषाविज्ञान ही तो वास्तविक भाषाविज्ञान है।" संरचना की दृष्टि से मानक भाषा, अमानक भाषा और भाषा एवं बोली में अंतर दिखाना भाषाविज्ञान के लिए असंभव है। समाज भाषाविज्ञान ही इनके अंतर को प्रदर्शित कर सकता है। ज्ञान क्षेत्र के संदर्भ में भाषाविज्ञान और उसके सिद्धांत का अनुप्रयोग ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने हेतु किया जाता है। इस संदर्भ के अंतर्गत समाज भाषाविज्ञान, भाषाविज्ञान की सबसे प्रभावशाली शाखा है।

आज समाज भाषाविज्ञान का केंद्र भाषा–प्रयोक्ता और वे भाषा प्रयोग हैं, जो प्रयोक्ता द्वारा किए जाते हैं। समाज भाषाविज्ञान भाषा और समाज के बीच गहरा और अटूट संबंध मानता है। भाषा और समाज का सीधा संबंध मनुष्य से है इसलिए ये एक–दूसरे के लिए संदर्भ बन जाते हैं। मनुष्य भाषा सीखता भी समाज में ही है और उसका प्रयोग भी समाज में ही करता है। इसलिए समाज भाषाविज्ञान की दृष्टि में भाषा को सीखने में 'परिवेश' अत्यधिक महत्वपूर्ण है। समाज भाषाविज्ञान की दृष्टि से परिवेश का अर्थ है– जिस समाज में हम रहते हैं उसकी व्यवस्था, उसके मूल्य, उसकी संस्कृति एवं समाज के लोग। समाज की व्यवस्था, मूल्य, संस्कृति और लोगों को मिलाकर बनी सामाजिक संरचना के अनुरूप ही भाषा अपना आकार ग्रहण करती है। समाज की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं– समाज ऐसे लोगों का समूह होता है जो अपने निश्चित उद्देश्यों अथवा अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मिलजुल कर रहते हैं। समाज भाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन करते समय समाज में भाषा प्रयोग के नियमों की जानकारी पर बल देता है, न कि भाषा के व्याकरणिक नियमों पर। भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग जब भाषा की प्रकृति और उसके अपने प्रयोजन को समझने के लिए किया जाता है तब उसे समाज भाषाविज्ञान कहा जाता है। समाज भाषाविज्ञान मानता है कि सामाजिक तथ्य भाषा में अंतर्मुक्त रहते हैं क्योंकि सामाजिक संरचना भाषा संरचना अथवा भाषा व्यवहार को

टिप्पणी

निर्धारित और नियंत्रित करती है। इसीलिए समाज में वक्ता और श्रोता की आयु और उनका निवास क्षेत्र, उनका सामाजिक वर्ग आदि भेद भाषा प्रयोग में लाते हैं। इन भेदों में शब्दों का चयन, वाक्यों का चयन आदि सभी सामाजिक नियमों से बंधे होते हैं। संभवतः इसीलिए समाज भाषाविज्ञान को आज भाषाविज्ञान के पर्याय के रूप में देखा जा रहा है।

1.6 व्यतिरेकी भाषाविज्ञान

व्यतिरेकी भाषा विज्ञान– व्यतिरेक का अर्थ है–विरोध। व्यतिरेकी भाषा विज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान का ही एक रूप है जिसमें दो भाषाओं की तुलना में विषमताओं पर अधिक और समानताओं पर कम ध्यान केंद्रित किया जाता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं–19वीं शताब्दी में शुरू हुआ। तुलना करने पर जिन असमान और विरोधी बातों का पता चलता है उन्हें भाषा विज्ञान में उपयोगी नहीं माना जाता। लेकिन उनका प्रतिशत अधिक होने पर संबद्ध भाषाओं को एक स्रोत अथवा परिवार की भाषाएं नहीं माना जाता था। व्यतिरेकी भाषा विज्ञान का विकास द्विभाषिकता की आवश्यकता तथा विस्तार से संबद्ध है। द्विभाषिकता की स्थिति कमोवेश सदैव रही है।

बहुभाषाई राष्ट्र में जहां अनेक प्रांतीय भाषाएं तथा बोलियां बोली जाती हैं वहां एक क्षेत्र का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र के व्यक्तियों के संपर्क में बराबर आता है और उसे दूसरी भाषाओं को सीखने और समझने की आवश्यकता पड़ती है। दोनों भाषाओं में जो अंतर होते हैं उनके कारण भाषा सीखने में कठिनाई होती है। दूसरी भाषा सीखने के क्रम में उसका ध्यान समानता और विषमता पर केंद्रित रहता है। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर अंतर मालूम हो जाने पर उन पर बल देकर भाषा सिखाना आसान हो जाता है। एक भाषा का दूसरी भाषा में अनुवाद करते समय भी दोनों भाषाओं में अंतर होने के कारण अनुवाद करने में कठिनाई होती है। व्यतिरेकी भाषाविज्ञान को अनुवाद और भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी माना जाता है।

गतिविधि

भाषाविज्ञान के अन्य अनुशासनों से संबंध दिखाते हुए एक चार्ट बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

साधारणतः किसी राष्ट्र में राष्ट्रभाषा प्रशासनिक कार्यों में प्रचलित होकर स्वयमेव राजभाषा की अधिकारिणी हो जाती है।

1.7 सारांश

मनुष्य के जीवन में भाषा का स्थान अहम है। यह विचारों की अभिव्यक्ति का, संवाद के संप्रेषण का एक माध्यम है। समय के साथ–साथ इसके विकास में असंख्य परिवर्तन हुए और हो रहे हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

13. भाषाविज्ञान भाषाओं के अध्ययन विश्लेषण का.....है।
14. ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए भाषाविज्ञान और उसके सिद्धांतों का प्रयोग..... भाषाविज्ञान है।

सही/गलत बताइए–

15. भाषाविज्ञान भाषा की आंतरिक प्रकृति पर प्रकाश डालता है तथा भाषा संबंधी सिद्धांतों का निर्धारण करता है।
16. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में मुख्यतः भाषा शिक्षण, कोशकला, अनुवाद, शैलीय विश्लेषण तथा वाग्दोष सुधार आदि आते हैं।

टिप्पणी

आज का युग वैज्ञानिक युग है। अतः भाषा के अध्ययन के लिए तदनुरूप तुलनात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपेक्षित है, क्योंकि आज प्रत्येक विषय के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सर्वाधिक महत्व है। अतः भाषा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इस अध्ययन की सुविधा के लिए विश्व की भाषाओं का आकृति–प्रकृति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार है– पदों तथा वाक्यों की रचना। पद किस प्रकार बनते हैं और वाक्यों की रचना किस प्रकार होती है, इस आधार पर किए जाने वाले वर्गीकरण को आकृतिमूलक कहते हैं। प्रारंभ में आकृतिमूलक–वर्गीकरण बहुत दिनों तक मान्य रहा है। भाषाविज्ञान का एक प्रमुख अंग भाषाओं का रूपविश्लेषण है। यह वर्गीकरण प्रधानतः रूप–विश्लेषण पर आधारित है अतः इसका महत्व स्वीकार्य है। पारिवारिक वर्गीकरण में रचनातत्व के साथ ही अर्थतत्व पर भी ध्यान दिया जाता है। इन भाषाओं के रचना साम्य के साथ ही अर्थसाम्य या अर्थतत्व पर ध्यान रखना अनिवार्य है।

भाषाविज्ञान के अध्ययन की वर्णनात्मक पद्धति अति विशिष्ट एवं सर्वाधिक लोकप्रिय है। प्राचीनकाल में तो इसका व्यवहार ही सबसे अधिक मात्रा में हुआ करता था। व्याकरण इसका प्राचीन नाम है तथा इसे शिक्षा के छह अंगों में प्रमुख रूप से गिना जाता था। आजकल भाषाविज्ञान के क्षेत्र में वर्णनात्मक पद्धति की बहुलता दृष्टिगोचर होती है, जिसका प्रमुख कारण उसका निजी वैशिष्ट्य है जो उसे अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण बना देता है। इसमें किसी भी एक भाषा के ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि का वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए ऐसे नियम निर्धारित किए जाते हैं, जो भाषा को समरूपता एवं स्थायित्व प्रदान करते हैं। यद्यपि इस अध्ययन की संबद्धता विशेष रूप से किसी एक सीमा एवं काल तक ही होती है, फिर भी इससे इसकी उपयोगिता कम नहीं हो जाती। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में किसी भाषा के काल विशेष के स्वरूप का अध्ययन अपेक्षित होता है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पद्धति में एक ही भाषा के विभिन्न कालों एवं सोपानों के स्वरूपों का सापेक्ष अध्ययन किया जाता है। अतएव भाषाविज्ञान की ऐतिहासिक पद्धति वह है, जिसमें एक भाषा या विभिन्न भाषाओं के पद, शब्द, ध्वनि, वाक्य रूप आदि के उद्भव एवं विकास का काल–क्रमानुसार अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

तुलनात्मक पद्धति भाषाविज्ञान की वह धारा अथवा अध्ययन पद्धति है, जिसमें ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक पद्धतियों का भी अंतर्भाव हो जाता है। जिस पद्धति के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं की ध्वनियों, पदों, शब्दों, वाक्यों, रूपों, एवं अर्थों आदि भाषा–अवयवों की परस्पर तुलना करते हुए अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है, उसे भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति कहते हैं। इसी कारण भाषाविज्ञान को तुलनात्मक भाषाविज्ञान भी कहा जाता है। वैसे अब यह तुलनात्मक शब्द हटा दिया गया है, क्योंकि भाषाविज्ञान की स्थिति तुलना के बिना भी संभव है। भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति में वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक दोनों ही पद्धतियों की आवश्यकता होती है, अतएव यह पद्धति भी भाषाविज्ञान की आधारभूत पद्धति है।

टिप्पणी

भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विद्वान भाषाविज्ञान का विविध शास्त्रों से बड़ा ही निकट एवं घनिष्ठ संबंध मानते हैं। भाषाविज्ञान के वास्तविक रूप को समझने के लिए व्याकरण के अध्ययन की अत्यंत आवश्यकता है। इन दोनों का घनिष्ठ संबंध है। एक का अध्ययन करते हुए दूसरे का ज्ञान प्राप्त होना स्वाभाविक है। व्याकरण भाषा के टुकड़े–टुकड़े करके उसके ठीक स्वरूप को सामने लाता है, तथा भाषाविज्ञान को पढ़ते हुए व्याकरण की जानकारी हो जाती है।

भाषाविज्ञान और साहित्य दोनों भाष्य पर आधारित हैं। साहित्य भाषा का स्थायी रूप है। भाषा के अभाव में दोनों का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा। भाषाविज्ञान के हेतु साहित्य से पर्याप्त सामग्री मिलती है। भाषा के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का सबल आधार साहित्य ही है।

भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान का बहुत गहरा संबंध है। भाषा तो विज्ञान की वाहिका है और विचारों का सीधा संबंध मस्तिष्क तथा मनोविज्ञान से है। इस प्रकार भाषा की आंतरिक गुत्थियों को सुलझाने में भाषाविज्ञान मनोविज्ञान से बहुत अधिक सहायता लेता है। भाषा मुख से निकली ध्वनि है, अतएव भाषाविज्ञान की–हवा भीतर से कैसे चलती है, स्वर–यंत्र, स्वर–तंत्री, नासिका–विवर, कौवा, तालु, दांत, जीभ, ओठ, कंठ, मूर्द्धा तथा नाक के कारण उसमें क्या परिवर्तन होते हैं तथा कान द्वारा कैसे ध्वनि का ग्रहण होता है–इन सबका अध्ययन करना पड़ता है और इसमें शरीर विज्ञान ही उसकी सहायता करता है।

भाषाविज्ञान से भूगोल का भी घनिष्ठ संबंध है। कुछ लोगों के अनुसार स्थानीय भौगोलिक परिस्थिति का भाषा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। किसी स्थान में बोली जाने वाली भाषा में वहां के पेड़–पौधे, जानवर, पक्षी तथा अन्न आदि के लिए शब्द अवश्य मिलते हैं, पर यदि उनमें से किसी की समाप्ति हो जाए तो उसके नाम का वहां की भाषा से भी लोप हो जाता है। 'सोमलता' शब्द का आज हमारी जीवित भाषा में न पाया जाना संभवतः भौगोलिक कारण से ही है। किसी स्थान में एक भाषा का दूर तक प्रसार न होना, भाषा में कम विकास होना तथा किसी स्थान में बोलियों का अधिक होना भी भौगोलिक परिस्थिति पर ही निर्भर करता है। भूगोल देशों, नगरों, नदियों तथा प्रांतों आदि के नामों के रूप में भाषाविज्ञान को अध्ययन की बड़ी मनोरंजक सामग्री प्रदान करता है।

इतिहास का भी भाषाविज्ञान से घनिष्ठ संबंध है। किसी देश पर एक अन्य देश का राज्य होना दोनों ही देशों की भाषाओं को प्रभावित करता है। भारतीय भाषाओं में कई हजार अंग्रेजी शब्दों का प्रवेश तथा दूसरी ओर अंग्रेजी में कई हजार भारतीय शब्दों का प्रवेश, भारत की राजनीतिक परतंत्रता या इन दोनों के बीच राजनीतिक संबंध का ही परिणाम है। मध्ययुग में ब्रजभाषा और अवधी के महत्व का कारण हमें धार्मिक इतिहास में ही मिलता है। दूसरी ओर धर्म के प्राचीन रूप की बहुत–सी गुत्थियां भाषाविज्ञान से सुलझ जाती हैं। एक देश के दूसरे देश पर धार्मिक प्रभाव के अध्ययन में धर्म से संबद्ध शब्दों का अध्ययन बड़ी सहायता करता है। इस प्रकार दोनों एक–दूसरे से सहायता लेते हैं।

टिप्पणी

सामाजिक व्यवस्था तथा परंपराओं का भी भाषा पर प्रभाव पड़ता है और दूसरी ओर भाषा से भी सामाजिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार भाषाविज्ञान तथा सामाजिक इतिहास भी एक–दूसरे के सहायक हैं। मनुष्य जब कुछ कहता है तो ध्वनि उसके मुंह से निकलने के बाद और किसी के कान तक पहुंचने के पूर्व आकाश में लहरों के रूप में चलती है। इन लहरों का अध्ययन करने में भौतिकशास्त्र ही हमारी सहायता करता है। वह बतलाता है कि ये लहरें किस प्रकार की होती हैं तथा अन्य ध्वनियों एवं भाषा–ध्वनियों की लहरों में क्या अंतर होता है। प्रयोगात्मक ध्वनिशास्त्र (Experimental Phonetics) के अध्येता भाषाविज्ञान के इस क्षेत्र के अध्ययन में भौतिकशास्त्र से बहुत लाभ उठा रहे हैं। स्वर–व्यंजन आदि के तात्विक रूप पर भौतिकशास्त्र के आधार पर इधर बहुत प्रकाश डाला गया है।

तर्कशास्त्र का भाषाविज्ञान से कोई बहुत सीधा संबंध तो नहीं है, पर भाषाविज्ञान वर्णनात्मक विषय न होकर व्याख्या–प्रधान है और व्याख्या में बिना तर्क के काम नहीं चल सकता, अतएव उसे तर्कशास्त्र का ऋणी होना ही पड़ता है। मानवविज्ञान में मानव के विकास का विविध दृष्टियों (मर्यादा, सामाजिक मनोविज्ञान, धर्म अंधविश्वास तथा पर्व आदि) से अध्ययन किया जाता है और भाषा स्वयं मानव के विकास का प्रतीक है, अतएव दोनों ही एक–दूसरे से अपने अध्ययन के लिए सामग्री लेते हैं। दर्शन और भाषाविज्ञान दोनों में घनिष्ठ संबंध है। भारत में मीमांसकों, नैयायिकों आदि दार्शनिकों ने इसी कारण अपने विषय पर विचार करते समय भाषाविज्ञान की भी अनेक बातों पर विचार किया है। जैसे मीमांसा के अन्विताभिधानवाद सिद्धांत के अनुसार भाषा में वाक्य की ही सत्ता मूल है, 'पद' उसी के तोड़े गए अंश हैं। किंतु, अभिहितान्वयवाद के अनुसार पद की ही सत्ता है, वाक्य उसी का जोड़ा हुआ रूप है। भाषाविज्ञान की अर्थविज्ञान–शाखा को तो लोग बहुत दिनों तक दर्शन के ही अंतर्गत मानते रहे हैं। भाषा, भाषाविज्ञान और व्याकरण का भी अपना दर्शन होता है।

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान में भाषा–विषयक विभिन्न सिद्धांतों (भाषा की संरचना तथा भाषा–प्रयोग आदि विषयक) का निर्धारण होता है। इस सैद्धांतिक भाषाविज्ञान से प्राप्त संकल्पनाओं तथा तथ्यों का अन्य क्षेत्रों (जैसे भाषा सिखाने, कोश बनाने, अनुवार करने, किसी रचना का शैलीय विश्लेषण करने तथा किसी व्यक्ति का उच्चारण–दोष ठीक करने आदि) में व्यावहारिक प्रयोग 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' कहा जाता है।

समाजभाषाविज्ञान में भाषा और उसे बोलने वाले समाज के बीच पाए जाने वाले संबंधों का अध्ययन–विश्लेषण करते हैं। भाषाविज्ञान से इसका अंतर कई आधारों पर दिखाया जा सकता है। जैसे–

(क) शुद्ध भाषाविज्ञान भाषा को भाषिक प्रतीक के रूप में लेता है, किंतु समाजभाषाविज्ञान उसे सामाजिक प्रतीक रूप में।

(ख) भाषाविज्ञान में भाषा की सबसे बड़ी इकाई प्रायः 'वाक्य' मानी जाती रही है, किंतु समाजभाषाविज्ञान 'प्रोक्ति' को यह स्थान देता है।

टिप्पणी

(ग) भाषाविज्ञान समाज से प्रायः अलग रखकर भाषा की संरचना पर विचार करता है, किंतु समाजभाषाविज्ञान उस अध्ययन को अधूरा मानता है और उसके अनुसार समाज के परिप्रेक्ष्य में भाषा का अध्ययन ही भाषा का वास्तविक अध्ययन है और इस तरह समाजभाषाविज्ञानवेत्ताओं की दृष्टि में समाजभाषाविज्ञान ही वास्तविक भाषाविज्ञान है।

(घ) मानक भाषा, अमानक भाषा तथा भाषा और बोली में अंतर दिखाना भाषाविज्ञान के लिए संभव नहीं हैं, क्योंकि यदि मात्र संरचना की बात लें (जिस पर भाषाविज्ञान का बल है) तो मानक भाषा, अमानक भाषा एवं भाषा तथा बोली में कोई भी अंतर नहीं है। यह अंतर समाजभाषाविज्ञान ही दिखा सकता है और दिखा पाता है।

'व्यतिरेक' का अर्थ है 'विरोध (कंट्रास्ट)। एक भाषाभाषी जब दूसरी भाषा सीखता है तो दोनों में अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं। व्यतिरेकी विश्लेषण के आधार पर वे अंतर मालूम कर लिए जाते हैं और फिर उन पर बल देकर भाषा सिखाने में सुविधा होती है। ऐसे ही अनुवाद में भी दो भाषाओं के अंतर ही कठिनाई उत्पन्न करते हैं, समानताएं नहीं। इस प्रकार भाषाशिक्षण और अनुवाद के लिए व्यतिरेकी भाषाविज्ञान बहुत उपयोगी है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **निनाद** : शब्द, गुंजार/रथ के पहियों की आवाज
- **ईश्वर प्रदत्त** : ईश्वर द्वारा दिया हुआ
- **फेनिल** : फेनयुक्त, झागदार
- **विलास** : चमकना, प्रणय–क्रीड़ा, किसी चीज का सुंदर ढंग से हिलना–डुलना
- **नैसर्गिक** : स्वाभाविक, प्राकृतिक
- **स्पर्शग्राह्य** : जिसे स्पर्श (छूकर) करके समझा सके
- **प्रांतीय भाषा** : एक प्रांत या राज्य विशेष में बोली जाने वाली भाषा
- **गोलिक** : आयरलैंड की एक भाषा
- **कृत्रिम** : बनावटी
- **निपात** : गिरना, पतन, वह शब्द जो वर्णागम आदि के द्वारा किसी प्रकार बन जाता हो और व्याकरण के नियम (सूत्र) से निष्पन्न न होते हुए भी व्यवहार में आ गया हो।

1.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. लाल, हरी
2. सापेक्ष

टिप्पणी

3. सही
4. गलत
5. ध्वनियों
6. वर्णनात्मक
7. सही
8. गलत
9. क्रमबद्ध
10. ध्वनियों
11. सही
12. सही
13. विज्ञान
14. अनुप्रयुक्त
15. सही
16. सही

1.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा की परिभाषा लिखिए।
2. भाषाविज्ञान की वर्णनात्मक पद्धति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. भाषाविज्ञान की तुलनात्मक पद्धति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. भाषाविज्ञान और मनोविज्ञान के संबंध पर प्रकाश डालिए।
5. भाषाविज्ञान का तर्कविज्ञान से क्या संबंध है–व्याख्या कीजिए।
6. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा की परिभाषा और अभिलक्षणों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान का वर्णन करते हुए आपस में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. भाषाविज्ञान का अन्य विषयों से क्या संबंध है? इस संबंध के महत्व का वर्णन कीजिए।
4. अनुप्रयुक्त एवं समाज भाषाविज्ञान के स्वरूप पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

1.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, *भाषाविज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
2. डॉ. नरेश मिश्र, *भाषा और भाषाविज्ञान,* अमर प्रकाशन, लोनी, गाजियाबाद।
3. डॉ. हरीश शर्मा, *भाषाविज्ञान की रूपरेखा,* अमित प्रकाशन गाजियाबाद।
4. श्यामचंद्र कपूर, *व्यावहारिक हिंदी व्याकरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
5. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल, *भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा,* सरन प्रकाशन मंदिर, मेरठ।
6. आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा, डॉ. रामदेव त्रिपाठी, *हिंदी भाषा का विकास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

इकाई 2 शैली और शैलीविज्ञान

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 शैली और शैलीविज्ञान : परिभाषा और स्वरूप
  2.2.1 शैलीविज्ञान का स्वरूप
  2.2.2 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान का संबंध
2.3 अर्थ संप्रेषण, विचलन एवं शैली विज्ञान
2.4 सामान्य, मानक, शास्त्रीय एवं काव्य भाषा
  2.4.1 सामान्य भाषा
  2.4.2 मानक भाषा
  2.4.3 शास्त्रीय भाषा
  2.4.4 काव्य भाषा
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

भाषा में कार्यात्मक विविधता न केवल व्याकरणिक पक्षों की दृष्टि से होती है बल्कि शैली के स्तर पर भी होती है। शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की एक नई शाखा है। शैली का अध्ययन ही शैलीविज्ञान है। विचारों के आदान–प्रदान, भावों के संप्रेषण के लिए मानव समूह भाषा का प्रयोग करता है। भाषा की आत्मा अर्थ है। अर्थविज्ञान के अंतर्गत भाषा के इसी अर्थपक्ष का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। अर्थविज्ञान में भाषा की आत्मा अर्थात 'अर्थ' के ज्ञान, संकेत, बिंब निर्माण और अर्थबोध का विवेचन व विश्लेषण किया जाता है।

हमारे यहां अर्थ का महत्व अति प्राचीन काल से माना जाता रहा है, जैसा कि यास्क के निरुक्त से अनेकत्र प्रमाणित होता है। यास्क ने कहा है कि जिस प्रकार बिना अग्नि के शुष्क ईंधन प्रज्वलित नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना अर्थ समझे जो शब्द दुहराया जाता है, वह कभी अभीप्सित विषय को प्रकाशित नहीं कर सकता–

यदगृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्केन्धो न तज्ज्वलति कार्हिचित्।। **(निरुक्त–1.18)**

इसी प्रसंग में उन्होंने फिर कहा है–

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।। **(निरुक्त–1.18)**

टिप्पणी

जो बिना अर्थ जाने वेदों का अध्ययन करता है, वह भार ढोता है। अर्थ को जानने वाला ही समस्त कल्याणों का भागी होता है और ज्ञान की ज्योति से समस्त दोषों को दूर कर ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह कि अर्थ के अभाव में भाषा का कोई महत्व नहीं है। शब्द तो अर्थ की अभिव्यक्ति का ही माध्यम है। अर्थात शब्द अमूर्त अर्थ का मूर्त रूप है, या शब्द शरीर है तो अर्थ आत्मा। जिस तरह शरीर की सहायता से ही आत्मा का प्रत्यक्षीकरण होता है, उसी प्रकार शब्दों की सहायता से ही अर्थ का बोध होता है। इस इकाई में इम शैली, शैलीविज्ञान और अर्थ के विषय में विस्तार से जानेंगे।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शैली और शैलीविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप को जान पाएंगे;
- शैली विज्ञान और भाषा विज्ञान के आपसी संबंधों को समझ पाएंगे;
- अर्थ संप्रेषण एवं विचलन की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- सामान्य भाषा, मानक भाषा, शास्त्रीय भाषा और काव्य भाषा के स्वरूप का विश्लेषण कर पाएंगे।

2.2 शैली और शैलीविज्ञान : परिभाषा और स्वरूप

संस्कृत में शैली के स्वरूप के बारे में कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं होता। संस्कृत साहित्य में भाषा, अलंकार, शब्द शक्ति, वक्रोक्ति, रीति, छंद, गुण–दोष आदि के बारे में चर्चा तो हुई है परंतु शैली के बारे में कोई स्पष्ट अर्थ और व्याख्या नहीं मिलती। शैली पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर पता चलता है कि भारतीय विद्वानों की अपेक्षा पाश्चात्य विद्वानों ने अधिक टीका–टिप्पणियां और व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं।

पाश्चात्य विद्वान प्लेटो का मत है कि "जब विचार को रूप दिया जाता है तभी शैली का जन्म होता है।"

डॉक्टर जानसन के अनुसार, "हर व्यक्ति एक विशिष्ट शैली अपनाता है।"

गेटवे के अनुसार, "किसी भी कृतिकार की शैली उसके मस्तिष्क की विश्वसनीय प्रतिलिपि होती है।"

चेस्टर फील्ड के अनुसार, "विचारों के परिधान को शैली कहते हैं।"

2.2.1 शैलीविज्ञान का स्वरूप

शैली का अध्ययन ही शैली विज्ञान है। सभी व्यक्तियों की भाषा ध्वनि, शब्द, रूप तथा वाक्य रचना आदि की दृष्टि से पूर्णतः समान नहीं होती चाहे वे एक भाषा–भाषी ही क्यों न हों। एक ही भाषा में लिखने वाले कवियों, साहित्यकारों एवं अन्य लेखकों की अपनी–अपनी

टिप्पणी

शैलीगत विशेषताएं होती हैं। शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की एक नई शाखा है। हर व्यक्ति की शैली उसके व्यक्तित्व के अनुरूप होती है। भाषा के प्रसंग में शैली का संबंध अभिव्यक्ति से है। हर भाषा में ध्वनि, शब्द–समूह, रूप–रचना तथा वाक्य–गठन आदि की दृष्टि से अभिव्यक्ति का एक सर्वस्वीकृत मानक या परिनिष्ठित रूप होता है जिसे उस भाषा में अभिव्यक्ति का एक सामान्य ढंग कह सकते हैं। जो लोग लेखन में या बोलने में इसी सामान्य रूप का प्रयोग करते हैं, उनकी कोई अपनी शैली नहीं मानी जाती। शैली मानी जाती है उनकी, जो इस सामान्य रूप में ध्वनि, शब्द–समूह, रूप–रचना तथा वाक्य–गठन आदि की दृष्टि से कुछ अलग प्रयोग करते हैं। इस तरह शैली–विशेष के लिए यह आवश्यक है कि चुनकर भाषिक इकाइयों का ऐसा प्रयोग हो जो सामान्य की तुलना में विशेष या अलग हो। भाषा की सामान्य अभिव्यक्ति पूरे भाषा–समाज की होती है, किंतु शैली व्यक्ति की या वैयक्तिक होती है। इसका मुख्य आधार है चयन– चयन से यहां आशय है किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों, शब्दों, रूपों, वाक्यों आदि का चयन। व्यक्ति अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुकूल चयन करके अपनी बात को व्यक्त करता है। इस चयन की पहचान के आधार पर ही हम कोई पैराग्राफ या छंद देखकर यह कह सकते हैं कि यह तो प्रेमचंद का है, निराला का नहीं हो सकता। वस्तुतः हर अच्छे कवि या लेखक की अपनी शैली होती है जो इस चयन पर ही आधारित होती है।

शैलीविज्ञान में वैसे तो समवेत रूप से किसी रचना की शैली का अध्ययन करते हैं, किंतु यदि चाहें तो शैलीविज्ञान को ध्वनिशैलीविज्ञान, शब्दशैलीविज्ञान, रूपशैलीविज्ञान, वाक्यशैलीविज्ञान आदि शाखाओं में विभाजित कर सकते हैं जिनमें क्रमशः शैलीय प्रयोग की दृष्टि से किसी के द्वारा प्रयुक्त ध्वनियों, शब्द–समूह, रूपों, वाक्यों और लेखन या मुद्रण पर विचार किया जा सकता है। इसे स्पष्ट करने के लिए हिंदी से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

ध्वनि–क–क़, ख–ख़, ग–ग़, ज–ज़, फ–फ़, आ–ऑ में चयन, जैसे कायम–क़ायम खरीद–ख़रीद, गैरत–ग़ैरत, जिला–ज़िला, फारम–फ़ारम, कालेज–कॉलेज। लेखक द्वारा अपनी इच्छानुसार इनमें किसी का भी चयन किया जा सकता है।

शब्द–हर भाषा में अर्थ की समानता की दृष्टि से शब्दों के कुछ वर्ग होते हैं। हम लिखते समय या बोलते समय अपनी आवश्यकतानुसार किसी एक को चुन लेते हैं। हिंदी की तीन शैलियां हैं–तत्सम–तद्भव–देशज–विदेशी इनमें से ही प्रायः चयन होता है।

रूप चयन–यद्यपि हिंदी में रूप–चयन का अवसर बहुत कम मिलता है पर ऐसा नहीं है कि एकदम नहीं मिलता। हिंदी में रूप–चयन के उदाहरण इस प्रकार हैं–हिंदी में भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए प्रायः ता, म, व, आई प्रत्ययों का प्रयोग करते हैं लेकिन कुछ लेखक 'ता' प्रत्यय के स्थान पर य अथवा व का प्रयोग करते हैं; जैसे सौंदर्य, सोष्ठव आदि। विशेषण के लिए दो–दो शब्द प्रचलन में हैं; जैसे संवेद्य–संवेदनीय, मान्य–माननीय आदि। सर्वनामों में आज कुछ प्रदेशों में 'मुझे–मुझको–मैंने–मेरे को' में चयन चल रहा है–मुझे/मुझको/मैंने/मेरे को खाना है। इसी प्रकार, 'तुम्हें–तुमको–तुमने–तेरे को'।

टिप्पणी

मित्र–मित्रगण, कवियों–कविजन, मंत्रियों–मंत्रिगण या शिक्षक–शिक्षक आदि कुछ अन्य उदाहरण हैं।

वाक्य–वाक्य–रचना के क्षेत्र में भी चयन के लिए काफी अवकाश है। कुछ उदाहरण हैं–गरिमा ने ही–गरिमा ही ने; गरिमा को ही–गरिमा ही को; गरिमा से ही–गरिमा ही से; गरिमा के लिए ही–गरिमा ही के लिए; गरिमा ही का–गरिमा का ही; मात्र बीस, बीस मात्र; लाकर–लाकर के, न...न...न...–नाहीं; गरिमा नहीं आता है–गरिमा नहीं आती; खा चुकी हूं–खा लिया है–खा बैठी हूं; जो मिस्त्री आया था चला गया–मिस्त्री जो आया था चला गया; सुधा ने कहा कि मैं/वह जाऊंगी/जाएगी; साधारण वाक्य–संयुक्त वाक्य–मिश्रित वाक्य; छोटे वाक्य–बड़े वाक्य इत्यादि। पदक्रम में परिवर्तन करते हुए एक ही वाक्य के कई रूप संभव हैं–

वह जा रही है और तुम...
जा वह रही है और तुम...
जा रही वह है और तुम...
जा रही है वह और तुम...

2.2.2 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान का संबंध

कुछ भारतीय विद्वान शैलीविज्ञान को साहित्य शास्त्र से जोड़ते हैं और कुछ भाषाविज्ञान और साहित्य दोनों से, कुछ विद्वान इसे प्रायोगिक भाषाविज्ञान का अंग मानते हैं और कुछ शैलीविज्ञान को एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में हैं और कुछ विद्वान इसे भाषाविज्ञान से ही जोड़ते हैं। एक तरफ तो शैलीविज्ञान भाषा शैली जिसमें रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, वृत्ति, प्रवृत्ति, शब्द शक्ति, बिंब, प्रतीक, गुण–दोष आदि शामिल होते हैं, का अध्ययन साहित्य शास्त्र के सिद्धांतों के आधार पर करता है और दूसरी ओर भाषा शैली का अध्ययन जिसमें भाषा की प्रकृति संरचना के नियमित अध्ययन को महत्व दिया जाता है, का अध्ययन भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर करता है। प्रकृति और संरचना के आधार पर ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य और अर्थ–ये पांच तत्व हैं। इन पांच तत्वों के आधार पर ही कवि अथवा रचनाकार द्वारा अपनी रचना के लिए प्रयुक्त की गई भाषा में ध्वनि विचलन, ध्वनि चयन, ध्वनि समानांतर का और शब्द विचलन, शब्द चयन, शब्द समानांतर का प्रयोग कहां–कहां किया गया है इसका और वाक्यों में प्रयोग किए गए मुहावरों और लोकोक्तियों के विचलन आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त रूप–स्तर, वाक्य स्तर और अर्थ–स्तर पर भी अध्ययन किया जाता है। रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति, वृत्ति, प्रवृत्ति, बिंब, छंद, गुण–दोष आदि के आधार पर लेखक अथवा रचनाकार द्वारा साहित्यशास्त्र के सिद्धांतों का अनुसरण किस रूप में और कहां तक किया गया है और साहित्यशास्त्र के नियमों का पालन किया किया गया है या नहीं और यदि किया गया है तो कहां तक–इसका शैली वैज्ञानिक अध्ययन साहित्य शास्त्र के आधार पर किया जाता है। भाषाविज्ञान के दो रूपों–सैद्धांतिक भाषाविज्ञान और प्रायोगिक भाषाविज्ञान की तरह ही शैलीविज्ञान के भी–सैद्धांतिक शैलीविज्ञान और प्रायोगिक शैलीविज्ञान–ये दो रूप होते हैं। सैद्धांतिक शैलीविज्ञान में शैली के सिद्धांतों की वैज्ञानिक

टिप्पणी

व्याख्या और प्रायोगिक शैलीविज्ञान के आधार पर किसी कवि लेखक, ग्रंथकार रचना की शैली का वर्गीकरण, विवेचन और विश्लेषण किया जाता है। सारांशतः शैली का संबंध किसी वक्ता, लेखक, रचनाकार, कवि आदि की अभिव्यंजना पद्धति से होता है और अभिव्यंजना का माध्यम होती है–भाषा। इस अभिव्यंजना पद्धति से लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आ जाता है। लेखक या कवि स्वयं स्वतंत्र होने के कारण अपनी इच्छा और विवेक से किसी भी भाषा और शैली का प्रयोग कर सकता है। इसलिए हर कवि अथवा लेखक की शैली में अंतर होना स्वाभाविक है। अतः कहा जा सकता है कि शैली भाषागत अभिव्यक्ति की विशिष्ट एवं वैयक्तिक सारगर्भित पद्धति है।

2.3 अर्थ संप्रेषण, विचलन एवं शैली विज्ञान

अर्थ का संप्रेषण एवं विचलन

अर्थ का संप्रेषण और शैली विज्ञान का अन्योन्याश्रित संबंध है। ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। किसी बात को कहने का ढंग शैली कहलाती है। हम अपनी बात को किस अंदाज में कहते हैं या अभिव्यक्त करते हैं उसका प्रभाव अर्थ संप्रेषण पर बहुत पड़ता है। अपनी बात को हर व्यक्ति दूसरे को संप्रेषित करना चाहता है लेकिन प्रभाव छोड़ने में कुछ ही कामयाब हो पाते हैं। कहने वाला व्यक्ति किस बात पर जोर देना चाहता है, क्या कहना चाहता है, वह क्या सिद्ध करना चाहता है, यह सब कुछ उसके अभिव्यक्ति के अंदाज पर निर्भर करता है। भाषा विज्ञान में बलाघात के माध्यम से कई बार तो अर्थ पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाता है। यह बलाघात शब्द, वाक्य और पद आदि कई स्तरों पर देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'रोको मत जाने दो' वाक्य में यदि रोको पर जोर दिया जाए तो इसका अर्थ निकलेगा उसे जाने मत दो, यहीं रोक लो। मगर यदि 'रोको मत' दो शब्दों पर जोर दिया जाए तो अर्थ निकलेगा कि उसे रोकना नहीं, जाने दो। इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा विज्ञान में कहने के ढंग से संप्रेषण का अर्थ बदल जाता है।

शैली विज्ञान मूलतः भाषा विज्ञान का एक अंग है। इसलिए शैली वैज्ञानिक समीक्षा के केंद्र में कृति की भाषा ही रहती है। शैली वस्तुतः भाषा का ही एक रूप है। भाषा के बिना साहित्य की परिकल्पना नहीं हो सकती। अज्ञेय के अनुसार, "काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंत में यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है।" स्पष्टतः कविता जिस अर्थ का वहन करती है उसकी अभिव्यक्ति शब्द के बिना असंभव है। इसलिए कविता या साहित्य की समीक्षा में भाषा पक्ष का विश्लेष्ण जरूरी है।

भाषा का विश्लेषण करते समय यह प्रश्न भी उठता है कि क्या सामान्य लोक व्यवहार की भाषा की ही कसौटी पर साहित्यिक भाषा का भी विवेचन होना चाहिए? बोलचाल की भाषा का कार्य सूचना देना मात्र है। मगर साहित्य का कथ्य अधिक गहरा होता है। उसकी विशिष्ट अनुभूति और विशिष्ट कथ्य विशिष्ट भाषा की अपेक्षा करते हैं। भाषा की मूल शब्दावली तथा संरचना को लेकर वह ध्वनि, शब्द तथा संरचना का विचलन करके अर्थात उन्हें सामान्य से भिन्न स्थिति में प्रयुक्त करके, शब्दों में कथ्य के अनुरूप नया अर्थ भर कर

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. भाषा के प्रसंग में शैली का संबंध ..... से है।
2. ..... का अध्ययन ही शैलीविज्ञान है।

सही/गलत बताइए–

3. लिखित भाषा की शैली मौखिक भाषा की तुलना में अधिक औपचारिक होती है।
4. हर भाषा में अर्थ की असमानता की दृष्टि से शब्दों के कुछ वर्ग होते हैं।

टिप्पणी

प्रस्तुत करता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि सामान्य बोलचाल की भाषा में साहित्य रचा ही नहीं जा सकता? सामान्य भाषा में भी जहां विशिष्ट कथ्य या अनुभूति की व्यंजना हो जाती है वहां इसकी प्रकृति सर्जनात्मक हो जाती है। सामान्य भाषा भी जब साहित्य में प्रयुक्त होती है तो उसमें एक विशेष अर्थवत्ता और लयात्मकता आ जाती है जो भाषा की सामान्यता को सर्जनात्मकता से रंग देती है। भाषा में यह सर्जनात्मकता शैली के माध्यम से आती है। यह विशिष्टता कथ्य के अनुरूप ध्वनियों, शब्दावली, वाक्य रचना, अलंकार, छंद आदि के चुनाव से आती है। इसके अतिरिक्त इसमें लेखक की निजी दृष्टि और विशेषता भी होती है।

शैली का कोई निश्चित स्वरूप तय नहीं किया जा सकता। परंतु एक बात ध्यातव्य है कि शैली के उपकरण भाषा के बाह्य अवयव होते हुए भी यह बाहरी स्तर तक ही सीमित नहीं है। इसका मुख्य उद्देश्य विशिष्ट अर्थ या आशय का संप्रेषण है। अतः यह भाषा के आभ्यंतर या आर्थी स्तर तक जाती है, सामान्य अर्थ के साथ ही ध्वनित अर्थ का भी प्रकाशन करती है।

आज शैली विज्ञान भाषा के अत्यंत महत्वपूर्ण अंग के तौर पर ही नहीं, बल्कि साहित्यिक शैली तो एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो गई है। यह समीक्षा पद्धति सामान्य भाषा का नहीं वरन साहित्यिक भाषा का विश्लेषण करती है और भाषा के अंदर छिपे भावों तक पैठती है तथा भाव के साथ भाषा की संगति का अध्ययन करती है। जहां सामान्य भाषा का कार्य सूचनाएं देना है वहीं साहित्यिक भाषा प्रकट अर्थ के अतिरिक्त किसी अभ्यंतर अर्थ का भी उद्घाटन करती है। शैली वैज्ञानिक समीक्षा यह देखती है कि रचनाकार की भाषा उस अभ्यांतर अर्थ का उद्घाटन करने में सक्षम है या नहीं। शैली वैज्ञानिक समीक्षा पद्धति साहित्यिक भाषा की प्रकृति का भी अध्ययन करती है। इसमें बिंब विधान, अलंकार योजना, छंद, वाक्य–विन्यास, शब्द चयन इन सबों पर ध्यान दिया जाता है। शैली चूंकि भाषा का विशिष्ट प्रयोग है इसलिए इसका विश्लेषण भी विशिष्ट ही होगा। यह समीक्षा पद्धति भाषा के माध्यम से अभ्यांतर अर्थ को प्रकट करती है। और इसके लिए समीक्षक को साहित्य शास्त्र का भी ज्ञान होना चाहिए क्योंकि कृति के अर्थ तक पहुंचने के लिए उसे साहित्य शास्त्र संबंधी उपकरणों से भी अपना संदर्भ जोड़ना होता है। वास्तव में आलोचना तभी पूर्ण होती है जब उसमें भाषा और साहित्य– दोनों के तत्वों का विश्लेषण हो। और इन दोनों तत्वों का सामंजन शैली विज्ञान में हो जाता है।

शैली विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह कई बार रचनाकार के मंतव्य से आगे जाकर इस बात की पड़ताल करती है कि रचना की अपनी व्यंजना क्या है। हो सकता है रचना वह कुछ ध्वनित कर रही हो जो कृतिकार के ध्यान में भी न आया हो क्योंकि रचना अपने सर्जन के बाद सर्जक से मुक्त हो जाती है। ऐसे में उसका वस्तुपरक विश्लेषण अनेक ऐसे अर्थ दे सकता है जिसकी कल्पना स्वायत्तता से जुड़ी होती है और इस पर रचना रचनाकार के जीवन या मानसिकता का प्रभाव नहीं होता।

टिप्पणी

शैली विज्ञान समीक्षा पद्धति अभी विकास के क्रम में है। इसमें मत, मतांतर और विवादों का क्रम चल रहा है और अभी तक इसका स्वरूप स्थिर नहीं हो पाया। इस कारण इसके गुण–दोषों पर कायदे से दृष्टिपात नहीं किया जा सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि कृतिकेंद्रित होने के कारण यह रचना की विशेषताओं का अच्छी तरह मूल्यांकन कर सकती है। पर साथ ही साथ इसमें एक कमी भी है कि इस पद्धति में रचना के सामाजिक और नैतिक मूल्य उपेक्षित हो जाते हैं, क्योंकि ये सामाजिक मूल्य हैं, साहित्यिक नहीं।

भाषा वस्तुतः प्रयोजनसिद्ध शैलियों के समुच्चय का दूसरा नाम है। किसी एक भाषा की विभिन्न शैलियां आपस में अंशतः या तो सामंजस्य की स्थिति में रहती है या फिर तनाव की स्थिति में। सामंजस्य की स्थिति शैलियों को प्रयोजन से बांधती है और तनाव की स्थिति उनमें प्रतिस्पर्द्धा का कारण बनती है। भाषा न केवल व्यक्ति के संज्ञानात्मक बोध का प्रतिबिंब है बल्कि इस संप्रदाय में वह ऐसा दर्पण भी है जिसमें आधारभूत शैली अन्य आरोपित शैलियों के साथ अपने संबंधों का चित्र भी प्रतिबिंबित करती हैं।

भाषा का साध्य संप्रेषण है, अर्थ व्यापार है और सामाजिक चरित्र वह शक्ति है जो किसी एक समुदाय के सभी व्यक्तियों की भावना, चिंतन और जीवन–दृष्टि के धरातल पर एक–दूसरे के नजदीक लाकर एक इकाई में बांधती है। हॉगन के अनुसार, "संस्थागत दृष्टि से भाषा को देखना वस्तुतः न केवल संप्रेषण–व्यवस्था के प्रयोजनसिद्ध रूप में भाषा को देखना है, पर भाषा के सहारे जातीय पुनर्गठन के इतिहास को भी जानना है।"

भाषा की बनावट की दृष्टि से हम उसकी संरचनात्मक व्यवस्था की बात करते हैं जबकि प्रयोजन के संदर्भ में हम यह बताते हैं कि इसके द्वारा किसी भाषाई समुदाय के व्यक्ति आपस में विचार–विनिमय करते हैं। बनावट और संरचना के संदर्भ का केंद्रक उस भाषा का 'व्याकरण' होता है ओर उसके प्रयोजन के संदर्भ का 'संप्रेषण'।

अभिव्यक्तियों के प्रयोग की सार्थकता का पता हमें भाषा के प्रयोजन के संदर्भ को देखने से पता चलता है। उदाहरण के लिए 'मैंने गिलास तोड़ा' पर दूसरी स्थिति में कहते हैं 'मुझसे गिलास टूट गया'। व्याकरण के धरातल पर इसका अंतर कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य की संरचना का है, पर जहां तक संप्रेषण–संदर्भ का सवाल है, कहा जा सकता है कि पहली अभिव्यक्ति में वक्ता गिलास टूटने की क्रिया को सचेतन भाव से बताना चाहता है और इसीलिए अन्वयांतर के साथ कह सकता है– 'मैंने जान–बूझकर गिलास तोड़ा।' इसके विपरीत दूसरी अभिव्यक्ति में वक्ता घटना के साथ यह भी कथ्य संप्रेषित करना चाहता है कि उसने जान–बूझकर गिलास नहीं तोड़ा बल्कि 'मुझसे अनजाने में गिलास टूट गया।'

संरचना और प्रयोजन का भाषा के संदर्भ में अटूट संबंध है। किसी भाषा की संरचना या उस भाषा की अभिव्यक्ति को उसका प्रयोजन दूर तक प्रभावित करता है। सैद्धांतिक भाषा विज्ञान में भाषा की संरचना और सार्वभौम व्याकरण तथा भाषा प्रयोजन में संप्रेषणपरक व्याकरण– दोनों संदर्भ भाषा को देखने की दो निश्चित दृष्टियां हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. शैली विज्ञान और ... . का अन्योन्याश्रित संबंध है।
6. शैली भाषा का .... प्रयोग है।

सही/गलत बताइए–

7. भाषा का साध्य संप्रेषण है।
8. अभिव्यक्ति के प्रयोग की सार्थकता का भाषा प्रयोजन से कोई संबंध नहीं है।

टिप्पणी

2.4 सामान्य, मानक, शास्त्रीय एवं काव्य भाषा

2.4.1 सामान्य भाषा

सामान्य भाषा मनुष्य के विचारों के आदान–प्रदान की साधन भाषा होती है। सामान्य भाषा के अंतर्गत किसी भी देश अथवा प्रांत की भाषा आती है; जैसे अंग्रेजी, चीनी, फ्रेंच, हिंदी, तमिल आदि। किसी क्षेत्र या देश के नाम पर उस स्थान की भाषा का नामकरण कर दिया जाता है। सामान्य भाषा बोलचाल में या दैनिक जीवन में प्रयुक्त होती है। यह ऐसी भाषा होती है कि लोग यथाशीघ्र इसे समझकर इसका प्रयोग कर सकें। सामान्य भाषा आधार भाषा है। सामान्य भाषा ही मूल भाषा होती है तथा एक विशिष्ट दिशा में विकसित करके वैज्ञानिक या शास्त्रकार उसी भाषा को शास्त्रीय भाषा बना देता है, तो दूसरी तरफ उसे दूसरी दिशा में विकसित करके साहित्यकार उसे काव्य भाषा बना देता है। सामान्य भाषा सहज होती है जो समाज की सामान्य संपत्ति होती है। सामान्य भाषा अपनी शब्दावली और बनावट में सरल होती है। सामान्य भाषा अर्थ के स्तर पर मात्र सूचना देती है। उसका अपना व्यक्तित्व नहीं होता। सामान्य भाषा का प्रयोक्ता विभिन्न स्तरों पर चयन ध्वनियों का चयन, शब्द चयन, रूप का चयन, वाक्य रचना का चयन करके भाषा का संयोजन नहीं करता। सामान्य भाषा की संकल्पना में एक रूपता नहीं है। यह उसकी अपनी प्रकृति है। यह एक लचीली संकल्पना है जिसकी व्याप्ति बहुत अधिक है। तरह–तरह के प्रसंगों में और एक ही प्रसंग के विषय में विविध संदर्भों में बातचीत, सार्वजनिक भाषण, सार्वजनिक सूचनाएं, समाचारपत्र, विज्ञापन, शासकीय कार्य, धर्मप्रचार, व्यावसायिक प्रवृत्तियां आदि विभिन्न गतिविधियों को संपन्न करने के लिए हम भाषा का जो प्रयोग करते हैं वह सब सामान्य भाषा का क्षेत्र है। 'भाषा' शब्द से तब तक सामान्य भाषा का ही अर्थ ग्रहण किया जाता है जब तक उसके साथ कोई विशेषण न लगा हो। भाषा का मूल प्रयोजन संप्रेषण है। अपने नाम के अनुरूप सामान्य भाषा निर्विशेष होती है। यह हमारे स्वाभाविक व्यवहार और सर्वविध उद्देश्यों की पूर्ति की भाषा है। संप्रेषण के मूल प्रयोजन की पूर्ति इसका मुख्य प्रयोजन है, इस प्रयोजन के साथ अन्य प्रयोजन भी गौण रूप से संयुक्त रहते हैं तथा अनुकूल प्रसंग में प्रधान हो उठते हैं।

सामान्य भाषा की व्यापकता

साहित्यभाषा और शास्त्र भाषा की संभावनाएं भी सामान्य भाषा में ही निहित होती हैं। साहित्यभाषा के उपादनों का मूल स्रोत सामान्य भाषा है। सार्वजनिक भाषण जैसे प्रसंगों में सामान्य भाषा उतनी ही संक्रामक तथा अनुनयी होती जाती है जितनी साहित्यिक भाषा। श्रोता को संदेश वैसा ही विश्वसनीय प्रतीत होता है जैसे कोई साहित्यिक रचना। संवाद इसी प्रकार का अन्य प्रमुख प्रसंग है जिसमें साहित्यभाषा की विशेषताएं बीज रूप में विद्यमान रहती हैं। संवाद भी वैसा ही सर्जनात्मक होता है जैसे एक साहित्यिक रचना। दोनों की यह समानता उनकी भाषा में ही प्रतिफलित होती है। जिस प्रकार संवाद की भाषा में व्याकरण के नियमों में शिथिलता दिखाई देती है उसी प्रकार साहित्य भाषा में

टिप्पणी

व्याकरणिक नियमों में विचलन की प्रवृत्ति पाई जाती है। पदरचना संबंधी अनियमितता के उदाहरण, अपूर्ण वाक्य, मुहावरे दोनों में ही मिलते हैं। जिस प्रकार संवाद में वक्ता की भावात्मकता व अभिव्यंजकता अनिवार्यतः विद्यमान होती है, उसी प्रकार साहित्यिक रचना में लेखक के मनस्तत्व की उपस्थिति अनिवार्य रूप से होती है। इसी प्रकार शास्त्र भाषा के बीज भी सामान्य भाषा के कुछ प्रसंगों में मिल जाते हैं। शासकीय कार्यों और व्यावसायिक गतिविधियों की भाषा शास्त्र भाषा के समान संकेतात्मक और निरूपक होती है; उसमें भावात्मकता का अंश निम्नतम स्तर पर होता है। भाषा की विशुद्धता उसमें लक्ष्य होती है।

2.4.2 मानक भाषा

मानक का अर्थ होता है– एक निश्चित पैमाने के अनुसार गठित। मानक भाषा का अर्थ एक ऐसी भाषा से है जो एक निश्चित पैमाने के अनुसार लिखी या बोली जाती है। मानक भाषा व्याकरण के अनुसार ही लिखी और बोली जाती है, अर्थात मानक भाषा का पैमाना उसका व्याकरण है। हम जब किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलते हैं, तो उससे मानक भाषा में ही बातचीत करते हैं। जब हम कक्षा में किसी प्रश्न का उत्तर देते हैं, तो हम मानक भाषा का ही प्रयोग करते हैं। हम पत्र–व्यवहार में मानक भाषा ही लिखते हैं। समाचार पत्रों में जो भाषा लिखी जाती है, वह भी मानक ही होती है। आकाशवाणी और दूरदर्शन के समाचार मानक भाषा में ही प्रसारित किए जाते हैं। हमारे प्रशासन के सारे कामकाज मानक भाषा में संपन्न होते हैं। कहने का आशय यह है कि मानक भाषा हमारे बृहत्तर समाज को सांस्कृतिक स्तर पर आपस में जोड़ती है और हम उसी के माध्यम से एक–दूसरे तक पहुंचते हैं। मानक भाषा हमारी बात दूसरों तक ठीक उसी रूप में पहुंचाती है, जो हमारा आशय होता है, अतः मानक भाषा सर्वमान्य भाषा होती है, वह व्याकरणसम्मत होती है और उसमें निश्चित अर्थ संप्रेषित करने की क्षमता होती है। गठन और संप्रेषण की एकरूपता उसका सबसे बड़ा लक्षण है।

मानक भाषा के विभिन्न नाम–मानक भाषा को कई नामों से पुकारते हैं। इसे कुछ लोग परिनिष्ठित भाषा कहते हैं और कई लोग साधु भाषा। इसे नागर भाषा भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे स्टैंडर्ड लैंग्वेज भी कहते हैं। अतः जो भाषा किसी माप अर्थात पैमाने के अनुसार गठित हो उसे 'मानक भाषा' कहते हैं।

मानक भाषा के लक्षण–यह जिज्ञासा का प्रश्न है कि मानक भाषा बनती कैसे है या किसी बोली को मानक रूप मिलता कैसे है? कोई भाषा अपने सीमित क्षेत्र या बोलने वालों की सीमित संख्या को छोड़कर जब बृहत्तर समाज में पहुंचती है और उनके द्वारा स्वीकार कर ली जाती है, तो एक तरह से मानक भाषा के बनने की प्रक्रिया शुरू होती है। कभी–कभी कोई एक क्षेत्र या उसके बोलने वाले महत्वपूर्ण हो जाते हैं। महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जैसा होता है या महत्वपूर्ण व्यक्ति जैसा करते हैं, हमारी आदत उसका अनुकरण करने की होती है। दिल्ली में जैसा होता है, सारे देश में वैसा ही होने लगता है या कोई बड़ा नेता, कोई बड़ा साहित्यकार, कोई बड़ा अभिनेता जैसे बोलता है, हम वैसा ही बोलने

टिप्पणी

लगते हैं। इसी तरह किसी एक क्षेत्र अथवा समुदाय की बोली जब अपने क्षेत्र से बाहर पहुंचती है, तो कई बार यह बाहर पहुंचने वाली बोली दूसरे क्षेत्रों में भी स्वीकार कर ली जाती है।

यह भाषा–रूप सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतीक बन जाता है। धीरे–धीरे इस भाषा–रूप की शब्दावली, उसका व्याकरण, उसके उच्चारण का स्वरूप निश्चित और स्थिर हो जाता है और इसका प्रसार और विस्तार पूरे भाषा क्षेत्र में हो जाता है। हम अपने जीवन के हर क्षेत्र में तब उसी भाषा का व्यवहार करते हैं, जो मानक होती है। हम उसी में बातचीत करते हैं, उसी में पत्र–व्यवहार करते हैं, उसी में भाषण देते हैं, उसी में कविता या कहानी लिखते हैं और उसी में अपना कामकाज चलाते हैं। फिल्में भी उसी भाषा में बनती हैं, दूरदर्शन में भी उसी भाषा का प्रयोग होता है और समाचार पत्रों में भी उसी भाषा का व्यवहार होता है। संविधान में वह भाषा राजभाषा के रूप में स्वीकार कर ली जाती है। कहने का अर्थ यह है कि हमारे औपचारिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक और शैक्षिक जीवन के सारे कार्यकलाप इसी भाषा के द्वारा संपादित होते हैं।

मानक भाषा की आवश्यकता–मानक भाषा के व्यापक क्षेत्र में फैलने और बृहत्तर समाज द्वारा मान्य किए जाने की आवश्यकता कई कारणों से पड़ती है –

1. मानक होने के कारण इसका प्रयोग सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है। इस कारण सभी लोग मानक भाषा सीखने का प्रयास करते हैं।
2. जब हम अपने क्षेत्र से बाहर जाते हैं या हम अपनी बोली न बोलने वालों से बातचीत करना चाहते हैं, तो मानक भाषा ही हमारे काम आती है। मानक भाषा के माध्यम से पूरे क्षेत्र के शिष्ट एवं शिक्षित जनसमुदाय से संपर्क स्थापित करना संभव होता है।
3. मानक भाषा सारे क्षेत्र को एकता के सूत्र में बांधती है। मानक भाषा के कारण हम श्रेष्ठ और आधुनिक शिक्षा का लाभ उठा सकते हैं।
4. मानक भाषा के कारण जन–संचार माध्यमों का हमें पूरा–पूरा लाभ मिलता है। आकाशवाणी द्वारा क्षेत्रीय बोलियों में जो कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, उनका लाभ बहुत थोड़े से लोग उठाते हैं, जबकि मानक भाषा में प्रसारित कार्यक्रमों का लाभ बहुत अधिक लोग।
5. मानक भाषा के प्रयोग से देश में शासन–तंत्र सुचारू रूप से चलता है। अच्छे अधिकारियों को आवश्यकता पड़ने पर दूर–दूर के क्षेत्रों में भेजा जा सकता है।
6. मानक भाषा में श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों की रचना संभव होती है। उसके पाठकों की संख्या भी बहुत होती है।
7. मानक भाषा से विज्ञान और तकनीकी का लाभ व्यापक समुदाय को मिलता है। मानक भाषा के बिना विज्ञान और तकनीकी ज्ञान संभव नहीं है, इसीलिए विज्ञान की शब्दावली और उसके संकेत सर्वत्र मानक ही होते हैं।

टिप्पणी

8. मानक भाषा से पारस्परिक बोधगम्यता संभव होती है।
9. मानक भाषा प्रारंभ में तो किसी बोली पर ही आधारित होती है, किंतु कालांतर में उसका स्वरूप अपने मूलाधार से पर्याप्त भिन्न हो जाता है।

2.4.3 शास्त्रीय भाषा

शास्त्रीय भाषा वह है, जिसका प्रयोग विभिन्न शास्त्रों (गणित, रसायन, भौतिक आदि) में होता है। शास्त्रीय भाषा की व्याकरणिक संरचना सामान्य भाषा की ही होती है। सामान्य भाषा ही मूल भाषा होती है तथा एक विशिष्ट दिशा में विकसित करके वैज्ञानिक या शास्त्रकार उसी भाषा को शास्त्रीय भाषा बना देता है। इस प्रकार शास्त्रीय भाषा एक कृत्रिम भाषा है, किंतु धीरे–धीरे प्रयुक्त होते–होते अपने क्षेत्र में अपने प्रयोक्ताओं और जानकारों के लिए यह एक सीमा तक सहज हो सकती है। शास्त्रीय भाषा के प्रयोक्ता और जानकार थोड़े व्यक्ति ही होते हैं, पूरा–का–पूरा समाज नहीं। शास्त्रीय भाषा अपनी विशिष्ट शब्दावली (जैसे विधि की भाषा या विज्ञान की भाषा) या अभिव्यंजना पद्धति (जैसे संस्कृत के न्यायशास्त्र के ग्रंथों की भाषा) के कारण कठिन होती है। शास्त्रीय भाषा सामान्य भाषा के काफी शब्दों का प्रयोग करती है। शास्त्रीय भाषा की अपनी पारिभाषिक शब्दावली भी होती है, जो केवल उसी की होती है। जैसे सामान्य भाषा में जिसे 'खारा पानी' कहते हैं शास्त्रीय भाषा में उसे 'लवण जल' कहा जाता है और 'मीठा पानी' को 'अलवण जल' कहा जाता है। अतः सामान्यतः शास्त्रीय भाषा में 'खारा पानी' 'मीठा पानी' वर्ग के भाषा के सामान्य शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता, शास्त्र अपने विशिष्ट शब्दों का ही प्रयोग करते हैं। सामान्य भाषा में बहुत से शब्दों का एक अर्थ होता है तो शास्त्रीय भाषा में दूसरा भी होता है।

2.4.4 काव्य भाषा

काव्य भाषा वह है जिसका प्रयोग सर्जनात्मक साहित्य में होता है। काव्य भाषा में 'काव्य' का अर्थ 'पद्य' या कविता नहीं है। दूसरी ओर कोई आवश्यक नहीं कि 'पद्य' या 'छंद' में प्रयुक्त हर भाषा काव्य भाषा ही हो। मध्यकाल में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित आदि के कई ग्रंथ छंदबद्ध लिखे गए। अनेक रीतिबद्ध कवियों ने काव्य–शास्त्र के अनेक लक्षणों को छंदबद्ध किया है। अतः काव्य भाषा गद्य भी हो सकती है जैसे भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों की भाषा आदि। वस्तुतः 'काव्य' शब्द सामान्य प्रयोग में कविता के लिए रूढ़ि–सा बन गया है। अतः कभी–कभी 'काव्यभाषा' से 'कविता की भाषा' का भ्रम हो जाता है। अतः इसे काव्य भाषा न कहकर साहित्यिक भाषा कहना अधिक समीचीन होगा, किंतु शैलीविज्ञान तथा आलोचना शास्त्र में इस अर्थ में 'काव्यभाषा' का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि उसे छोड़कर एक–दो व्यक्ति यदि 'साहित्यिक भाषा' का प्रयोग करें भी तो उसके प्रचलित होने की संभावना नहीं है। काव्यभाषा सर्जनात्मक साहित्य की भाषा है। काव्यभाषा का अर्थ केवल साहित्य (गद्य–पद्य) में प्रयुक्त भाषा ही है। काव्यभाषा का प्रयोग कुछ सीमित लोग ही करते हैं तथा प्रयोक्ताओं से कुछ अधिक लोग (पूरा

टिप्पणी

समाज नहीं) उसे ठीक प्रकार से हृदयंगम कर पाते हैं। काव्यभाषा में एक शब्द का कई अर्थों में प्रयोग सौंदर्य माना जाता है। इस सौंदर्य को काव्यशास्त्र में यमक तथा श्लेष अलंकारों आदि से अभिहित किया गया है। काव्य भाषा के शब्द लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ और बिंबार्थ द्वारा भिन्न–भिन्न अर्थों की प्रतीति कराते हैं। उनमें शब्द और अर्थ का संबंध सामान्य तर्क द्वारा अनुमोदित अर्थ से बहुत दूर निकल जाता है। कभी–कभी तो अर्थ की बहुत सारी परतें होती हैं परंतु यह बात तो पाठक या श्रोता की समृद्ध कल्पना और क्षमता पर निर्भर करती है कि वह कितनी गहराई तक बैठकर कितने अर्थों को पकड़ पाता है। उदाहरणार्थः 'फूल' सामान्य भाषा में मात्र पुष्प है तो काव्यभाषा में सुख, कोमलता, आनंद, मुस्कान आदि भी है। इसी तरह 'कांटा' पेड़–पौधों पर होने वाला कंटक मात्र है, किंतु काव्यभाषा में यह कठोर, नीरस, विघ्न, बाधा, दुख, आपत्ति आदि का भी बोधक है। इसी प्रकार 'भौंरा' सामान्य भाषा में उड़ने वाला एक कीड़ा है परंतु काव्यभाषा में प्रेमी, स्वार्थी, यथार्थ प्रेम न करके वासनापूर्ति के लिए प्रेम का दिखावा करने वाला, कभी किसी से तो कभी किसी से स्वार्थवश प्रेम करने वाला आदि है। काव्यभाषा का अपना अस्तित्व होता है, इसीलिए कुछ पंक्तियों को सुनकर हम सहसा कह उठते हैं कि ये पंक्तियां निराला जी की लगती हैं और ये महादेवी की। काव्यभाषा विशिष्ट अनुभव गर्भित होती है इसीलिए वह कवि की अनुभूति को पाठक तक पहुंचाने में समर्थ होती है।

गतिविधि

संवैधानिक भारतीय भाषाओं का एक चार्ट बनाइए।

क्या आप जानते हैं?

भारत का संविधान, संविधान सभा द्वारा 26 नवंबर, 1949 को पारित हुआ और 26 जनवरी, 1950 से प्रभावी हुआ।

2.5 सारांश

संस्कृत में शैली के स्वरूप के बारे में कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं होता। संस्कृत साहित्य में भाषा, अलंकार, शब्द शक्ति, वक्रोक्ति, रीति, छंद, गुण–दोष आदि के बारे में चर्चा तो हुई है परंतु शैली के बारे में कोई स्पष्ट अर्थ और व्याख्या नहीं मिलती। शैली पर गंभीरतापूर्वक विचार करने पर पता चलता है कि भारतीय विद्वानों की अपेक्षा पाश्चात्य विद्वानों ने अधिक टीका–टिप्पणियां और व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं।

शैली का अध्ययन ही शैली विज्ञान है। सभी व्यक्तियों की भाषा ध्वनि, शब्द, रूप तथा वाक्य रचना आदि की दृष्टि से पूर्णतः समान नहीं होती चाहे वे एक भाषा–भाषी ही क्यों न हों। एक ही भाषा में लिखने वाले कवियों, साहित्यकारों एवं अन्य लेखकों की अपनी–अपनी शैलीगत विशेषताएं होती हैं। शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की एक नई शाखा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. सामान्य भाषा मनुष्यों के विचारों के आदान–प्रदान की ..... भाषा होती है।
10. ..... का अर्थ होता है एक निश्चित पैमाने के अनुसार गठित।

सही/गलत बताइए–

11. भाषा को सीखने या बोलने के लिए व्याकरण की आवश्यकता नहीं होती।
12. आज काव्यभाषा शब्द प्रसरण की भाषा है।

टिप्पणी

हर व्यक्ति की शैली उसके व्यक्तित्व के अनुरूप होती है। भाषा के प्रसंग में शैली का संबंध अभिव्यक्ति से है।

हर भाषा में ध्वनि, शब्द–समूह, रूप–रचना तथा वाक्य–गठन आदि की दृष्टि से अभिव्यक्ति का एक सर्वस्वीकृत मानक या परिनिष्ठित रूप होता है जिसे उस भाषा में अभिव्यक्ति का एक सामान्य ढंग कह सकते हैं। जो लोग लेखन में या बोलने में इसी सामान्य रूप का प्रयोग करते हैं, उनकी कोई अपनी शैली नहीं मानी जाती। शैली मानी जाती है उनकी जो इस सामान्य रूप में ध्वनि, शब्द–समूह, रूप–रचना तथा वाक्य–गठन आदि की दृष्टि से हट कर प्रयोग करते हैं। इस तरह शैली–विशेष के लिए यह आवश्यक है कि चुनकर भाषिक इकाइयों का ऐसा प्रयोग हो जो सामान्य की तुलना में विशेष या अलग हो। भाषा की सामान्य अभिव्यक्ति पूरे भाषा–समाज की होती है, किंतु शैली व्यक्ति की या वैयक्तिक होती है। इसका मुख्य आधार है चयन– चयन से यहां आशय है किसी भाषा में प्रयुक्त ध्वनियों, शब्दों, रूपों, वाक्यों आदि का चयन। व्यक्ति अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुकूल चयन करके अपनी बात को व्यक्त करता है।

आज शैली विज्ञान भाषा के अत्यंत महत्वपूर्ण अंग के तौर पर ही नहीं, बल्कि साहित्यिक शैली विज्ञान तो एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो गई है। यह समीक्षा पद्धति सामान्य भाषा का नहीं वरन साहित्यिक भाषा का विश्लेषण करती है और भाषा के अंदर छिपे भावों तक पैठती है तथा भाव के साथ भाषा की संगति का अध्ययन करती है। जहां सामान्य भाषा का कार्य सूचनाएं देना है वहीं साहित्यिक भाषा प्रकट अर्थ के अतिरिक्त किसी अभ्यंतर अर्थ का भी उद्घाटन करती है। शैली वैज्ञानिक समीक्षा यह देखती है कि रचनाकार की भाषा उस अभ्यांतर अर्थ का उद्घाटन करने में सक्षम है या नहीं। शैली वैज्ञानिक समीक्षा पद्धति साहित्यिक भाषा की प्रकृति का भी अध्ययन करती है। इसमें बिंब विधान, अलंकार योजना, छंद, वाक्य–विन्यास, शब्द चयन इन सबों पर ध्यान दिया जाता है।

भाषा का साध्य संप्रेषण है, अर्थ व्यापार है और सामाजिक चरित्र वह शक्ति है जो किसी एक समुदाय के सभी व्यक्तियों की भावना, चिंतन और जीवन–दृष्टि के धरातल पर एक–दूसरे के नजदीक लाकर एक इकाई में बांधती है। हॉगन के अनुसार, "संस्थागत दृष्टि से भाषा को देखना वस्तुतः न केवल संप्रेषण–व्यवस्था के प्रयोजनसिद्ध रूप में भाषा को देखना है, पर भाषा के सहारे जातीय पुनर्गठन के इतिहास को भी जानना है।"

भाषा की बनावट की दृष्टि से हम उसकी संरचनात्मक व्यवस्था की बात करते हैं जबकि प्रयोजन के संदर्भ में हम यह बताते हैं कि इसके द्वारा किसी भाषाई समुदाय के व्यक्ति आपस में विचार–विनिमय करते हैं। बनावट और संरचना के संदर्भ का केंद्रक उस भाषा का 'व्याकरण' होता है ओर उसके प्रयोजन के संदर्भ का 'संप्रेषण'।

सामान्य भाषा बोलचाल में या दैनिक जीवन में प्रयुक्त होती है। वह ऐसी होती है कि लोग यथाशीघ्र उसे समझकर उसका प्रयोग कर सकें। सामान्य भाषा आधार भाषा है। सामान्य भाषा ही मूल भाषा होती है। सामान्य भाषा सहज होती है जो समाज की

टिप्पणी

सामान्य संपत्ति होती है। सामान्य भाषा अपनी शब्दावली और बनावट में सरल होती है। सामान्य भाषा अर्थ के स्तर पर मात्र सूचना देती है। उसका अपना व्यक्तित्व नहीं होता। मानक का अर्थ होता है– एक निश्चित पैमाने के अनुसार गठित। मानक भाषा का अर्थ एक ऐसी भाषा से है जो एक निश्चित पैमाने के अनुसार लिखी या बोली जाती है। मानक भाषा व्याकरण के अनुसार ही लिखी और बोली जाती है, अर्थात मानक भाषा का पैमाना उसका व्याकरण है। मानक भाषा को कई नामों से पुकारते हैं। इसे कुछ लोग परिनिष्ठित भाषा कहते हैं और कई लोग साधु भाषा। इसे नागर भाषा भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे स्टैंडर्ड लैंग्वेज भी कहते हैं।

आज हिंदी भी एक मानक भाषा है अर्थात जहां–जहां हिंदी लिखी या पढ़ी जाती है या पढ़े–लिखे लोग उसका व्यवहार करना चाहते हैं तो इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह व्याकरणसम्मत हो और उसका व्याकरण वही हो जो सर्वमान्य है। मानक भाषा जब अपने क्षेत्र से बाहर निकलती है, तो उसे भिन्न–भिन्न बोलियां बोलने वालों के संपर्क में आना पड़ता है। इन बोलियों को बोलने वाले मानक भाषा पर अपना प्रभाव डालते हैं और धीरे–धीरे जो प्रभाव मानक भाषा के काम के होते हैं और उसे समृद्ध करते हैं, वे सर्वमान्य हो जाते हैं।

शास्त्रीय भाषा वह है जिसका प्रयोग विभिन्न शास्त्रों एवं विज्ञानों (गणित, रसायन, भौतिक आदि) में होता है। शास्त्रीय भाषा की व्याकरणिक संरचना सामान्य भाषा की ही होती है। सामान्य भाषा ही मूल भाषा होती है तथा एक विशिष्ट दिशा में विकसित करके वैज्ञानिक या शास्त्रकार उसी भाषा को शास्त्रीय भाषा बना देता है। इस प्रकार शास्त्रीय भाषा एक कृत्रिम भाषा है। किंतु धीरे–धीरे प्रयुक्त होते–होते अपने क्षेत्र में अपने प्रयोक्ताओं और जानकारों के लिए यह एक सीमा तक सहज हो सकती है। शास्त्रीय भाषा की अपनी पारिभाषिक शब्दावली भी होती है, जो केवल उसी की होती है। काव्य भाषा वह है जिसका प्रयोग सर्जनात्मक साहित्य में होता है।

काव्य भाषा में 'काव्य' का अर्थ 'पद्य' या कविता नहीं हैं दूसरी ओर कोई आवश्यक नहीं कि 'पद्य' या 'छंद' में प्रयुक्त हर भाषा काव्य भाषा ही हो। मध्यकाल में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित आदि के कई ग्रंथ छंदबद्ध लिखे गए। अनेक रीतिबद्ध कवियों ने काव्य–शास्त्र के अनेक लक्षणों को छंदबद्ध किया है। अतः काव्य भाषा गद्य भी हो सकती है जैसे भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों की भाषा आदि। भक्ति काल में तद्भव और तत्सम प्रधान शब्दों के प्रयोग ने भाषा को संपन्न बना दिया। बाद की रीतिकालीन काव्य भाषा में वर्णनों की एकरसता के कारण इस काल की काव्यभाषा में विविधता का अभाव रहा। रीतिकाल की एकरसता को कम करने के लिए रीतिमुक्त कवियों द्वारा प्रयास किए गए लेकिन बृहद परिप्रेक्ष्य में देखें तो काव्य भाषा स्थिर और जड़ रह गई थी।

आधुनिक काल की काव्य भाषा एक बदलती मानसिकता की उपज है। समकालीन काव्य भाषा ने वस्तु जगत के साक्षात स्वरूप को चित्रित करते हुए समकालीन समय की भीषणता को प्रस्तुत किया। आज काव्य भाषा शब्द प्रसरण की भाषा है। समय की जटिलता

टिप्पणी

एवं विषमता को समकालीन कवि शब्द प्रसरण की काव्य भाषा के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। कवि विभिन्न संदर्भों में आवश्यकता के अनुसार काव्य भाषा के उचित शब्द विन्यास और लाक्षणिक प्रयोग करते हैं। मूल्य की स्थापना, मूल्य के विभिन्न कार्य क्षेत्र का निर्धारण, मूल्य–विघटन की दशा और दिशा आदि को सफलता से चित्रित करने में काव्य–भाषा का विशिष्ट स्थान है।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **शैली** : विचार प्रकट करने का ढंग, वस्तु निर्माण का कलापूर्ण ढंग जैसे मुगल शैली, पहाड़ी शैली।
- **भाषाविज्ञान** : वह विज्ञान जिसमें भाषा की उत्पत्ति और उसके विकास आदि का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जाता है।
- **अभीप्सित** : अभिलाषा, इच्छा।
- **अखंडनीय** : जिसके टुकड़े नहीं किए जा सकते।
- **आत्मप्रत्यक्ष** : स्वयं अपनी आंखों से किसी वस्तु को देखना, उसका अनुभव करना आत्मप्रत्यक्ष कहलाता है।
- **उपमान** : वह वस्तु जिससे किसी की तुलना की जाए।

2.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. अभिव्यक्ति
2. शैली
3. सही
4. गलत
5. अर्थ संप्रेषण
6. विशिष्ट
7. सही
8. गलत
9. साधन
10. मानक
11. गलत
12. सही

टिप्पणी

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरात्मक प्रश्न

1. शैलीविज्ञान का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. अर्थ संप्रेषण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
3. शास्त्रीय भाषा पर टिप्पणी लिखिए।
4. सामान्य भाषा का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न

1. शैली और शैलीविज्ञान का वर्णन करते हुए शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान के संबंध पर प्रकाश डालिए।
2. शैली विज्ञान और अर्थ संप्रेषण के आपसी संबंधों की व्याख्या कीजिए।
3. मानक भाषा का क्या अर्थ है? मानक भाषा की आवश्यकता, और मानक भाषा पर आधुनिकता के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।
4. काव्य भाषा के महत्व पर एक निबंध लिखिए।

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, *भाषाविज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
2. डॉ. नरेश मिश्र, *भाषा और भाषाविज्ञान,* अमर प्रकाशन, लोनी, गाजियाबाद।
3. डॉ. हरीश शर्मा, *भाषाविज्ञान की रूपरेखा,* अमित प्रकाशन गाजियाबाद।
4. श्यामचंद्र कपूर, *व्यावहारिक हिंदी व्याकरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
5. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल, *भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा,* सरन प्रकाशन मंदिर, मेरठ।

टिप्पणी

इकाई 3 भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 भारोपीय भाषा परिवार
  3.2.1 भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं
  3.2.2 भारोपीय परिवार का भाषाई ढांचा
3.3 हिंदी भाषा का उद्भव एवं विकास
3.4 अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का स्वरूप
3.5 हिंदी भाषा के नामकरण का प्रश्न
3.6 हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण और सामान्य परिचय
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

भारोपीय शब्द भारत + यूरोपीय का संक्षिप्त रूप है। यह Indo-European का अनुवाद है। भारोपीय भाषा परिवार में भारतवर्ष से यूरोप तक फैली हुई भाषाओं का समावेश है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, बंगाली, फारसी, ग्रीक, लेटिन, अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, पुर्तगाली और इतालवी इस परिवार की भाषाएं हैं।

आज जिसे हम हिंदी कहते हैं, वह शौरसेनी अपभ्रंश का ही विकसित रूप है। इसका जन्म समय 1000 ई. के लगभग माना जा सकता है, क्योंकि चौदहवीं सदी तक साहित्य में अपभ्रंश का प्रयोग होता रहा है और वर्तमान आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के आदि से आरंभ हो गया था। हिंदी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात हुआ है। हिंदी के विकास का स्पष्ट दर्शन हमें चंदवरदायी के समय से होने लगता है। यह समय बारहवीं सदी का अंतिम अर्द्ध भाग है परंतु उस समय में भी इसकी भाषा हिंदी से बहुत भिन्न हो गई थी। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र का समय संवत् 1144 और संवत् 1229 के बीच है। हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण दिए हैं। आदिकाल के पश्चात हिंदी के विकास का दूसरा चरण अर्थात मध्यकाल लगभग 525 वर्षों तक माना जाता है। इस काल को हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम भाग 1375 ई. से 1700 ई. तक मानते हैं। इस काल में हिंदी की पुरानी बोलियां परिवर्तित होकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं। आधुनिक काल खड़ी बोली का युग है। बोली के रूप में खड़ी बोली अवधी तथा ब्रज बोलियों की भांति प्राचीन है। प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों में यत्र–तत्र खड़ी बोली के प्रयोग देखने में आते हैं। इस इकाई में हम भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी के विषय में अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारोपीय भाषा परिवार के महत्व, इसकी प्रमुख विशेषताओं और मूल ध्वनियों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- हिंदी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली हिंदी के विकास की समीक्षा कर पाएंगे;
- अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी के स्वरूप की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- हिंदी भाषा के नामकरण के प्रश्न से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी की बोलियों के वर्गीकरण और इनके सामान्य परिचय की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- भारतीय आर्यभाषा पर हार्नले और ग्रियर्सन के मतों की पुष्टि कर पाएंगे।

3.2 भारोपीय भाषा परिवार

भारोपीय भाषा परिवार संसार के अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। यह संसार की प्राचीनतम साहित्यिक निधियों एवं संस्कृतियों का क्षेत्र रहा है। इसका विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र में है। यह यूरोप से भारतवर्ष तक विस्तृत है। इस भाषा परिवार की भाषाओं का अध्ययन तथा विवेचन अन्य परिवारों की तुलना में अधिक हुआ है।

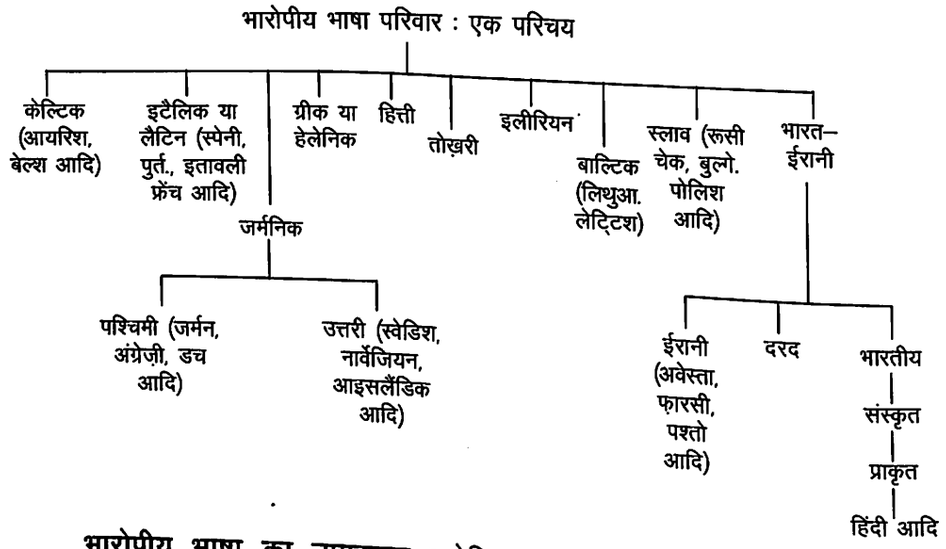

भारोपीय भाषा का नामकरण–यूरोशिया खंड में सबसे महत्वपूर्ण इस भाषा परिवार के नामकरण की समस्या रही है। अनेक विद्वानों ने इसे अलग–अलग नामों से संबोधित किया है–

टिप्पणी

1. इस भाषा परिवार को पहले **इंडो जर्मनिक** नाम दिया गया, क्योंकि यह यूरोप में जर्मन भाषाओं से एशिया में भारत की भाषाओं तक फैला है। परंतु यूरोप में जर्मन भाषा की पश्चिम केल्टिक भाषा भी इसी परिवार की भाषा है इसलिए आगे चलकर जर्मनी से बाहर के देशों ने इस नाम को त्याग–सा दिया।
2. इस परिवार का दूसरा नाम **इंडो केल्टिक** भाषा परिवार रखा गया, किंतु इसका भी अधिक प्रचलन नहीं हो सका है।
3. 'संस्कृत' भाषा से यूरोपीय विद्वानों का परिचय होने पर कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार को संस्कृत भाषा परिवार नाम दिया, क्योंकि उनका मत था कि इस परिवार की भाषाएं संस्कृत भाषा से निकली हैं किंतु यह नाम भी सर्वमान्य नहीं हो पाया।
4. भारोपीय परिवार को **आर्य–परिवार** भी नाम दिया गया, क्योंकि विश्वास किया जाता था कि इस परिवार के बोलने वाले आर्य जाति के हैं। किंतु सभी व्यक्ति आर्य नहीं हैं, इसलिए यह नाम भी बाद में त्याग दिया गया।
5. कुछ विद्वानों ने इस भाषा परिवार के लिए **काकेशियन भाषा परिवार** नाम दिया, किंतु यह भी अधिक ग्राह्य नहीं हो सका।
6. इस भाषा परिवार को हजरत के तीसरे बेटे जैफ के नाम पर **'जैफाइट'** या **'जफेटिक भाषा परिवार'** नाम दिया गया। यह नामकरण बहुत कुछ सेमेटिक या हैमेटिक नाम की समानता पर दिया गया था, किंतु अब यह नाम भी अप्रचलित है।

   इस परिवार को **इंडो हिताइड** नाम भी दिया गया तथा भारोपीय भाषा परिवार को इसका एक भाग माना गया है।
7. मूल भारोपीय भाषा के बोलने वाले लोगों को विरोस नाम दिया गया है। इसलिए इस भाषा परिवार को **विरोस भाषा परिवार** भी कहा गया है। 'विरोस' शब्द को संस्कृत आदि भाषाओं के 'वीर' शब्द का मूल माना गया है, जैसे संस्कृत में वीर, लेटिन में Vir या Uir प्राचीन आइरी में Fer तथा जर्मन भाषाओं में Wer शब्द पाया जाता है।

   ई. पू. 2400 में इंडो–हिट्टाइट भाषा की दो शाखाएं हो गई थीं– 'एनाटोलियन' तथा 'भारोपीय'। अतः इन दोनों भाषाओं के नाम से इस परिवार को भारोपीय एनाटोलियन नाम दिया जा सकता है।
8. इस परिवार के लिए सबसे अधिक प्रचलित नाम **भारोपीय भाषा परिवार** है। यद्यपि इस नामकरण का आधार भौगोलिक है, फिर भी इस परिवार की भाषाएं इस क्षेत्र (यूरोप से भारत तक) के बाहर अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका में भी बोली जाती हैं। अभी तक 'भारोपीय भाषा परिवार' नाम ही सर्वाधिक मान्य है। वैसे बहुत से विद्वान इसके 'इंडो–हिट्टाइट' नाम के समर्थक हैं।

टिप्पणी

3.2.1 भारोपीय भाषा परिवार की प्रमुख विशेषताएं

भारोपीय भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

1. इस परिवार की भाषाएं श्लिष्ट–योगात्मक हैं।
2. इस परिवार की भाषाओं में अर्थतत्व से संबंध तत्व का संयोग बहिर्मुखी होता है।
3. इसकी भाषाएं वियोगावस्था की ओर बढ़ रही हैं।
4. धातुएं एकाक्षरी होती हैं।
5. धातुओं में कृत् तथा तद्धित प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं।
6. उपसर्ग आदि का प्रयोग करने से धातुओं का अर्थ बदल जाता है।
7. इस परिवार की भाषाओं में समास रचना की जाती है। समास बनाते समय विभक्तियों का लोप हो जाता है।
8. इन भाषाओं में स्वर परिवर्तन से संबंध तत्व का परिवर्तन हो जाता है।
9. इनमें प्रत्यय पहले स्वतंत्र अर्थ प्रकट करते थे परंतु बाद में इनकी स्वतंत्रता समाप्त हो गई।
10. इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले जनसंख्या में सबसे अधिक हैं।
11. इसकी भाषाएं संसार के बहुत बड़े क्षेत्र में फैली हैं तथा व्यापक हैं।
12. इसमें संसार का प्राचीनतम तथा श्रेष्ठ साहित्य पाया जाता है।
13. इसमें विश्व की उन्नत सभ्यताओं का विकास हुआ है।
14. इस भाषा परिवार में अत्यंत विकसित वैज्ञानिक साहित्य पाया जाता है।
15. इसे बोलने वाले विश्व के राजनैतिक क्षेत्र में सबसे आगे हैं।
16. इसकी भाषाओं का अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक अध्ययन किया गया है।
17. इस भाषा परिवार के अनुशीलन के परिणामस्वरूप ही 'भाषा विज्ञान' का विकास हुआ है।

3.2.2 भारोपीय परिवार का भाषाई ढांचा

भारोपीय परिवार में कुछ ऐसी भाषाएं हैं, जिनमें अर्थ मात्र और रूप मात्र सर्वथा पृथक नहीं किये जा सकते। एक ही शब्द में अर्थ और रूप दोनों का ज्ञान हो जाता है। रूप मात्रवाली भाषाओं में यद्यपि कुछ भाषाओं में रूप मात्र स्वतंत्र देखे जाते हैं पर व्यवहार के बिल्कुल उपयोगी नहीं होते। क्योंकि आगम और विभक्ति को हम प्रकृति से पृथक नहीं कर सकते। प्रायः प्राचीन भारोपीय भाषाओं के शब्दों में अर्थ मात्र और रूप मात्र का ऐसा ही संबंध दिखाई पड़ता है।

टिप्पणी

भारोपीय भाषाएं सविभक्तिक होती हैं। इनमें प्रमुख रूप से रूपसाधक प्रत्यय, शब्द साधक प्रत्यय पाए जाते हैं। ब्रुगमान के कथनानुसार मूल भारोपीय भाषा में लगभग बत्तीस से अधिक ऐसे विशेषक प्रत्यय थे।

भारोपीय भाषाओं की संज्ञाओं में लिंग, वचन और कारक की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है और इन्हीं के कारण संज्ञा में रूपांतर होता है। पर, इन तीनों का किसी एक ही संज्ञा में विद्यमान होना आवश्यक नहीं है। भारोपीय परिवार की प्रायः सभी प्राचीन भाषाओं में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग तीनों लिंग पाए जाते हैं। पर लिंग–निर्णय के लिए किसी भाषा में कोई निश्चित नियम नहीं हैं। कुछ नामों का लिंग नैसर्गिक है। अर्थात वे पुरुष व स्त्री के नाम होने के कारण पुल्लिग व स्त्रीलिंग माने जाते हैं। पर, कुछ नाम ऐसे हैं, जिनका नैसर्गिक लिंग निश्चित नहीं है। ऐसे नामों को नपुंसक लिंग नाम देना उचित माना गया है। पर, सर्वत्र यह नियम नहीं लगता। ऐसे शब्दों के लिंग को हम कृत्रिम लिंग कह सकते हैं। अतएव नामों के अर्थों और उनके लिंगों में कोई विशेष संबंध नहीं जान पड़ता।

आदिम भारोपीय भाषा में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीनों वचन थे। पहले द्विवचन का प्रयोग केवल उन वस्तुओं में होता था, जिनका नैसर्गिक युग्म है, जैसे आंख, कान, हाथ, पांव आदि। जिन वस्तुओं का कृत्रिम युग्म है, उनके लिए भी द्विवचन का प्रयोग होता है। जैसे रथ के घोड़े, मुद्गर, जूते इत्यादि। परंतु कालांतर में किन्हीं दो वस्तुओं के लिए द्विवचन का प्रयोग होने लगा, और व्याकरण में एकवचन और बहुवचन के साथ–साथ द्विवचन के द्वारा भी रूपांतर होने लगा।

संस्कृत, यूनानी, लेटिन आदि भाषाओं की तुलना करने पर अनुमान लगाया जा सकता है कि आदि भारोपीय भाषा में कम से कम सात कारक रहे होंगे। साधारणतः कारकों के द्वारा जितने प्रकार के संबंध प्रदर्शित किये जाते हैं, वास्तव में उनसे अधिक संबंध होते हैं। इसीलिए किसी भाषा में कारकों की संख्या बहुत अधिक हो गई है और कहीं–कहीं स्पष्टता न होने से कारकों के स्थान में क्रमशः क्रिया–विशेषणों तथा संबंधसूचक अव्ययों का अधिकता से प्रयोग आरंभ हो गया।

मूल भारोपीय भाषा की गणना दशमलवात्मक थी। कहीं–कहीं द्वादशमलवात्मक गणना के भी चिह्न मिलते हैं। जैसे अंग्रेजी दर्जन और ग्रौस (12 दर्जन) में।

मूल भारोपीय भाषा में वर्तमान (Present), अपूर्णभूत (Imperfect), भविष्य (Future), पूर्णभूत (Perfect) और सामान्यभूत (Aorist) विद्यमान थे। पर प्लूपरफेक्ट (pluperfect) पीछे का जान पड़ता है। हेतुहेतुमद् (Subjunctive) और विध्यर्थ (Optative) भी रहे होंगे। पर इन सभी का प्रयोग जिन अर्थों में आजकल होता है, उन अर्थों में उस समय नहीं होता था। केवल इनके रूप विद्यमान थे। संस्कृत में यद्यपि तीन वाच्य पाए जाते हैं। पर, यूरोपीय विद्वानों का विचार है कि मूल भारोपीय भाषा में केवल दो ही वाच्य थे– कर्तृवाच्य और भाववाच्य।

विभिन्न भारोपीय भाषाओं की क्रियाओं में परस्पर इतना अंतर है कि उनकी तुलना करके मूलभाषा के रूपों तक पहुंचना इस समय असंभव सा दीखता है। अभी इस दिशा में खोज जारी है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. ..... परिवार का अध्ययन अन्य भाषा परिवारों की अपेक्षा अधिक हुआ है।
2. 'इंडो जर्मनिक' नाम भारोपीय भाषा परिवार का ..... नाम था।

सही/गलत बताइए–

3. भारोपीय भाषा परिवार की भाषाएं सरल एवं सुस्पष्ट हैं।
4. भारोपीय भाषा परिवार की गणना दशमलवात्मक थी।

टिप्पणी

3.3 हिंदी भाषा का उद्‌भव एवं विकास

आज जिसे हम हिंदी कहते हैं, वह शौरसेनी का ही विकसित रूप है। इसका जन्म समय 1000 ई. के लगभग माना जा सकता है, क्योंकि चौदहवीं सदी तक साहित्य में अपभ्रंश का प्रयोग होता रहा है और वर्तमान आर्य भाषाओं का साहित्य में प्रयोग तेरहवीं शताब्दी के आदि से आरंभ हो गया था। साहित्यिक रूप लेने में किसी भी भाषा को कुछ समय तो लगता ही है। अतः इस आधार पर हिंदी का जन्म दसवीं शताब्दी में हुआ, ऐसा माना जा सकता है।

(अ) विकास का आदि काल

हिंदी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात हुआ है। हिंदी के विकास का स्पष्ट दर्शन हमें चंदवरदायी के समय से होने लगता है। यह समय बारहवीं सदी का अंतिम अर्द्ध भाग है परंतु उस समय में भी इसकी भाषा हिंदी से बहुत भिन्न हो गई थी। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र का समय संवत् 1144 और संवत् 1229 के बीच है। हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में अपभ्रंश के कुछ उदाहरण दिए हैं। इससे पूर्व, विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के दूसरे भाग में वर्तमान महाराज भोज का पितृव्य द्वितीय वाकपति राजा परमार मुंज एक पराक्रमी राजा के साथ–साथ एक सहृदय कवि भी था। एक बार वह कल्याण के राजा तैलप के यहां बंदी हो गया। उसी समय मुंज ने कुछ दोहों की रचना की थी। उदाहरण रूप में एक प्रस्तुत है –

जा मति पच्छई संपज्जइ सा मति पहली होई।
मुंज भणइ मृणालपइ विघन न बैंठई कोई।

अर्थात, जो मति पीछे संपन्न होती है, वह यदि पहले हो तो मुंज कहता है, हे मृणालवती, कोई विघ्न न सतावे।

यह दोहा पढ़ते ही पता लग जाता है कि यह हिंदी के कितने पास पहुंचता है। भाषा साहित्यिक होने के कारण कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका रूप प्राकृत है जैसे– संपज्जइ। इन्हें पृथक कर देने पर भाषा और भी स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिंदी का विकास हेमचंद्र से पूर्व ही होने लगा था तथा चंदवरदायी के समय उसका कुछ–कुछ रूप स्थिर हो गया था। अतः हिंदी का आदि काल हम संवत 1050 के लगभग मान सकते हैं।

हिंदी प्रदेश की भाषा के सबसे प्राचीन उदाहरण पृथ्वीराज तथा समर सिंह के दरबारों से संबंधित पत्रों के रूप में थे। इनका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा ने किया था।

नाथ पंथ तथा वज्रयानी सिद्ध साहित्य से संबंधित बहुत–सी नवीन सामग्री पीतांबर दत्त बड़थ्वाल व राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान सर्वप्रथम प्रकाश में लाए थे। इस साहित्य के रचयिताओं के काल का अनुमान 700 ई. से 1300 ई. के मध्य लगाया जाता है। प्रारंभिक सिद्ध साहित्य की भाषा स्पष्ट रूप से अपभ्रंश (मागधी) है।

टिप्पणी

आदि काल की भाषा का तीसरा रूप चारण, धार्मिक तथा लौकिक काव्य ग्रंथों में मिलता है। इस प्रकार के लेखकों में नरपति नाल्ह, चंदवरदायी तथा रासो की भाषा राजस्थानी है, कहीं–कहीं खड़ी बोली के कुछ रूप पाए जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' चंदवरदायी का प्रमुख ग्रंथ है। चंद की काव्य रचना का समय 1168 ई. से लेकर 1192 ई. तक माना जाता है। वर्तमान पृथ्वीराज रासो में ब्रजभाषा के साथ अपभ्रंश खड़ी बोली तथा राजस्थानी मिश्रण दिखलाई पड़ता है।

जगनिक चंदवरदायी का समकालीन कवि था। वह बुंदेलखंड के राजा परमार के दरबार में था। उस कवि की मूल कृति का पता नहीं चलता है। पर यह माना जाता है कि उसके बनाए ग्रंथ के आधार पर ही प्रारंभ में आल्ह खंड की रचना हुई थी।

विद्यापति कवि के जिन पदों का संग्रह मिथिला में हुआ है, उनकी भाषा मैथिली है तथा बंगाल में संगृहीत पद समूह की भाषा बंगाली है। इनके किसी भी वर्तमान संग्रह की भाषा पंद्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ की नहीं मानी जा सकती है। हिंदी अथवा दक्खनी उर्दू साहित्य का विकास दक्षिण भाषा में हुआ। इस साहित्य का आरंभ 1326 ई. में मुहम्मद तुगलक के दक्षिण आक्रमण के पश्चात हुआ। इस साहित्य की भाषा पुरानी खड़ी बोली है। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध ख्वाजा बंदा नवाज थे। इनका समय 1121 ई. से 1452 ई. तक रहा।

आदि काल की हिंदी में अपभ्रंश की लगभग सभी ध्वनियां आ गई थीं पर साथ में कुछ नई ध्वनियों का भी विकास हुआ। अपभ्रंश में संयुक्त स्वर नहीं थे। हिंदी में 'ए' तथा 'ओ' दो संयुक्त स्वर इस काल में प्रयुक्त होने लगे। व्यंजनों में एक तो दंत्योष्ठ्य 'व' नया विकसित हो गया तथा दो उत्क्षिप्त ध्वनियां 'ड़', 'ढ़' भी प्रयुक्त होने लगीं।

इस काल का साहित्य जिस भाषा में लिखा गया उसके विशेषतया दो रूप थे – डिंगल तथा पिंगल। डिंगल तो वह भाषा थी जिसमें प्राकृत के प्राचीन शब्दों का बाहुल्य था। इस भाषा का ढांचा राजस्थानी या गुजराती था। पिंगल उस भाषा को कहते थे, जिसका ढांचा पुरानी ब्रजभाषा का होता था, जिसमें थोड़ा बहुत खड़ी बोली या पंजाबी का भी पुट होता था। यह एक सामान्य साहित्यिक भाषा थी। वास्तव में हिंदी का संबंध इसी पिंगल भाषा से है। 'पृथ्वीराज रासो' इसी साहित्यिक सामान्य भाषा में लिखा गया है।

(ब) विकास का मध्यकाल

आदिकाल के पश्चात हिंदी के विकास का दूसरा चरण अर्थात मध्यकाल लगभग 525 वर्षों तक माना जाता है। इस काल को हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम भाग 1375 ई. से 1700 ई. तक मानते हैं। इस काल में हिंदी की पुरानी बोलियां परिवर्तित होकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं।

दूसरा भाग 1700 ई. से लेकर 1900 ई. तक माना जाता है। इसमें ब्रज, अवधी, खड़ी बोलियां परिष्कृत होती हैं, परिमार्जित होती हैं और उनमें प्रौढ़ता आती है। वे मात्र बोलियां न रहकर भाषा का रूप ले लेती हैं।

टिप्पणी

अवधी तथा ब्रज, इन दो बोलियों का साहित्यिक रूप में विकास सोलहवीं शताब्दी से प्रारंभ हुआ।

अवधी : मध्ययुग में भक्ति आंदोलन का विशेष स्थान है। इस काल में धर्म प्रचारकों ने जनमानस तक पहुंचने की आवश्यकता का अनुभव किया। जनमानस तक पहुंचने के लिए जनसाधारण की भाषा का ज्ञान तथा उसका उपयोग आवश्यक हो गया। इसी आवश्यकता के कारण निर्गुण पंथी संत कवियों ने जनसाधारण की भाषा को अपनाया, उसमें कविता की परंतु इन कवियों की भाषा एक विचित्र प्रकार की खिचड़ी है।

1. संत कवि कबीर के प्रभाव से इस प्रकार की खिचड़ी भाषा में विशेषकर पूरबी भाषा (अवधी) की बहुलता रही है।
2. आगे चलकर जब यही अवधी प्रेमाख्यानक मुसलमान कवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी तो इसमें किंचित परिमार्जन हुआ, जैसे– जायसी के 'पद्मावत' की अवधी।

अंत में राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने उसका परिमार्जन कर उसे प्रौढ़ता प्रदान की तथा उसे साहित्यिक आसन पर सुशोभित किया। मध्य काल में अवधी में लिखे गए ग्रंथों में दो मुख्य हैं – जायसी कृत 'पद्मावत' (1540 ई.) तथा तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस (1585)।

ब्रजभाषा : सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पुष्टि मार्ग के प्रमुख आचार्य वल्लभाचार्य से साहित्यिक सृजन को विशेष प्रोत्साहन मिला। इसका विवेचन निम्न प्रकार से है–

1. ब्रजभाषा का विकास, एक प्रकार से चिर प्रतिष्ठित प्राचीन काव्य भाषा से हुआ। 'पृथ्वीराज रासो' में इसके स्वरूप का कुछ आभास मिल जाता है। रासो की यह पंक्ति – 'तिहि रिपुजय पुरहन को भए प्रथिराज नारिंद' इसका उदाहरण है।
2. ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में यशस्वी करने का श्रेय सूरदास को है। सूरदास के रचना काल के समय तक अर्थात 1550 ई. तक ब्रजभाषा संपूर्ण रूप में काव्य का माध्यम बन चुकी थी। ब्रजभाषा का रूप दिन–प्रतिदिन साहित्यिक, परिमार्जित, प्रौढ़ तथा सुसंस्कृत होता चला गया। जिस प्रकार अवधी भाषा ने तुलसी के 'रामचरितमानस' में प्रौढ़ता प्राप्त की है, उसी प्रकार अष्टछाप के कवियों की पदावली में ब्रजभाषा भी विकसित हुई।
3. घनानंद, नंददास, बिहारी, पद्माकर की कविता में तो उसका पूर्ण परिपाक हुआ। मध्यकाल के दूसरे चरण की प्रमुख विशेषता है ब्रजभाषा की विशुद्धता। वर्तमान युग में इस विशुद्धता के प्रतिनिधि के रूप में बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का नाम लिया जा सकता है।

ध्वनियों की दृष्टि से देखा जाए तो इस काल में पढ़े–लिखे लोगों की हिंदी में क, ख, ग, ज, फ में पांच व्यंजन ध्वनियां सम्मिलित हो गईं। इस काल में लोगों की धर्म के प्रति आस्था थी, इसी कारण इस युग के पूर्वार्द्ध तक धार्मिक साहित्य अधिक लिखा गया। धर्म

टिप्पणी

की प्रमुखता के कारण संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का प्रचार हुआ। फलतः आदि काल की अपेक्षा बहुत अधिक तत्सम् शब्द साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त होने लगे।

(स) विकास का आधुनिक काल

आधुनिक काल खड़ी बोली का युग है। खड़ी बोली अवधी तथा ब्रज बोलियों की भांति प्राचीन है। प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों में यत्र–तत्र खड़ी बोली के प्रयोग देखने में आते हैं, यह बात और है कि साहित्य के माध्यम के रूप में वह इतनी शीघ्र स्वीकृत नहीं हुई। मराठा भक्त कवि नामदेव की कविता में पहले शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते हैं–

पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी।
लैकरि ढेंगाटंगरी तोड़ी लंगत–लंगत जाती थी।।

नामदेव का जन्म 1192 ई. में हुआ था, अतः खड़ी बोली की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। रासो, कबीर, भूषण आदि के द्वारा खड़ी बोली का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि खड़ी बोली का अस्तित्व प्रारंभ से ही था यद्यपि साहित्य का माध्यम वह नहीं बनी थी। अतएव हिंदी भाषा अपने मध्यकालीन विकास में तीन रूपों में दिखाई पड़ती है– अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली। आधुनिक काल तक आते–आते साहित्य की माध्यम भाषा के रूप में अवधी तथा ब्रज का प्रयोग घटता गया और खड़ी बोली का प्रयोग बढ़ता गया। अठारहवीं शताब्दी में ब्रज भाषा की शक्ति क्षीण हो चुकी थी और इधर मुसलिमों के मध्य खड़ी बोली (उर्दू) जोर पकड़ चुकी थी। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में अंग्रेजों की प्रेरणा से हिंदुओं ने खड़ी बोली गद्य के संबंध में कुछ प्रयोग किए। फलस्वरूप फोर्ट विलियम कॉलेज के लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की। खड़ी बोली के प्रारंभिक ग्रंथों पर ब्रजभाषा का प्रवाह है, जो स्वाभाविक ही है।

खड़ी बोली हिंदी के विकसित रूप के गद्य साहित्य में प्रचार का प्रमुख श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है। उनके काल में भाषा में राष्ट्रीयता की एक लहर उठी। हिंदी को उर्दू–फारसी के प्रवाह से मुक्त करने का प्रयास प्रारंभ हुआ। भाषा की समृद्धि के लिए संस्कृत के शब्द लिए जाने लगे। हिंदी भाषा के परिष्कार का कार्य प्रारंभ हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हिंदी सिर ऊंचा कर आगे बढ़ती रही। इधर उसने अपने रूप को इतना विकसित कर लिया है कि समस्त गद्य साहित्य में ही नहीं वरन् पद्य साहित्य में भी खड़ी बोली का बहुलता से प्रयोग हो रहा है। इस प्रकार आधुनिक काल में खड़ी बोली हिंदी भाषा का रूप ले चुकी है।

भारतेंदु युगीन लेखकों में व्याकरण संबंधी बहुरूपता, लिंग, वचन, कारक प्रयोगों में अस्थिरता आदि दोष मिलते हैं। कालांतर में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषागत दोषों को दूर करने का प्रशंसनीय प्रयास किया। छायावादी कवियों को यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने खड़ी बोली को एक उच्च साहित्यिक भाषा का रूप प्रदान किया। बाद में वह उन्मुक्त होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विचरने लगी। भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, प्रसाद, पंत, निराला, यशपाल डॉ. रांगेय राघव, मुक्तिबोध, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि इस काल के समर्थ साहित्यकार हैं। साहित्य की समस्त विधाओं का इस युग में पर्याप्त विकास हो रहा है।

टिप्पणी

आज हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा है किंतु किंचित राजनीतिक एवं भौगोलिक कारणों से उसका समग्र भारत में उतना प्रचार–प्रसार नहीं हो पा रहा है, जितना कि एक स्वतंत्र राष्ट्र में होना चाहिए। किंतु आशा है, भविष्य में हिंदी समग्र भारतीयों का कंठहार बन कर विश्व की भाषाओं में समादृत स्थान पर प्रतिष्ठित होगी।

साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का उद्भव एवं विकास

खड़ी बोली को अनेक नामों से अभिहित किया जाता है, जैसे – हिंदुस्तानी, नागरी हिंदी, सरहिंदी, कौरवी आदि। खड़ी बोली इसका सबसे नवीन नाम है। 'खड़ी बोली' शब्द का प्रथम प्रयोग 1800 ई. के लगभग मिलता है। 1805 ई. में लल्लूलाल ने अपने 'प्रेम–सागर' में इस शब्द का प्रयोग किया है। जैसे– 'प्रेम–सागर' से उद्धृत यह वाक्य देखिए– 'जॉन गिलक्राइस्ट महाशय की आज्ञा से सन् 1806 में लल्लूलाल कवि ब्राह्मण, गुजराती, सहस, अवदीच आगरे वाले ने इसका सार ले यामनी भाषा छोड़ दिल्ली, आगरे की खड़ी बोली में कह 'प्रेम–सागर' नाम रखा।'

इससे भी पहले 1803 ई. में गिलक्रिस्ट ने इस शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक 'The Hindee Story Teller' में किया –

'उन कहानियों में से कोई–कोई कहानी खड़ी बोली अथवा हिंदुस्तानी की शुद्ध हिंदवी शैली में है।'

खड़ी बोली के अर्थ व व्युत्पत्ति के संबंध में 8 मत प्रचलित हैं –

1. **खड़ी का अर्थ खरी या विशुद्ध भाषा :** अरबी फारसी के शब्दों से रहित, विशुद्ध भारतीय। समर्थक– जॉन गिलक्रिस्ट, गार्सा द–तासी, केलॉग (हिंदी व्याकरण) इस्टविक प्लैटस (A Dictionary of Urdu Classical Hindi and English) सुधाकर बेदी (सीधी बोली की राम कहानी) – इन्होंने 'र' व 'ड़' को पर्याय माना है, इसलिए खड़ी बोली को खरी बोली के नाम से पुकारा। इन्होंने इसका नाम 'ठेठ हिंदी' भी दिया है। बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन (इन्होंने भी इसको 'ठेठ हिंदी' कहा है) चंद्रबली पाण्डेय ('उर्दू का रहस्य' – इन्होंने प्राकृत, शुद्ध या खरी बोली माना है)
2. **खड़ी या उठी हुई :** जो पड़ी हुई न हो (पड़ी = गिरी पड़ी)। इसके समर्थकों ने ब्रज या पूर्वी बैसवाड़ी, अवधी, राजस्थानी और गुजराती को गिरी–पड़ी भाषाएं माना है। इन सब भाषाओं का विरोध करने वाली भाषा खड़ी बोली कहलाई। इसके समर्थक श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ. सुनीति कुमार चाटर्जी हैं।
3. **खड़ी और खरी बोली दोनों का समन्वित रूप :** इन्होंने गिरी–पड़ी भाषाओं में रेख्ता को गिरी–पड़ी माना तथा इसके विरोध में उत्पन्न भाषा को खड़ी बोली माना। विदेशी शब्दों का बहिष्कार होने से इन्होंने इसे खरी बोली भी कहा। अतः यह दोनों का समन्वित रूप है। समर्थक – ब्रजरत्नदास (भारतेंदुकालीन विद्वान)।
4. **खड़ी या कर्कश बोली :** अवधी की अपेक्षा कर्कश भाषा होने के कारण इसको कर्कश कहा गया है। इस मत के समर्थक कामता प्रसाद गुरु (हिंदी व्याकरण) और डॉ. धीरेंद्र वर्मा हैं। मारवाड़ के लोग इस भाषा को 'ठेठ बोली' (कठोर–बोली) भी कहते हैं।

5. **खड़ी पाई वाली :** जिसमें 'अ' ध्वनि की मात्रा अधिक हो। खड़ी पाई के कारण इसे खड़ी बोली कहा गया। इसके समर्थक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी हैं। इन्होंने कुछ हद तक इसका वैज्ञानिक विवेचन भी किया है।
6. **गंवारू बोली :** गांव की असंस्कृत भाषा खड़ी बोली है। एक मुसलिम लेखक अब्दुल हक ने औरंगाबाद से प्रकाशित होने वाली उर्दू पत्रिका में सन् 1904 में लिखा–

   'खड़ी बोली के मायने हिंदुस्तान में आमतौर पर गंवारू बोली के हैं, जिसे हिंदुस्तान का बच्चा–बच्चा जानता है। वह न कोई खास जबान है और न जबान की कोई शाख।'
7. **प्रचलित या चलती बोली :** इन्होंने इसे बहुत अच्छी व पूर्ण स्थापित प्रचलित बोली माना है। समर्थक – टीग्राह्य बोली।
8. **टकसाली या स्टेंडर्ड बोली :** अंग्रेजी की Stand धातु से Standard बना और धीरे–धीरे इस खड़ी बोली को Standard Speech नाम दिया गया, जिसका एक निश्चित मापदंड है क्योंकि Standard= निश्चित मापदंड। समर्थक – आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र एवं हरदेव बाहरी।

Hindoostani Philology part-I में Standard का अर्थ खरा किया गया है, इसलिए इसका नाम खरी बोली Standard Speech बना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि खड़ी बोली के नामकरण के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं, किंतु मत संख्या 1, 3, 5 अधिक मान्य है।

क्षेत्र : डॉ. ग्रियर्सन ने इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत माना है। यद्यपि इसको बोली के रूप में लिखा जाता है, लेकिन आज यह समृद्ध, संपन्न, साहित्यिक भाषा है। इसको 'राष्ट्रभाषा' का गौरव प्राप्त हो चुका है, अतः इसको बोली के रूप में मानना, इसके साथ अन्याय करना होगा।

इसका शुद्ध क्षेत्र गंगा–यमुना का उत्तरी दोआब अर्थात देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुज्जफरनगर और मेरठ के पूरे ज़िले। यह पश्चिम में यमुना के समीपवर्ती अंबाला, दक्षिण पूर्व में बिजनौर और मुरादाबाद तथा रामपुर जिलों में बोली जाती है।

विकास : खड़ी बोली का स्वतंत्र अस्तित्व बहुत प्राचीन समय से ही मिलता है। ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश मिश्रित लोकभाषा में खड़ी बोली के बीज दिखाई देते हैं। तत्कालीन जैन धर्म–ग्रंथों में खड़ी बोली का आदि रूप उपलब्ध होता है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन खड़ी बोली का विकास इससे भी पूर्व का मानते हैं अर्थात आठवीं शताब्दी में सिद्ध कवियों की रचनाओं में इन्होंने खड़ी बोली को माना है। लेकिन वास्तविक खड़ी बोली चौदहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुई। प्रथम रचना अमीर खुसरो की पहेलियां–मुकरियां आदि मानी जा सकती हैं।

दुर्भाग्यवश बीच में यह विकास रुक गया, लेकिन धीरे–धीरे इसका विकास पुनः भारतेंदु काल में हुआ और आज यह पूर्ण यौवन पर है।

टिप्पणी

टिप्पणी

बोलने वालों की संख्या : इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 1 करोड़ से अधिक है।

विशेषताएं : अवधी अकारांत या व्यंजनांत, ब्रजभाषा ओकारांत और खड़ी बोली आकारांत है जैसे–

अवधी : करत, होत, जात, होब, घोर, बड़, छोट, खोट आदि।

ब्रजभाषा : करतो, होतो, घोरो, बड़ो, छोटो, खोटो, छोरो, करैबो, करनो, लीनो आदि।

खड़ी बोली : करता, होता, जाता, किया, करना, होना, जाना, बड़ा, छोटा, घोड़ा, खोटा आदि।

3.4 अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिंदी का स्वरूप

3.4.1 अपभ्रंश

प्राकृत–कालीन जनभाषा के विकसित रूप को 500 ई. से 1000 ई. के बीच अपभ्रंश कहा जाता है। अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो जैसा विचित्र और आश्चर्यजनक नाम अपभ्रंश का मिलता है वैसा किसी दूसरी भाषा का नहीं मिलता। अपभ्रंश नाम से एक दूसरी ही मनःस्थिति का बोध होता है। संस्कृत कोश ग्रंथों में अपभ्रंश का अर्थ 'बिगड़े हुए शब्दों वाली भाषा' अथवा 'बिगड़ा हुआ शब्द' ही दिया गया है। अपभ्रंश का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि (150 ई.पू. के लगभग) के 'महाभाष्य' में मिलता है। वैसे तो भर्तृहरि का वाक्यपदीय में शब्द प्रकृति अपभ्रंश है। वाक्यदीप, काण्ड 1, कारिका 148 का वार्तिक (ला.सं.पृ. 134) से भी ज्ञात होता है कि 'व्याडि' नाम के संग्रहकार ने भी अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया था। व्याडि का उल्लेख महाभाष्य में मिलता है। ये 'व्याडि' महाभाष्यकार पतंजलि से पहले हुए थे। अतः अपभ्रंश शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग उन्हीं के द्वारा किया गया मान सकते हैं लेकिन व्याडि का मूल ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण पतंजलि के अपभ्रंश विषयक कथन को ही प्रामाणिक माना जा सकता है।

आगे भरत द्वारा अपभ्रंश को आभीरोक्ति कहा गया। अपने नाट्यशास्त्र में भरत ने 'विभ्रष्ट' या 'प्रभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग किया। यह लक्षण पतंजलि के 'अपशब्द' का ही प्रसार है। चंड द्वारा उनके ग्रंथ 'प्राकृत लक्षणम्' में 'अपभ्रंश' शब्द का प्रयोग भाषा के अर्थ में किया गया। वलभी के राजा द्वितीय धरसेन ने इसी सदी के एक ताम्रलेख में अपने पिता गुहसेन की प्रशस्ति में लिखा है कि वे संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की काव्य रचना में निपुण थे। भामह ने इसी सदी में अपभ्रंश को संस्कृत और प्राकृत के साथ एक काव्योपयोगी भाषा कहा है। आचार्य रुद्रट (9वीं शताब्दी) ने भी संस्कृत एवं प्राकृत के साथ ही अपभ्रंश को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दी।

काव्य मीमांसाकार राजशेखर (10वीं सदी) के अनुसार यह सकल, मरु, टक्क और भादानक वासियों द्वारा बोली जाती थी। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के महान विद्वान हेमचंद्राचार्य ने अपने ग्रंथ 'सिद्ध–हेम शब्दानुशासन' के आठवें अध्याय में अपभ्रंश सूत्रों की व्याख्या दोहों के रूप में की है। इससे यह सिद्ध होता है कि इनके समय में अपभ्रंश विकास की अवस्था को ग्रहण करने लगी थी। ग्यारहवीं शती में प्राकृत वैयाकरण पुरुषोत्तम ने अपभ्रंश को शिष्ट वर्ग की भाषा माना। बारहवीं शती में हेमचंद्र ने अपभ्रंश का व्याकरण लिखा। इस प्रकार ईसा पूर्व दूसरी शती से बारहवीं शती तक अपभ्रंश का प्रयोग भिन्न–भिन्न कालों में 'अपशब्द, विभाषा, लोकभाषा, शिष्ट और साहित्यिक भाषा के अर्थ में हुआ। प्राचीन और मध्यकालीन भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा थी जो जनसाधारण की शक्ति से संबलित होकर संस्कृत के पश्चात दूसरी सबसे लंबे काल तक साहित्य की भाषा बनी। इसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी भी कहा जाता है।

अपभ्रंश का काल 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है लेकिन कुछ लोगों ने इसका काल 600 से 1100 ई. तक और कुछ ने 1200 ई. तक इसका समय माना है। कुछ अन्य ने इसका काल 7वीं सदी से 13वीं सदी तक माना है। डॉ. सुकुमार सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'A Comparative Grammar of Middle Indo Aryan' के नये संस्करण में अपभ्रंश का काल 1 ई. से 600 ई. तक माना है। 6ठी शती से चली आ रही काव्य भाषा–अपभ्रंश, लोकभाषा न रहकर साहित्य की रूढ़ भाषा बन गई। आचार्य हेमचंद्र पहले वैयाकरण है जिन्होंने इस काल में ग्राम्य भाषा और साहित्य रूढ़ अपभ्रंश का भेद किया। उनके द्वारा लिखित अपभ्रंश व्याकरण से भी बोलचाल की भाषा के विकास की पुष्टि होती है। 6वीं शती से 12वीं शती तक अपभ्रंश का काल मानने का एक तथ्य यह भी है कि ईसा की 13वीं शती से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के ग्रंथ प्राप्त होने लगते हैं। अतः 6वीं से 12वीं शती तक के समय को ही अपभ्रंश का काल मानना उचित होगा।

ईसा की तीसरी शताब्दी से अपभ्रंश भाषा का काव्यार्थ प्रयोग माना जाता है। भामह और दंडी ने भी अपभ्रंश काव्य की चर्चा की है। साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश अंशों का प्रथम दर्शन कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' में होता है। इसे याकोबी तथा स.प. पंडित अप्रामाणिक मानते हैं किंतु डॉ. उपाध्ये एवं डॉ. तगारे आदि इसे प्रामाणिक मानते हैं। 'मृच्छकटिक' के टीकाकार पृथ्वीधर ने विभाषा को अपभ्रंश के अंतर्गत स्वीकार किया है। इस प्रकार चांडाली, शावरी, शाकारी और टक्की अपभ्रंश ही हैं। जर्मन भाषा में 'प्राकृत भाषाओं के व्याकरण' के लेखक पिशेल के समय तक अपभ्रंश के बहुत कम काव्य प्रकाश में आए थे। आठवीं सदी में स्वयंभू का महाकाव्य 'पउमचरिउ' लिखा जो रामचरित को प्रस्तुत करता है। स्वयंभू का दूसरा महाकाव्य 'रिट्ठेणमिचरिउ' है जिसका आधार हरिवंशपुराण और महाभारत है। स्वयंभू द्वारा छंदों पर 'स्वयंभू छन्दस्' नामक एक ग्रंथ लिखा गया जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश के 60 कवियों के उद्धरण दिए गए हैं। हेमचंद्र द्वारा लिखित अपभ्रंश व्याकरण के साथ ही अपभ्रंश रूढ़ बन गई थी। यह केवल साहित्यिक भाषा बनकर रह गई। दसवीं सदी में अस्तित्व में आने वाली भाषा जनसाधारण में लोकप्रिय होने लगी और बारहवीं सदी तक अपभ्रंश को पीछे धकेल, स्वयं साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन हो गई। इस नई भाषा को 'अवहट्ट' कहा गया जो परवर्ती अपभ्रंश का रूप था।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. आज जिसे हम हिंदी कहते हैं ..... का विकसित रूप है।
6. आदिकाल की हिंदी में ..... की लगभग सभी ध्वनियां आ गई थीं।

सही / गलत बताइए–

7. ब्रज भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय सूरदास को है।
8. वास्तविक खड़ी बोली चौदहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुई।

टिप्पणी

टिप्पणी

अपभ्रंश की बोलियां और उनसे निकलने वाली आधुनिक भाषाएं

अपभ्रंश–बोलियां और उनसे निकलने वाली आधुनिक भाषाओं का वर्णन इस प्रकार है–

अपभ्रंश–बोलियां	उनसे निकलने वाली आधुनिक भाषाएं
1. शौरसेनी	(क) पश्चिमी हिन्दी
	(ख) इस अपभ्रंश के नागर रूप से–
	(अ) राजस्थानी
	(ब) गुजराती
	(ग) इस अपभ्रंश के पहाड़ी भागों में स्थित रूप से–पहाड़ी
2. पैशाची या केकय टक्क	(क) लहंदा
	(ख) पंजाबी (इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव है)
3. व्राचड,	सिंधी
4. महाराष्ट्री	मराठी
5. अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी
6. मागधी	(क) बिहारी
	(ख) बंगाली
	(ग) उड़िया
	(घ) असमिया

अपभ्रंश के कुछ प्रमुख रूप

शौरसेनी अपभ्रंश– शौरसेनी अपभ्रंश शौरसेनी प्राकृत का परिवर्ती रूप है। यह अपभ्रंश उत्तर में पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, कुछ पूर्वी पंजाब, मध्यप्रदेश के पश्चिमी भाग, राजस्थान एवं गुजरात में बोली जाती थी। इसी का परिनिष्ठित रूप तत्कालीन आर्यभाषी पूरे भारत की भाषा थी। अपभ्रंश साहित्य में इसी भाषा का प्रयोग हुआ है। इसे पश्चिमी अपभ्रंश, नागरक अपभ्रंश, नागरिका या नागर अपभ्रंश भी कहते हैं। कभी–कभी नागरिक अपभ्रंश का प्रयोग शौरसेनी अपभ्रंश के गुजरात में प्रयुक्त रूप के लिए भी हुआ है। परमात्मप्रकाश, योगसार, पाहुड़ दोहा, सावयधम्म दोहा, भविस्सयत्तकहा, उपदेश–तरंगिणी, सनत्कुमारचरित तथा कुमारपाल–प्रतिबोध आदि इसकी प्रमुख साहित्यिक कृतियां हैं।

(1) प्राकृत–कल्पतरु के अनुसार इसका आधार महाराष्ट्री एवं शौरसेनी प्राकृत है।

(2) उसी के अनुसार इसमें असंयुक्त, अनादि क्, ख्, त्, थ्, क्रमशः ग्, घ्, द्, ध् हो जाते थेः नाक > णाग, सुख > सुघु, पतितु > पदिदु, शोथ > सोधु। किंतु 'सकल' जैसे कुछ शब्द महाराष्ट्री प्राकृत की तरह सअल आदि हो जाते हैं:

(3) प्राकृतानुशासन के अनुसार श्, ष् का स् हो जाता था : शोथ > सोधु।

(4) अंत्य स्वर ह्रस्व हो गया था–संध्या > सांझ।

टिप्पणी

(5) स्वर–संयोग के बीच य्, व्, ह् का आगम हो जाता था।

(6) स्वरमध्यग –म्– कभी–कभी–ब्– हो जाता था तथा परवर्ती स्वर अनुनासिक हो जाता था : कमल > कवंल।

(7) अंत्य – अ, इ –उ कभी–कभी अनुनासिक हो जाते थे।

(8) आदि अल्पप्राण स्पर्शों का अनेक शब्दों में महाप्राणीकरण हो गया था।

(9) –ई का स्त्री प्रत्यय तथा –आ का पुल्लिंग प्रत्यय के रूप में विकास हो चुका था।

(10) –डा, –डी, –उल्ल, उल्लि, –अ आदि कई प्रत्यय प्रयुक्त होते थे।

(11) अकारांत पु. प्रथमा एक. –अहः का –ओ (कभी–कभी –ए) तो मिलता ही है, साथ ही –उ एवं –अ भी मिलता है। देवः > देवा > देवु > देव। नपु. –अं तो था ही, पुल्लिंग के प्रभाव से नपुं. में –उ, –अ भी मिलता है।

(12) कुछ सर्वनामों में रूपों का आधिक्य है। समवेत रूप से रूप कम हो गए।

(13) वर्तमानकालिक कृदंत का प्रयोग तीनों कालों के लिए हो सकता था। कृदंत का प्रयोग बढ़ गया था।

(14) क्रिया–रूप कम हो गए थे।

व्राचड अपभ्रंश– पुरुषोत्तम के प्राकृतानुशासन के अनुसार इसमें ष्, स् का स्, त, ध का अस्पष्ट उच्चारण, तथा चवर्ग का तालव्यीकरण हो गया था। इसका स्थान सिंध के आसपास था।

उपनागर अपभ्रंश– पुरुषोत्तम द्वारा वैदर्भी, लाटी, औड्री, कैकेयी, गौडी, बर्बरी, कौतल, पांड्य तथा सिंहली का उल्लेख किया गया है। इनमें कैकेयी में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द, औड्री में इ, ओ के अधिक प्रयोग, लाटी में संबोधन के रूपों का आधिक्य तथा वैदर्भी में उल्ल प्रत्ययुक्त शब्दों के आधिक्य का उल्लेख है। टक्की को हरिश्चंद्र ने अपभ्रंश के अंतर्गत रखा है, यद्यपि पुरुषोत्तम इसे प्राकृत मानते हैं।

दक्षिणी अपभ्रंश– पुष्पदंत कृत महापुराण, जसहर चरिउ तथा मुनि कनकामर करकंडचरिउ की भाषा है। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

(1) अन्य अपभ्रंशों में ष् का ख् या क्ख् हो जाता है, किंतु इसमें छ् हो जाता है।

(2) अकारांत पुल्लिंग का एकवचन तृतीया पश्चिमी में –ऍ होता है, किंतु इसमें एण। अर्थात् इसमें इस दृष्टि से विकास कम हुआ है।

(3) वर्तमान (उत्तमपुरुष एकवचन) में भी वही प्राचीनता दृष्टिगत होती है : पश्चिमी में –उँ, जबकि इसमें –मि। अन्य पुरुष बहुवचन में –न्ति (पश्चिमी में –हि)।

बहुत से लोग दक्षिणी अपभ्रंश का साहित्य में अस्तित्व नहीं मानते।

पूर्वी अपभ्रंश– यह सरहदपाद तथा कण्हपा के दोहाकोश और चर्यापदों की भाषा है। बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा इसका क्षेत्र था। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं–

(1) क्ष् > ख्, क्ख् (क्षण = खण, अक्षर = अक्खर)।

टिप्पणी

(2) व् > ब् (वेद > बेअ)।

(3) श् सुरक्षित है तथा स्, ष् दोनों ही श् हो गए हैं।

(4) प्रारंभ में महाप्राण प्रायः नहीं है।

(5) अनेक संज्ञाएं बिना विभक्ति के प्रयुक्त हुई हैं।

(6) लिंग का बंधन कम हो गया है।

(7) क्रियार्थक संज्ञा–इब से बनती थी, न कि पश्चिमी की तरह–अण से।

अपभ्रंश की भाषिक विशेषताएं

(1) इसमें निम्नलिखित ध्वनियां थीं। **ह्रस्व स्वर**– अ, इ, उ, ए, ओ तथा **दीर्घ स्वर**– आ, ई, ऊ, ऐ, औ और ऋ! **व्यंजन**– कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य, र, ल, व्, स, ह् ळ, ळह, म्ह, न्ह, ण्ह, ल्ह, रह्, ड़, ढ़। ए, ओ के लिए स्वतंत्र चिन्ह न होने से, इनके लिए प्रायः इ, उ का व्यवहार होता था। 'अ' का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों में संवृत–विकृत का भेद था। ऋ का लिखने में प्रयोग था, किंतु उसका उच्चारण रि होता था। श का प्रचार केवल मागधी में था। ळ महाराष्ट्री में तो था ही, साथ ही उड़ीसा में बोली जाने वाली मागधी अपभ्रंश एवं गुजरात, राजस्थान, बांगड़ू, पहाड़ी में बोली जाने वाली शौरसेनी में भी था। इन क्षेत्रों में अब भी यह ध्वनि है। ळ्ह भी कहीं–कहीं था। म्ह आदि महाप्राण थे।

(2) ऋ को छोड़कर अन्य स्वरों का अनुनासिक रूप प्रयुक्त होने लगा था।

(3) संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

(4) अपभ्रंश एक उकार–बहुला भाषा थी। वैसे तो 'ललितविस्तर' तथा 'प्राकृत धम्मपद' आदि ग्रंथों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है, किंतु वहां यह प्रवृत्ति अपने बीज रूप में है। अपभ्रंश में यह बहुत अधिक है जहां से यह ब्रजभाषा या अवधी आदि को मिली है; जैसे एक्कु, कारणु, पियासु, अंग, मूलु और जगु आदि।

(5) ध्वनि–परिवर्तन की दृष्टि से जो प्रवृतियां (लोप, आगम, विपर्यय आदि) पालि में शुरु होकर प्राकृत में विकसित हुई थीं, उन्हीं का यहां आकर और विकास हो गया।

(6) शब्द के अंतिम स्वर के ह्रस्व होने की प्रवृत्ति प्राकृत में भी थी, किंतु अपभ्रंश में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, बढ़ गई। अपभ्रंश की ध्वन्यात्मक विशेषताओं में प्रमुख होने के कारण यह उल्लेखनीय है। अन्त्य स्वर का यह ह्रस्वीकरण या कभी–कभी लोप स्वराघात के कारण हुआ है। जिस अंतिम स्वर पर स्वराघात होगा, उसका लोप या ह्रस्व रूप नहीं होता, किंतु जिस पर स्वराघात नहीं होता, उस पर बल कम होता जाता है। इस प्रकार उसका रूप ह्रस्व हो जाता है, या और आगे बढ़कर वह समाप्त हो जाता है। सं. गर्भिणी, प्रा. गब्भिणी, अप. गाब्भिणि। संस्कृत की तुलना में तो यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में और भी मिलती है, जैसे हरीडइ (हरीतकी), संझ (संध्या), वरआत्त (वरयात्रा) आदि।

टिप्पणी

(7) अपभ्रंश में स्वराघात प्रायः आद्यक्षर पर था, इसीलिए आद्यक्षर तथा उसका स्वर यहां प्रायः सुरक्षित मिलता है। जैसे माणिक्य–माणिक्क, घोटक–घेडअ, या घोड़ा आदि (संस्कृत की तुलना में)। प्राकृत की तुलना में छाहा (सं. छाया) से छाआ, आमलअ (सं. आमलक) से आवँलअ आदि है।

(8) म का वँ (प्रा. आमलअ, अप. आवँलअ, कमल–कवँल), व का व (वचन–बअण), ष्ण का न्ह (कृष्ण–कान्ह), क्ष का क्ख या च्छ (पक्षी–पक्खी, पच्छी), स्म का म्ह (अस्मै–अम्ह), य का ज (युगल–जुगल) ड, द, न, र के स्थान पर 'ल' (प्रदीप्त–पलित आदि) आदि रूप में ध्वनि–विकास की बहुत–सी प्रवृत्तियां मिलती हैं।

(9) विशेषतः परवर्ती अपभ्रंश में समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्वता में एक व्यंजन बच गया है और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक–दीर्घीकरण हो गया है। (सं. तस्य, प्राय., तस्स, अप. तासु, कस्य, कस्सं, कासु, कर्म, कम्म, कामु)।

(10) पालि, प्राकृत में विकास तो हुआ था, किंतु सब कुछ ले–देकर वे संस्कृत की प्रवृत्ति से अलग नहीं थी। अपभ्रंश पूर्णतः अलग हो गई और वह प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक भारतीय भाषाओं की ओर अधिक झुकी है।

(11) भाषा में धातु और नाम दोनों के रूप कम हो गए इस प्रकार भाषा अधिक सरल हो गई।

(12) वैदिकी, संस्कृत, पालि तथा प्राकृत संयोगात्मक भाषाएं थीं। प्राकृत में वियोगात्मकता या अयोगात्मकता के लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे, किंतु अपभ्रंश में आकर ये लक्षण प्रमुख हो गए, इतने प्रमुख कि संयोगात्मक और वियोगात्मक भाषाओं के संधिस्थल पर खड़ी अपभ्रंश भाषा वियोगात्मकता की ओर ही अधिक झुकी है।

(13) संज्ञा, सर्वनाम से कारक के रूप के लिए संयोगात्मक भाषाओं में केवल विभक्तियां लगती हैं जो जुड़ी होती हैं, किंतु वियोगात्मक में अलग से शब्द लगाने पड़ते हैं तो अलग रहते हैं। हिंदी में ने, को में, से आदि ऐसे ही अलग शब्द हैं। प्राकृत में इस तरह के दो–तीन शब्द मिलते हैं, किंतु अपभ्रंश में बहुत से कारकों के लिए अलग शब्द मिलते हैं। जैसे करण के लिए सहुँ, तण, संप्रदान के लिए केहि, रेसि, अपादान के लिए थिउ, होन्त, संबंध के लिए केरअ, कर, का, और अधिकरण के लिए महें, मज्झ आदि।

(14) ऊपर नाम–रूप थे और काल–रूपों के बारे में भी यही स्थिति है। संयोगात्मक भाषाओं में तिङ् प्रत्यय के योग से काल और क्रियार्थ की रचना होती है। वियोगात्मक में सहायक क्रिया के सहारे कृदंती रूपों से ये बातें प्रकट की जाती हैं। इस प्रकार की वियोगात्मक प्रवृत्तियां प्राकृत में अपनी झलक दिखाने लगी थीं, किंतु अब ये बातें बहुत स्पष्ट हो गईं। संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा। तिङन्त रूप कम रह गए।

(15) नपुंसक लिंग समाप्तप्राय हो गया लेकिन महाराष्ट्रीय एवं दक्षिणी शौरसेनी में इसका प्रयोग होता था।

टिप्पणी

(16) अकारांत पुल्लिंग प्रातिपदिकों की प्रमुखता हो गई। अन्य प्रकार के थोड़े–बहुत प्रातिपदिक थे भी तो उन पर इसी के नियम प्रायः लागू होते थे। इस प्रकार इस क्षेत्र में एकरूपता आ गई।

(17) कारकों के रूप कम हो गए जैसे संस्कृत में एक शब्द के लगभग 24 रूप होते थे, प्राकृत में उनकी संख्या लगभग 12 रह गई थी, अपभ्रंश में लगभग 6 रूप रह गएः दो वचनों और 3 कारकों– 1. कर्ता, कर्म, संबोधन, 2. करण, अधिकरण, 3. संप्रदान, अपादान, संबंध) के।

(18) स्वार्थिक प्रत्यय –ड का प्रयोग अधिक होने लगा। राजस्थानी आदि में इसका रूप –ड़, ड़ि–डिया आदि मिलता है।

(19) वाक्य में शब्दों के स्थान निश्चित हो गए।

(20) अपभ्रंश के शब्द–भंडार की प्रमुख विशेषताएं हैं–

(क) तद्भव शब्दों का अनुपात अपभ्रंश में सर्वाधिक है।

(ख) दूसरा नंबर देशज शब्दों का है। क्रियाओं में भी ये शब्द पर्याप्त हैं। ध्वनि और दृश्य के आधार पर बने नये शब्द भी अपभ्रंश में काफी है।

(ग) तत्सम शब्द अपभ्रंश के पूर्वार्द्ध–काल में तो बहुत ही कम हैं, किंतु उत्तरार्द्ध में उनकी संख्या काफी बढ़ गई है।

(घ) इस समय तक बाहर से भारत का पर्याप्त संपर्क हो गया था, इसी कारण उत्तरकालीन अपभ्रंश में कुछ विदेशी शब्द भी आ गए हैं, जैसे ठट्ठा (फा. तश्त), ठक्कुर (तुर्की तेगिन), नीक, तुर्क, तहसील, नौबति, हुद्दादार (फा. ओह्दादार) आदि।

(ङ) आस्ट्रिक एवं द्रविड़ के अनेक शब्द तो आत्मसात् ही कर लिए गए थे।

3.4.2 अवहट्ट या अवहट्ठ

अपभ्रंश और जनसाधारण की बोली का एक मिश्रित रूप, नई भाषा के निर्माण का कारण माना जाता है और यह नई भाषा परवर्ती अपभ्रंश अवहट्ट कहलायी। भाषा शास्त्रीयों में अवहट्ट के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसे मैथिल अपभ्रंश कहा, कुछ ने संक्रान्तिकालीन भाषा और कभी इसे पिंगल कहा गया। अवहट्ट का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर (1325 ई.) में मिलता है। राजभाषाओं में जिन छः भाषाओं का वर्णन भाट करते हैं उनमें से एक भाषा अवहट्ट भी है। दूसरा प्रयोग विद्यापति की कीर्तिलता में हुआ। तीसरा प्रयोग प्राकृत पैंगलम् के टीकाकार वंशीधर ने किया। वे अवहट्ट को ही प्राकृत पैंगलम् की भाषा मानते हैं। चौथा प्रयोग संदेशरासक के कृतिकार अद्दहमाण द्वारा किया गया। अवहट्ट परवर्ती अपभ्रंश का वह रूप है जिसके मूल में परिनिष्ठित अपभ्रंश यानी शौरसेनी है। व्यापक प्रचार के कारण इसमें कई रूप दिखाई पड़ते हैं। अवहट्ट भिन्न–भिन्न स्थानों की क्षेत्रीय भाषाओं से प्रभावित हुई है जैसे कि हर साहित्यिक भाषा होती है। अवहट्ट भाषा के समुचित शास्त्रीय अध्ययन के अभाव के कारण कुछ विद्वानों ने इसे मिथिल भ्रंश मान लिया। विद्वानों का विश्वास था कि अवहट्ट शब्द का पहला प्रयोग

टिप्पणी

विद्यापति द्वारा अपनी रचना कीर्तिलता में किया गया और दूसरा प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर द्वारा अपनी कृति वर्णरत्नाकार में किया गया। ये दोनों मैथिल कवि हैं इसलिए विद्वानों ने अवहट्ट को मिथिल अपभ्रंश कहा। कीर्तिलता के संपादक डॉ. बाबूराम सक्सेना ने कीर्तिलता की भाषा अवहट्ट को आधुनिक मैथिली और मध्यकालीन प्राकृत के बीच की कड़ी बताया है दूसरी जगह उन्होंने कीर्तिलता के अपभ्रष्ट को मैथिली अपभ्रंश कहा है लेकिन अपने मत को उचित ठहराने के लिए उन्होंने कोई तर्क नहीं दिया। अवहट्ट अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी तो है ही लेकिन इसे अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं की संधिकालीन भाषा कहना अधिक उचित होगा। अपभ्रंश अनुमानतः 1000 ई. के लगभग समाप्त हो गई थी इसके उपरांत ही आधुनिक भाषाओं का आरंभ हुआ। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि लगभग 900 से 1100 ई. या कुछ बाद तक की भाषा में अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषाएं आपस में मिश्रित हुई होंगी। 900 से प्रायः 1000 ई. तक अपभ्रंश के अंशों का अधिक्य और आधुनिक भाषाओं के नए होने के कारण इनके अंश कम रहे होंगे। 1000 से 1100 या कुछ बाद तक अपभ्रंश के अंश धीरे–धीरे कम होते गए और आधुनिक भाषाओं के अंश बढ़ते गए। वैसे तो उसके बाद भी लगभग 13–14वीं सदी तक कुछ–न–कुछ अपभ्रंश–अंश मिलते हैं, किंतु बहुत कम मात्रा में हैं। इस प्रकार संधिकालीन अपभ्रंश या अवहट्ट भाषा का काल 900 ई. से 1100 ई. या कुछ बाद रहा होगा। वैसे तो साहित्य में 14वीं सदी तक इसका प्रयोग होता रहा है। साहित्यिक अवहट्ठ का मूल रूप परिनिष्ठित पश्चिमी अपभ्रंश होते हुए भी जहां ग्रंथ रचा गया, वहां की भाषा का भी कुछ प्रभाव उस पर अवश्य पड़ा होगा। अवहट्ट साहित्य में प्रमुखतः संनेहरासक, उक्ति–व्यक्ति प्रकरण, वर्णरत्नाकर तथा कीर्तिलता आदि हैं लेकिन कुछ लोग ज्ञानेश्वरी, राउलवेलि आदि को भी इसके अंतर्गत रखते हैं। डॉ. हीरालाल जैन तथा डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अवहट्ठ तथा देशी को एक ही माना है, किंतु ब्लॉख, पिशेल आदि वैयाकरण दोनों को अलग–अलग मानते हैं। वस्तुतः देशी या देसी शब्द का प्रयोग समय–समय पर प्राकृत एवं अपभ्रंश के लिए होता रहा है और अवहट्ट जब बोली जा रही थी तो उसके लिए भी इसका प्रयोग हुआ। इस प्रकार अवहट्ट–काल में देशी का प्रयोग उसी के लिए हुआ है, किसी अन्य के लिए नहीं। अवहट्ट की प्रमुख विशेषताएं ये हैं–

- अवहट्ट और अपभ्रंश में ध्वनि विचार की दृष्टि से कोई बहुत महत्वपूर्ण अंतर नहीं दिखाई पड़ता। अवहट्ठ में वे सभी ध्वनियां थीं जो अपभ्रंश में थीं। साथ ही उनके अतिरिक्त ऐ, औ दो नई ध्वनियों का विकास हो गया है। ह्रस्व ऍ, ओ का प्रयोग कम हो गया। ऋ का प्रयोग लेखन में है, किंतु उच्चारण में यह रि थी। संस्कृत के तत्सम शब्दों के आने पर श् ध्वनि का प्रसार और अन्य क्षेत्रों में भी हुआ। ष् केवल लेखन में ही था परंतु उच्चारण में यह श् ही था।
- क्षतिपूरक दीर्घीकरण–व्यंजन–द्वित्व के स्थल पर एक व्यंजन हो जाता है, अतः उस व्यंजन की अनुपस्थिति के कारण हुई मात्रिक क्षति की पूर्ति के लिए पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो जाता है।
- स्वर–संयोगों के मिलकर एक हो जाने की सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है।
- अकारण अनुनासिकता भी मिलती है।

टिप्पणी

- अकारांत प्रथमा एकवचन (पुल्लिंग) का– अः तथा नपुँसकलिंग –अम्– इन दोनों ही के स्थान पर –उ या –अ मिलता है। पुल्लिंग –अः का ओ और –ओ का –उ हो गया। इस पुल्लिंग का ही प्रभाव नपुंसकलिंग पर पड़ा और वह भी –उ हो गया। अंत में –उ निर्बल होकर –अ रह गया।
- पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में भी काफी रूप समान हो गए।
- संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा।
- परंपरा रूप से तद्भव शब्द अधिक प्रयोग में आते रहे और तत्सम शब्द भी काफी प्रयुक्त होने लगे। इसमें अरबी, फारसी, तुर्की के शब्द भी काफी मात्रा में प्रवेश कर गए।

3.4.3 पुरानी हिंदी

अपभ्रंश को कई विद्वानों ने पुरानी हिंदी माना है। राहुल सांकृत्यायन, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपभ्रंश को पुरानी हिंदी मानते हुए इसे हिंदी साहित्य के इतिहास का अनिवार्य अंग मानते हैं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने सन् 1921 में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'युगीन हिंदी' शीर्षक से एक लेखमाला प्रारंभ की थी। उनका कहना था– "विक्रम की 7वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी तक अपभ्रंश की प्रधानता रही और फिर वह पुरानी हिंदी में परिणत हो गई। विभक्तियां घिस गई हैं, खिर गई हैं, एक ही विभक्ति है वह ओर कई काम देने लगी हैं। एक कारक की विभक्ति से दूसरे का भी काम चलने लगा है।" आगे चलकर वे पुनः कहते हैं– "पुरानी अपभ्रंश संस्कृत और प्राकृत से मिलती है और पिछली पुरानी हिंदी से।" गुलेरी जी अपभ्रंश को स्पष्टतः दो भागों में बांट देते हैं– पुरानी अपभ्रंश और परवर्ती अपभ्रंश। बाद में चलकर इस परवर्ती अपभ्रंश को हिंदी साहित्य के इतिहास में सम्मिलि किया जाने लगा।

रामचंद्र शुक्ल अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में गुलेरी जी की तरह अपभ्रंश को पुरानी हिंदी कहते हैं। इतिहास के प्रथम संस्करण की भूमिका में वे लिखते हैं– "आदिकाल के भीतर अपभ्रंश की रचनाएं भी ले ली गई हैं क्योंकि वे सदा से भाषाकाव्य के अंतर्गत ही मानी जाती रही हैं।" वे अपभ्रंश को 'अपभ्रंश' या 'पुरानी हिंदी' अथवा 'प्राकृताभास (प्राकृत की रूढ़ियों से बहुत कुछ बद्ध) हिंदी' कहते हैं।

अपभ्रंश को लेकर शुक्ल जी के इतिहास में एक रोचक अंतर्विरोध मिलता है। वे एक ओर अपभ्रंश या पुरानी हिंदी का प्रचार भोज और मुंज के समय (1050 सं.) में पाते हैं तो दूसरी ओर वे बौद्ध सिद्धों की भाषा को भी पुरानी हिंदी मानते हैं। "सिद्धों की उद्धृत रचनाओं की भाषा देशभाषामिश्रित अपभ्रंश अर्थात पुरानी हिंदी का काव्यभाषा है।" इस संदर्भ में वे विशेष रूप से सिद्ध कण्हपा का नाम लेते हैं।

राहुल जी 'काव्यधारा' (1945) में लिखते हैं कि पूरा अपभ्रंश साहित्य पुरानी हिंदी है। उनके यहां पूर्ववर्ती और परवर्ती अपभ्रंश का झमेला नहीं है। वे अपभ्रंश को संस्कृत और प्राकृत से भिन्न जाति की भाषा मानते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी अपभ्रंश को पुरानी हिंदी मानने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है–"अपभ्रंश को अब कोई पुरानी हिंदी नहीं कहता।" 1000 ईस्वी से लेकर 1400 ईस्वी की

टिप्पणी

रचनाओं को वे आदिकाल के अंतर्गत मानते हैं। इस काल में उपलब्ध रचनाओं को उन्होंने दो श्रेणियों में बांटा है– 1. जैन प्रभावापन्न परिनिष्ठत साहित्यिक अपभ्रंश की रचनाएं, 2. मूल रूप से अत्यंत भिन्न बनी हुई लोकभाषा की रचनाएं। प्रथम श्रेणी में हेमचंद्र के व्यापकरण, मेरुतुंग के 'प्रबंध चिंतामणि' आदि के दोहे, और अब्दुल रहमान का 'संदेशरासक' तथा 'प्राकृत पैंगलम्' में उदाहरित लोकभाषा के छंद। दूसरी श्रेणी में रासो काव्य की गणना की गयी है। लोकभाषा के साहित्य को वे अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न भाषा का साहित्य कहते हैं। लोकभाषा में प्राप्त साहित्य की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश की भाषा से कुछ आगे बढ़ी हुई दिखाई देती है।

प्राकृत अपभ्रंश का महत्व हिंदी भाषा के लिए नकारा नहीं जा सकता। प्राकृत भाषा और साहित्य का प्रभाव देश के एक बड़े भू–भाग को आच्छादित किये हुए था। प्राकृत और अपभ्रंश को संस्कृत की अपेक्षा मधुर कहा गया है। इसे झुठलाने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

अपभ्रंश साहित्य में सातवीं शताब्दी में बोलचाल की भाषा का हस्तक्षेप होने लगा था। यद्यपि अपभ्रंश का व्याकरण बहुत कुछ प्राकृत व्याकरण है पर उन पर बोलचाल की भाषा के क्रियापदों, विभक्तियों, परसर्गों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इनके माध्यम से ब्रजी, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली, भोजपुरी के पूर्वरूप की एक झलक मिल सकती है। अपभ्रंश में विभिन्न काव्यरूपों, कथानक–रूढ़ियों आदि को सीधे लोक से लिया गया है– न प्राकृत से, न संस्कृत से। इसलिए हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ में अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। अपभ्रंश साहित्य हिंदी साहित्य का समृद्ध रिक्थ है।

पुरानी हिंदी की विशेषताएं

पुरानी हिंदी का समय 1000 ई. से 1500 ई. तक माना जाता है। यह अपभ्रंश के काफी निकट थी क्योंकि उसी से (या उसके परवर्ती रूप अवहट्ट से) हिंदी का उदय हुआ था। आदिकालीन हिंदी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों का प्रयोग मिलता है जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। मुख्य अंतर ये हैं–

1. अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे– अ आ इ ई उ ऊ ए ओ। ये आठों ही स्वर मूल स्वर थे। आदिकालीन हिंदी में ये दो नये स्वर ऐ औ विकसित हो गए जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमशः अएँ, अऔ था।
2. च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे किंतु पुरानी हिंदी में आकर ये स्पर्श संघर्षी हो गए और तब से ये स्पर्श संघर्षी ही रहे।
3. इसी तरह न र ल स दन्त्य से वर्त्स्य हो गए।
4. अपभ्रंश में ड़ ढ़ व्यंजन नहीं थे। आदिकालीन हिंदी में इनका विकास हुआ।
5. न्ह, म्ह, ल्ह पहले सुंयक्त व्यंजन से अब ये न य ल के महाप्रण रूप, अतः मूल व्यंजन हो गए।

   – संयोग में पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग होने लगा।
6. संस्कृत, फारसी आदि के कुछ शब्दों के आ जाने के कारण कुछ नये संयुक्त व्यंजन हिंदी में आ गए जो अपभ्रंश में नहीं थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप के

टिप्पणी

कारण कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजनों, स्वरानुक्रमों तथा व्यंजनानुक्रमों के लोप की भी संभावना हो सकती है जो अपभ्रंश में थे।

व्याकरण की दृष्टि से देखें तो धीरे–धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिंदी के अपने रूप विकसित होते गए। 1500 ई. तक आते–आते हिंदी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गए। पुरानी हिंदी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन बातों में भिन्न है–

1. अपभ्रंश काफी हद तक संयोगात्मक भाषा थी। क्रिया तथा कारकीय रूप संयोगात्मक होते थे किंतु पुरानी हिंदी में नियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं, संयुक्त क्रियाओं तथा परसर्गों (कारक चिह्नों) का प्रयोग काफी होने लगा।
2. नपुंसक लिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में रह गया था। पुरानी हिंदी में यह पूर्णतः समाप्त हो गया। दो लिंग दो वचन।
3. हिंदी वाक्य रचना में शब्द क्रम– कर्ता, कर्म, क्रिया– धीरे–धीरे निश्चित होने लगा था।

पुरानी हिंदी का शब्द भंडार अपने आरंभिक चरण में अपभ्रंश का ही था, किंतु धीरे–धीरे कुछ परिवर्तन आते गए जिनमें उल्लेख्य दो तीन हैं–

1. भक्ति आंदोलन का प्रारंभ हो गया था अतः तत्समय शब्दावली अपभ्रंश की तुलना मेुछ बढ़ने लगी थी।
2. मुसलमानों के आगमन से कुछ शब्द पश्तो, फारसी और तुर्की भाषाओं से हिंदी में आए।
3. भक्ति आंदोलन तथा मुसलमानी शासन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा जिसके परिणामस्वरूप इस बात की भी संभावना है कि कुछ ऐसे पुराने शब्द, जो अपभ्रंश में प्रचलित थे, इस काल में अनावश्यक या अल्पावश्यक होने के कारण या तो हिंदी शब्द भंडार से निकल गए या फिर उनका प्रयोग बहुत कम हो गया।

इस काल के साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, व्रज तथा मिश्रित रूपों का प्रयोग मिलता है। इस युग के प्रमुख हिंदी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चंदवरदायी, कबीर आदि हैं।

आरंभिक हिंदी

आरंभिक हिंदी 11वीं शती ईस्वी के आसपास परवर्ती अपभ्रंश से विकसित है। यह उस समय की समस्त मध्यदेशीय बोलियों के लिए एक सामान्य संज्ञा या सामूहिक नाम है। राउल वेल के आधार पर इसकी प्रमुख विशेषताओं का निरूपण किया जा सकता है।

ध्वनि– ङ, ञ ड़ ढ़ नयी विकसित ध्वनियां हैं।

ध्वनि परिवर्तन–

1. अन्त्य स्वर का लोप– अग्नि > अग्गि > आग, जिब्भा > जीभ
2. क्षतिपूरक दीर्घीकरण– पश्चात > पच्छा > पाछै, पुत्र > पुत्त > पूत

टिप्पणी

3. स्वर हस्वीकरण, दीर्घकाय तथा विपर्यय की भी प्रवृत्ति मिलती है– आनंद > अनंद, मनुष्य > मानुष, दिवस > देवस, कपाट > किवाड़
4. ऋ के स्थान पर रि अ ठ इ ई आदि कई ध्वनियां आ गई थीं। ऋतु > रितु, बृद्ध > बुड्ढो
5. मध्यम अल्पप्राण व्यंजनों के लोप की प्रवृत्ति तीव्र हुई। कोकिल > कोइल, राजा > राइ। अतः तत्समों का व्यवहार बढ़ा है।
6. मध्यम महाप्राण के स्थान पर ह की अत्यधिक प्रवृत्ति देखी जाती है। मेघ > मेह, दधि > दहि।
7. अनुनासिक व्यंजनों से संयोग वाले स्थलों पर अनुनासिक की जगह अनुस्वार– पण्डित > पंडित, खम्भ > खंभ।
8. र ल में अभेद सरिता > सलिला, सकाले > सकारे।
9. पूर्व में ण का न– पुण्य > पुन्न, अख्य > अरन्त पश्चिम में ण अत्यधिक न के स्थान पर थी ण सुत्राण, तिण, जाणउ।
10. क्ष का पूर्व में छ्र तथा पश्चिम में ख हो गया है– लक्ष्मण > लछिमन > लखन।

रूप रचना–आरंभिक हिंदी में वियोगात्मक प्रक्रिया आगे बढ़ी है। नये–नये व्याकरणिक प्रत्यय विशेषतः परसर्ग और कृदंतीय रूप विकसित हुए हैं।

1. दो लिंग और दो वचन। संज्ञा और विशेषण में उकारांत प्रायः पुल्लिग तथा इकारांत प्रायः स्त्रीलिंग है। धर्मु, कारणु पुल्लिग है। जुगति राति स्त्रीलिंग हैं।
2. बहुत थोड़े सविभक्तिक प्रयोग मिलते हैं। हि ऐसा विभक्ति चिह्न है जो सभी कारकों के अर्थ देता है–

   कर्म– सतरूपहि बिलोकि

   संप्रदान– वरहि कन्या दे

   इसके अतिरिक्त न, न्ह, नि, न्हि भी सभी कारकों के लिए प्रयुक्त। साथ ही कारक के लिए ऐ अधिकरण के लिए ए विभक्ति चिह्न शेष है।
3. निर्विभक्तिक प्रयोग खूब मिलते हैं अर्थात जिनमें परसर्ग है न विभक्ति चिह्न–

   चेरी धाई, विरह तपाइ तपाइ, बासन फोरे
4. नये–नये परसर्ग विकसित हुए हैं। उदाहरणार्थ–

   कर्म के लिए– कहं कह कौ को कों कूँ

   संप्रदान के लिए– लागि लगा तण तई
5. सर्वनामों के केवल चार रूप सामान्य एक वचन, बहुवचन और तिर्यक एक वचन बहुवचन। मैं के बजाय हों का प्रयोग व्यापक है।
6. हिंदी का विकास अलग–अलग केंद्रों में हुआ। अतः इसमें एक क्रिया रूप के एक ही वचन पुरुष तथा काल में विविध प्रयोग प्रचलित दिखाई पड़ते हैं।

टिप्पणी

7. अपभ्रंश के विध्यर्थ करिज्जइ, पढिज्जइ अवहट्ट की भांति आरंभिक हिंदी में भी करीजै पढ़ी जै रूप में प्रयुक्त होते हैं।
8. क्रिया के कृदंतीय रूपों का खूब विकास हुआ। वर्तमान कालिक कृदंत त तथा भूतकालिक कृदंत इया ने काल रचना को सरल कर दिया।
9. संयुक्त क्रियाओं का भरपूर विकास हुआ और उनमें नयी अर्थवत्ता विकसित हुई।

   आया से आ गया, आ बैठा, आ चुका, आ मरा

   करना से कर लिया, कर दिया, कर छोड़ा, कर पाया
10. आरंभिक हिंदी में सहायक क्रियाओं में अभूतपूर्व वृद्धि लेकिन अधिकांश अवहट्ट की सहायक क्रियाओं के समरूप हैं। भूतकालिक हुतो, हुत, था, थे आदि आरंभिक हिंदी की अपनी सहायक क्रियाएं हैं।
11. उकारांत, आकारांत विशेषणों का स्त्रीलिंग रूप ईकारांत और पुल्लिग बहुवचन ऐकारांत हो जाता है– गाढ़ी, तीखी, तीखे, ऊंचे।

वाक्य विन्यास– लुप्त विभक्तिक पदों के प्रयोग कारण अवहट्ट की भांति ही कर्ता क्रिया कर्म के क्रमिक पदस्थान की महत्ता बरकरार है।

शब्द भंडार– हिंदी में लगातार तत्सम शब्द बढ़ते गए। बढ़ते हुए विदेशी प्रभाव के कारण अपभ्रंश और हिंदी में शब्द समूह के स्तर पर महत्वपूर्ण अंतर है।

हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग

भाषिक योगदान

(अ) **ध्वनिगत**– अपभ्रंश ने ध्वनि परिवर्तन द्वारा संस्कृत, प्राकृत शब्द के हिंदीकरण में महत्वपूर्ण योगदान किया–

1. क्षतिपूरक दीर्घीकरण – अग्नि > अग्गि > आग
   उष्ट्र > उट्ठ > ऊंट
2. अंत्यस्वर का ह्रस्वीकरण तथा लोप – जिह्वा > जिब्या > जीभ
   घृणा > घिन
   दूर्वा > दूध
3. पंचमाक्षर के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग–
   दण्ड > दंड
   अङ्क > अंक
   पञ्च > पंच
4. मध्यम महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर ह का प्रयोग–
   आखेट > अहेर
   गर्दभ > गदहा
   बधिर > बहिरा

टिप्पणी

5. मध्यम अल्पप्राण व्यंजनों के लोप से स्वर गुच्छों की संख्या बढ़ी। अपभ्रंश या अवहट्ट में यह प्रवृत्ति पायी कि या तो स्वर गुच्छों का संकोच हुआ या तत्सम शब्द को पुनरुज्जीवित किया गया या बीच में य श्रुति लाई गई।

   पिअ > प्रिय
   काअर > कायर
   गत > गअ > गय (य ध्वनि का प्रयोग)
   गज > गअ > गज (तत्सम पुनरुज्जीवन)
   साअर > सागर (तत्सम पुनरुज्जीवन)
   निअ > निज (तत्सम पुनरुज्जीवन)
   नअर > नायर (तत्सम पुनरुज्जीवन)

   स्वर संकोच – तउ > तो
   जइसइ > जैसा
   कहउ > कहूँ

(ब) **रूप रचना**–

1. दो लिंग और दो वचन।
2. विश्लेषणात्मकता अर्थात परसर्गों का उदय हुआ। कुछ परामर्श अपभ्रंश में ही उदित हुए जो थोड़े बहुत घिसकर हिंदी में आ गए। कुछ परसर्ग निरंतर उदित हुए। अपभ्रंश, अवहट्ट में प्रयुक्त परसर्गों में से– को, से, का, के, की, में, पर हिंदी में आए। 'न' का विकास अपभ्रंश 'टणे' या अवहट्ट 'सणे' से हुआ है।
3. उ, हि, हिं आदि अपभ्रंश से हिंदी में आए।
4. सर्वनाम और विशेषण भी काफी कुछ अपभ्रंश से हिंदी में आए हैं।
5. क्रिया के रूप हूबहू हिंदी के तो नहीं हैं उन पर अपभ्रंश का प्रभाव रहा है।
6. सबसे महत्वपूर्ण बात क्रिया की रचना में कृतदंत पद रूपों का विकास था जो अपभ्रंश और अवहट्ट में हुआ। वर्तमान कालिक कृदंत 'त' एवं भूतकालिक कृदंत 'इआ' ने काल रचना को स्पष्ट कर दिया। अवहट्ट में छिटपुट 'ग' आने लगा था इससे गा, गी, गे बने।
7. संयुक्त क्रियाओं का विकास 'आ गया', आ बैठा, कर लिया, कर चुका, हो गया।

शब्द भंडार

अपभ्रंश काल में तत्सम शब्दों का पुनरुज्जीवन, विदेशी शब्दावली का ग्रहण, देशी शब्दों का प्रयोग द्रुत गति से बढ़ा, जिससे हिंदी का शब्द भंडार समृद्ध हुआ।

साहित्यिक योगदान

अपभ्रंश साहित्य विविधतापूर्ण था। इसके अंतर्गत रासो काव्य, पेमाख्यानक काव्य और खंड काव्य; रूपक रचनाएं; स्फुट रचनाएं (जैसे– बारहमासा, फागु, दोहा, चउपई); सिद्धों के

टिप्पणी

चर्यापद और नाथों की वाणियां आदि का सृजन हुआ। इन सबका प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा है। उदाहरणार्थ– 'संदेश रासक' एक खंड काव्य है। सिद्धों की परंपरा को संत साहित्य ने आगे बढ़ाया। सिद्धों की ही तरह हठयोग, धार्मिक और नैतिक उपदेश आदि संत साहित्य में मिलते हैं। दोहा–पदों का प्रयोग भी मिलता है। प्रेमाख्यानों का प्रभाव निर्गुण प्रेममार्गी शाखा पर देखा जा सकता है। अतिलौकिक तथा धार्मिक तत्वों से अनुरंजित कथानायक का जीवन चरित; नायक–नायिका के प्रेम व्यापारों का चित्रण; रूपदर्शन, चित्रदर्शन या श्रव्य आदि से प्रेमोत्पत्ति; विरह में अतिशय व्याकुलता; प्राप्ति का उपाय; असाधारण घटनाओं का घटित होना; एक बार मिलना; पुनः वियोग; अंत में सभी विघ्न बाधाओं को परास्त कर लक्ष्य प्राप्ति आदि संपन्नताएं दोनों में द्रष्टव्य हैं। काव्य रूढ़ियों तथा काव्य रूप की दृष्टि से इनमें काफी समानता है। चरित काव्यों का प्रभाव रामचरितमानसकार ने स्वयं ही स्वीकार किया है। पुष्पदंत द्वारा 'महापुराण' में वर्णित नटखट कृष्ण की बाल लीलाएं कृष्ण भक्ति साहित्य में पल्लवित हुई हैं। आदि काल की भक्ति काल पर गहरी छाप है। यदि नये–नये उपमानों, नखशिख वर्णनों, नायकों के सौंदर्य चित्रण, छंद, अलंकार योजना पर गहराई से विचार करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि रीतिकाल तक उसका प्रभाव जारी रहा है।

समग्रतः हिंदी के मूल उत्सों में से अपभ्रंश साहित्य एक है। भावधारा की दृष्टि से उसका ऐतिहासिक संबंध है। छंदों और काव्य रूपों की भी गहरी छाप है।

हिंदी भाषाओं के कई नाम गिनाए गए हैं– देहलवी, बंगाली, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगी, मरहट्ठी, कर्नाटकी, सिंधी, अफगानी, बिलोचिस्तानी और कश्मीरी (अबुल फजल) इसके पश्चात 'हिंदी' शब्द के ऐतिहासिक विकास का एक लंबा इतिहास मिलता है। आज भाषा–प्रसंग में 'हिंदी' का प्रयोग तीन अर्थों में किया जाता है।

(1) विशिष्ट,

(2) सामान्य, तथा

(3) भाषा–शास्त्रीय।

विशिष्ट अर्थ में नागरी हिंदी को ही हिंदी कहते हैं। इसे हम खड़ी बोली का परिमार्जित स्वरूप कह सकते हैं। भारतीय संविधान में 'हिंदी' का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है और यही भारतीय संघ की राजभाषा घोषित की गई है। यहां हम इसी राजभाषा के अर्थ में ही 'हिंदी' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं।

आज हम जिस अर्थ में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, उस भाषा का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। ग्रियर्सन ने अंबाला (पंजाब) से लेकर बनारस तक और नैनीताल की तलहटी से लेकर बालाघाट (मध्यप्रदेश) तक की बोलियों को 'हिंदी' कहा है। उन्होंने इसके दो भाग कर दिए हैं, अर्थात पश्चिमी हिंदी और पूर्वी 'हिंदी'। यह सब उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर निश्चित किया है। पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी से और पूर्वी हिंदी का अर्ध मागधी से माना। किंतु इस विषय में डॉ. हरदेव बाहरी का कहना है, "वास्तव में पूर्वी हिंदी पश्चिमी हिंदी से बहुत कुछ मिलती–जुलती है। अवधी और बुंदेली अथवा अवधी और कन्नौजी की तुलना करके देखने पर पता चलता है कि भरत मुनि ने ठीक ही कहा था, 'शौरसेन्याऽविदुरत्वात् इयमेवाअर्धमागधी।' लगता है कि ग्रियर्सन

टिप्पणी

शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी को ही हिंदी मानना चाहते हैं। इसी आधार पर वे राजस्थानी, बिहारी और मध्य पहाड़ी को अलग–अलग और हिंदी से भिन्न भाषाएं कहते हैं। वे हिंदी के विकास को नहीं देख पाए। दरअसल प्राकृत काल में उतार–चढ़ाव आते रहे हैं। धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने हिंदी को एक बहुत बड़े क्षेत्र में व्याप्त होने का अवसर दिया है। इसका प्रमाण उन प्रांतों के लोगों की अपनी मान्यता है। डॉ. उदयनारायण तिवारी ने भी भोजपुरी को हिंदी क्षेत्र से बाहर की माना है। मैथिल साहित्य के लेखक इतिहासकार डॉ. जयकांत मिश्र ने भोजपुरी को हिंदी क्षेत्र के भीतर और मैथिली को उसके बाहर रखा है। एक चमत्कार उन्होंने यह किया कि भोजपुरी को मैथिली की बोली घोषित किया।

किंतु विभिन्न तर्कों के आधार पर डॉ. रामविलास शर्मा ने सिद्ध किया है कि वर्तमान काल में भोजपुरी, मैथिली आदि हिंदी की बोलियां मात्र रह गई हैं। डॉ. बाहरी का भी इस विषय में स्पष्ट मत है कि बिहार और राजस्थान प्रांतों में बोलियां तो अवश्य हैं, किंतु बिहारी, राजस्थानी अथवा पहाड़ी, नाम की कोई 'भाषाएं' नहीं हैं, कोई अपनी लिपि नहीं, साहित्य की कोई अपनी परंपरा नहीं, शासन द्वारा कोई मान्यता प्राप्त नहीं। अपनी पुस्तक 'राजस्थानी भाषा' में चटर्जी ने राजस्थानी को हिंदी भाषा कहा है। कोलकाता में लोग राजस्थानी को 'मारवाड़ी हिंदी' कहते हैं और मुंबई या पंजाब में बिहारी हिंदी या पूर्वी प्रचलित नाम है। पहाड़ी के बारे में स्वतः ग्रियर्सन ने कबूल किया है कि पहाड़ी नाम की कोई एक भाषा नहीं है, सुविधा के लिए यह नाम दिया गया है। डॉ. भगीरथ मिश्र सुझाव देते हैं कि बिहार की बोलियों की इकाई को बिहारी हिंदी, राजस्थान की बोलियों की इकाई को राजस्थानी हिंदी और गढ़वाली कुमाऊंनी को पहाड़ी हिंदी कहना अधिक समीचीन है। जिसे हम हिंदी – कहते हैं वह वास्तव में पांच उपभाषाओं का समूह है– पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी तथा पहाड़ी हिंदी। पश्चिमी हिंदी की ही एक शाखा दक्षिण में जा लगी है जिसे दक्खिनी हिंदी कहते हैं। इससे प्राचीन काल में भाषा की विभिन्नता, किंतु वर्तमान समय में विस्तृत हिंदी क्षेत्र की एकता और लोकमान्यता का परिचय भी अपने–आप प्राप्त हो जाता है और साथ ही इस वर्गीकरण के द्वारा हम इन उपभाषाओं को हिंदी के अंतर्गत एक बहुत ऊंचा पद दे सकते हैं। संविधान ने तो इस सारे क्षेत्र की एक ही भाषा हिंदी स्वीकृत की।

3.5 हिंदी भाषा के नामकरण का प्रश्न

हिंदी शब्द की उत्पत्ति का संबंध भारत के उत्तर–पश्चिम में बहने वाली सिंधु नदी से माना जाता है। अधिकतर आक्रमणकारी और यात्रियों ने उत्तर–पश्चिम सिंहद्वार से ही भारत में प्रवेश किया था। ईरान और भारत के आपसी संबंध प्राचीन काल से ही थे। इरानियों द्वारा 'सिंधु' को 'हिंदू' कहा जाता था। हिंदू' शब्द संस्कृत के शब्द 'सिंधु' का ही विकसित रूप है। 'हिंदू' शब्द से 'हिंद' शब्द बना और इसमें फारसी भाषा का संबंधकारक प्रत्यय 'ई' जोड़ने (हिंद + ई) से 'हिंदी' शब्द बन गया। हिंदी से तात्पर्य है–हिंद का। हिंद देश के निवासियों के लिए हिंदी शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ जिसे आगे चलकर 'हिंदी की भाषा' के अर्थ के रूप में प्रयोग किया जाने लगा।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. अपभ्रंश का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि के ..... में मिलता है।
10. ..... से अपभ्रंश भाषा का काव्यार्थ प्रयोग माना जाता है।
11. अपभ्रंश और जनसाधारण की बोली का एक मिश्रित रूप ..... भाषा कहलायी।

सही/गलत बताइए–

12. अवहट्ट शब्द का पहला प्रयोग विद्यापति द्वारा कीर्तिलता में किया गया।
13. अवहट्ट और अपभ्रंश में ध्वनि विचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण अंतर होता है।
14. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपभ्रंश को पुरानी हिंदी नहीं मानते।

टिप्पणी

भारतीय समाज में 'नाम' की बहुत महिमा है। हिंदी भाषा भी इसका अपवाद नहीं है। हिंदी जिस भाषा परिवार की भाषा मानी जाती है, उस परिवार का नाम 'भारतीय आर्य भाषा' परिवार रखा गया है। आर्य भाषा से गौरव–बोध अवश्य होता है। आर्यों की निवास भूमि यूरोप या यूरोपेशिया के बीच कैस्पियन सागर के आस–पास कहीं मानी जाती है। वहां से उनका एक दल पश्चिम की ओर गया, जिसके ग्रीक, लेटिन, जर्मन एवं अन्य आधुनिक योरोपीय भाषाओं का विकास हुआ। दूसरा दल पूरब की ओर बढ़ा, जिससे मध्य एशिया की तोख़री भाषा का विकास हुआ, जिसके घुमंतू लोगों के साथ हिमालय के उत्तर चीन तक में भारोपीय भाषा के शब्द पहुंच गए। फिर उत्तर–पश्चिम एशिया के तुर्की अंचल में निवास करने वाले हित्ती भाषा भी इसी भारोपीय परिवार के भाषावाले बने। आगे चलकर जब वे लोग और पूरब बढ़े, तो ईरान की पुरानी 'अवेस्ता' भाषा के जनक बने। भारतवर्ष में संस्कृत, पालि आदि प्राचीन, मध्यकालीन जो भी भाषाएं विकसित हुईं और फिर उनसे आधुनिक सभी भारतीय आर्य भाषाएं विकसित हुईं, तो सभी के लिए आर्य भाषा नाम बड़े गौरव के साथ अपना लिया गया।

फारसी भाषा का शब्द 'हिंदं' मूलतः फारसी भाषा का नहीं है, बल्कि यह संस्कृत 'सिंधु' शब्द का फारसी उच्चारण है। फारसी उच्चारण की बात तो 'सिंधु' शब्द पर आश्रित है, जिसके बारे में कहा जाता है कि ईरान या फारस के लोग जब भारत की सिंधु नदी से परिचित हुए तो चूंकि पुरानी ईरानी अर्थात 'अवेस्ता' भाषा में महाप्राण ध्वनियां नहीं होतीं, अतः जो 'ध' महाप्राण ध्वनि थी, उसके लिए अल्प प्राण ध्वनि 'द' उच्चरित हुई– यानी 'धु'–'दु' हो गई। इसी प्रकार 'संस्कृत' की 'स' ध्वनि फारसी में 'ह' उच्चारित हुई, जैसे 'असुर' का अहुर, उसी तरह 'सिंधु' का 'स' 'ह' हो गया; तो 'सिंधु' का 'हिंदु' बन गया। सन् 500 ई. पूर्व ईरान के शासक दारयवहु के लेखों में भारत के लिए 'हिंदु' का प्रयोग हुआ। 'सप्त सिंधव' के लिए वहां 'हप्त हिंदवः' प्रयोग मिलता है। तात्पर्य यह कि ईरान के लोग जब भारत में सिंधु नदी क्षेत्र में आए तो इस विशाल नदी को देख इसके संस्कृत नाम 'सिंधु' को अपने फारसी उच्चारण के आधार पर 'हिंदु' कहने लगे। फिर इसके किनारे रहने वाले लोगों को भी 'हिंदु' कहने लगे। फिर जब और पूरब बढ़ते गए तो जहां तक जा सके पूरब में बंगाल, असम तक, फिर जब उत्तर दक्षिण भी फैले तो कश्मीर से कन्याकुमारी तक की सारी जगहों के निवासियों को 'हिंदू' कहने लगे। आगे चलकर इसी आधार पर इस 'हिंदु' देश में बोली जाने वाली एक प्रसिद्ध बोली 'हिंदी' के नाम से विख्यात हुई। यद्यपि कई विद्वान सीधे 'हिंदी' का विकास आज की भाषा के रूप में न मानकर 'हिंदुई', 'हिंदवी', 'हिंदीकी' और 'हिंदी' के अनेक स्तरों को पार करते हुए बताते हैं।" परंतु सबका निचोड़ यही है कि ईरान से आए फारसी भाषा–भाषियों ने 'सिंधु' को जो हिंदु नाम दिया, वही 'हिंदी' नाम का एकमात्र आधार बन गया।

'हिंदी' शब्द का प्रयोग अमीर खुसरो ने भी किया। अमीर खुसरो तुर्क थे, लेकिन वे भारत में पैदा हुए थे। 1317 ई. के आसपास जन्मे अमीर खुसरो का कहना था– "चूंकि मैं भारत में पैदा हुआ हूं अतः मैं यहां की भाषा के संबंध में कुछ कहना चाहता हूं। इस समय, यहां प्रत्येक प्रदेश में ऐसी विचित्र एवं स्वतंत्र भाषाएं प्रचलित हैं जिनका एक–दूसरे से संबंध

टिप्पणी

नहीं है। ये हैं–हिंदी (सिंधी), लाहौरी (पंजाबी), कश्मीरी–डूगरों (जम्मू के डूगरों) की भाषा, धूर समुंदर (मैसूर की कन्नड़ भाषा), तिलंग (तेलुगु), दिल्ली तथा उसके आसपास की भाषा (पश्चिमी हिंदी)। ये सभी हिंदी की भाषाएं हैं, जो प्राचीन काल से ही जीवन के सामान्य कार्यों के लिए, हर प्रकार से, व्यवहृत होती आ रही हैं।"

एक अन्य स्थान पर हिंदी की चर्चा करते हुए अमीर खुसरो लिखते हैं– "यह हिंदी की भाषा है।" ऐसा प्रतीत होता है कि यहां वास्तव में खुसरो का संस्कृति से तात्पर्य है, न कि उस भाषा से जिसे आज हम इस नाम से अभिहित करते हैं।

हिंदी की जगह 'भाषा' नाम का प्रयोग

हिंद के एक विशेष क्षेत्र में प्रयोग की जाने वाली भाषा को कालांतर में 'हिंदी' के नाम से पुकारा जाने लगा। मध्यकालीन अपभ्रंशों से जो भी आधुनिक भाषाएं विकसित हो रही थीं, बहुत दिनों तक उनका कोई एक नाम स्थिर नहीं हो पाया था। तब सभी क्षेत्रों में उन्हें अलग–अलग अर्थों में 'भाषा' ही कहा जाता था।

आधुनिक हिंदी के विविध रूपों के लिए भाषा या 'भाखा' शब्द का प्रयोग– संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश की जगह केवल मात्र 'भाषा कविता' के सम्मान का प्रथम उल्लेख काशी के गायकवाड़ राजाओं के दरबार में होने का विवरण मिलता है, जहां परम विद्वान कवि विद्याधर की 'भाषा में कविता' करने के लिए बड़ाई की गई है। बारहवीं शताब्दी में काशी–कन्नौज के गाहड़वल वंश के राजा गोविंद चंद्र के सभा पंडित दामोदर शर्मा ने संस्कृत के माध्यम से राजकुमारों को 'भाषा' सिखाई थी। यहां 'भाषा' का प्रयोग काशी की पुरानी कोसली या भोजपुरी भाषा के लिए किया गया है। कबीर ने अपनी 'पूरबी बानी' (मेरी बानी पूरबी– अर्थात काशी की भोजपुरी) को 'भाषा' कहा, 'कविरा संस्कृत कूप जल भाषा बहता नीर।" उल्लेखनीय बात यह है कि कबीर धर्म के प्रसंग में 'हिंदू' नाम तो खूब लेते हैं परंतु 'भाषा' के अर्थ में 'हिंदी' का व्यवहार कहीं नहीं करते।

अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रांतिकाल कहा जा सकता है। हिंदी का स्वरूप शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आसपास इसकी स्वतंत्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था, जब अपभ्रंश भाषाएं साहित्यिक संदर्भों में प्रयोग में आ रही थीं। यही भाषाएं बाद में विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में अभिहित हुईं। अपभ्रंश का जो भी कथ्य रूप था वही आधुनिक बोलियों में विकसित हुआ। अपभ्रंश के संबंध में 'देशी' शब्द की भी बहुधा चर्चा की जाती है।

वास्तव में 'देशी' से देशी शब्द एवं देशी भाषा दोनों का बोध होता है। प्रश्न यह है कि देशीय शब्द किस भाषा के थे? भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उन शब्दों को 'देशी' कहा है जो 'संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव रूपों से भिन्न हैं।' ये 'देशी' शब्द जनभाषा के प्रचलित शब्द थे, जो स्वभावतया अपभ्रंश में भी चले आए थे। जनभाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती, परंतु व्याकरण को जनभाषा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना पड़ता है, प्राकृत–व्याकरणों ने संस्कृत के ढांचे पर व्याकरण लिखे और संस्कृत को ही

टिप्पणी

प्राकृत आदि की प्रकृति माना। अतः जो शब्द उनके नियमों की पकड़ में न आ सके, उनको देशी संज्ञा दी गई। प्राचीन काल से बोलचाल की भाषा को देशी भाषा अथवा 'भाषा' कहा जाता रहा। पाणिनी के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। अतः पाणिनी ने इसको 'भाषा' कहा है।

कुल मिलाकर हिंदी भाषा के नामकरण के प्रश्न पर विचार करें तो चाहे 'हिंदी' नाम देने का श्रेय भले ही बाहरी आगंतुकों का हो लेकिन आज यह न केवल हिंदी भाषा बल्कि कई भारतीय भाषा समूहों के लिए प्रयुक्त होता है।

3.6 हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण और सामान्य परिचय

भारतीय प्राचीन आर्य भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी हिंदी भाषा आज संपूर्ण भारत पर अधिकार स्थापित कर चुकी है। अनेक विकसित आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वसुलभ है। अपने इसी गुण के कारण वह राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा के गौरवशाली पद पर आसीन है। हिंदी के क्षेत्र की ओर संकेत करते हुए ग्रियर्सन ने कहा है कि हिंदी का क्षेत्र पश्चिम में अंबाला (पंजाब) से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट तक फैला है।

डॉ. हार्नले ने मध्यप्रदेश या भीतरी आर्य प्रदेश की भाषाओं को एक वर्ग में तथा उसके आसपास की भाषाओं को दूसरे वर्ग में रखते हुए आधुनिक आर्य भाषाओं की अपनी पुस्तक Comparative Grammar of Gaudian Languages में चार वर्गों में रखा है– 1. **पूर्वी गौड़ियन** : पूर्वी हिंदी (बिहारी), बांग्ला, असमी, उड़िया, 2. **पश्चिमी गौड़ियन** : पश्चिमी हिंदी (राजस्थानी), गुजराती, सिंधी पंजाबी, 3. **उत्तरी गौड़ियन** : गढ़वाली, नेपाली आदि पहाड़ी भाषाएं, 4. **दक्षिणी गौड़ियन** : मराठी।

ग्रियर्सन का वर्गीकरण

डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने उपर्युक्त मत के समर्थन में अनेक तर्क एवं प्रमाण देते हुए भीतरी (अंतरंग) और बाहरी (बहिरंग) भाषा वर्गों के अतिरिक्त एक मध्यवर्ती वर्ग को स्वीकार किया एवं आधुनिक भारतीय आर्य भाषा को तीन उपशाखाओं, छह समुदायों तथा सत्रह भाषाओं में विभाजित किया है जिसे आगे दी जा रही तालिका से समझा जा सकता है। उन्होंने अपना यह प्रथम वर्गीकरण Linguistic Survey of India भाग एक तथा Bulletin of the school of Oriental Studies, London Institution, Volume, I part III 1920 AD में प्रस्तुत किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

15. हिंदी शब्द की उत्पत्ति का संबंध .... से माना जाता है।
16. हिंदी जिस भाषा परिवार की भाषा मानी जाती है उस परिवार का नाम .... है।

सही/गलत बताइए–

17. 'भाषा कविता' के सम्मान का प्रथम उल्लेख काशी के गायकवाड़ राजाओं के दरबार में हुआ।
18. पाणिनी के समय बोलचाल की भाषा अपभ्रंश थी।

टिप्पणी

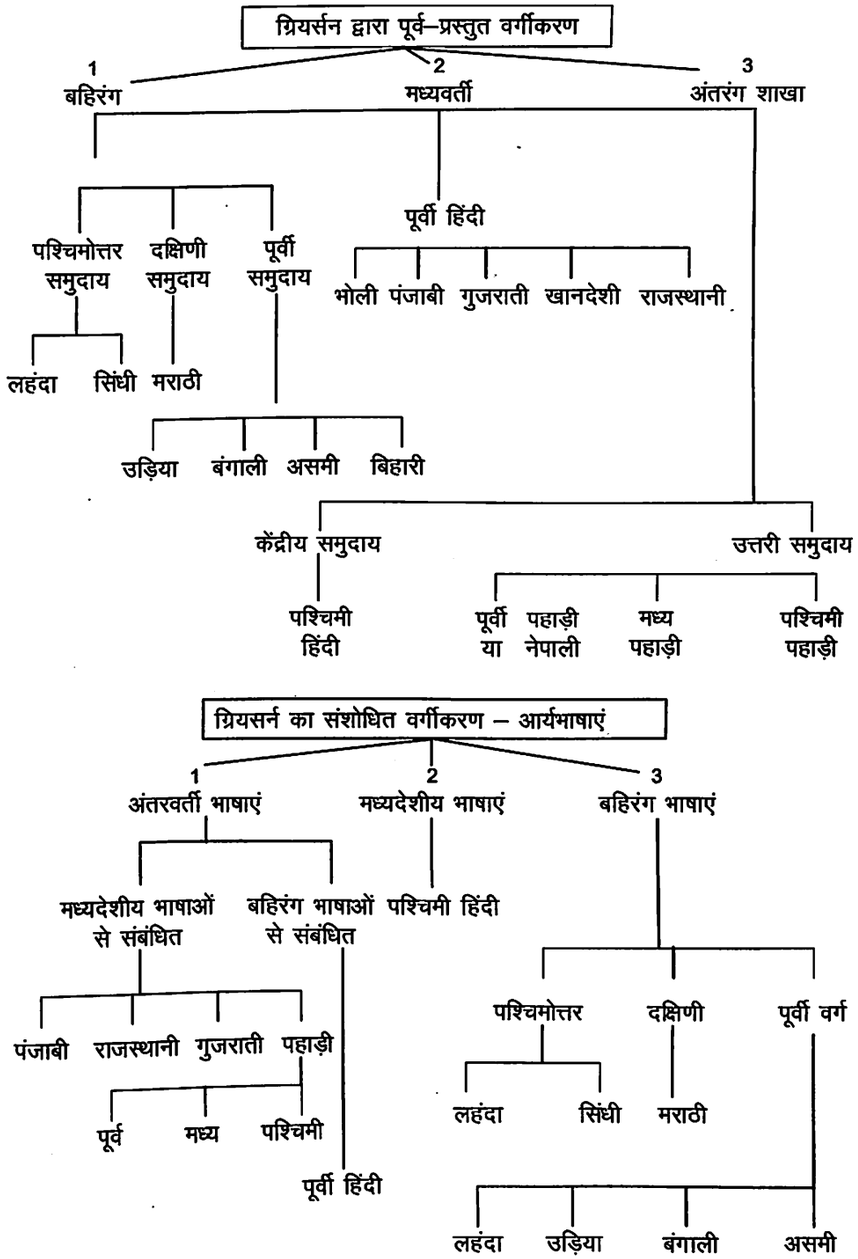

इस वर्गीकरण को मान्यता देते हुए डॉ. ग्रियर्सन ने निम्न प्रमाण प्रस्तुत किए हैं–

1. प्रत्येक उप शाखा के उच्चारण दूसरे से भिन्न हैं – जैसे अंतरंग शाखाओं के दंत्य 'स' का उच्चारण बहिरंग में 'श' हो जाता है। पश्चिमोत्तरी वर्ग की सिंधी भाषा में 'स' 'ह' बन जाता है जैसे 'कोस' का 'कोह'।
2. अंतरंग भाषाएं वियोगावस्था में हैं जबकि बहिरंग की भाषाओं ने संयोगावस्था प्राप्त कर ली है। उदाहरणार्थ हिंदी का संबंध कारक का, के, की लगाकर बनाया जाता है जिन्हें संज्ञा से पृथक ही समझा जाता है। जैसे घोड़े का में

टिप्पणी

'का' प्रत्यय अलग है। यही कारक बंगाली में जो बहिरंग उपशाखा की भाषा है संज्ञा में र लगाकर बनता है और यह चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है। जैसे घोड़ार में 'र' साथ मिला है।

3. बहिरंग भाषाओं में भूतकालिक क्रियाओं के साधारण रूपों से ही अनेक कर्ताओं का पुरुष और वचन माना जा सकता है, क्योंकि भूतकालिक क्रिया का रूप कर्ता पुरुष के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। जैसे मराठी में गेलो (मैं गया) और गेला (वह गया), बंगाल का 'भरिलाए' शब्द भी उसके कर्ता के उत्तम पुरुष होने की सूचना देता है किंतु अंतरंग भाषाओं में भूतकालिक क्रियाएं सभी पुरुषों में एक रहती हैं। जैसे हिंदी में मैं गया, वह गया, तू गया – सभी में 'गया' समान है।
4. बहिरंग भाषाओं की भूतकालिक क्रियाओं में सर्वनाम भी उनकी क्रियाओं में ही अंतर्भूत रहता है, जबकि अंतरंग भाषाओं में सर्वनाम अपना रूप बनाए रखता है।
5. बहिरंग शाखा की भाषाओं के शब्दों तथा धातुओं में भी साम्य है, किंतु अंतरंग में ऐसा नहीं है।

एशिया के प्रतिष्ठित भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुनीतकुमार चटर्जी ग्रियर्सन के वर्गीकरण से सहमत नहीं हैं। उन्होंने उनके वर्गीकरण का बड़ी सूक्ष्मता से अध्ययन कर ग्रियर्सन के तर्कों को बड़े युक्तियुक्त ढंग से खंडित किया है, जैसे–

1. परिवर्तन का नियम सर्वमान्य नहीं हो सकता, 'स' संबंधी परिवर्तन सभी भाषाओं में नहीं होता है। सिंधी तथा लहंदा में 'स' का 'ह' मराठी, बांग्ला आदि में 'श' हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'स' का 'ह' और 'श' का होना अंतरंग में भी पाया जाता है। जैसे – कोस–कोह, पश्चिमी हिंदी में, केशरी–केसरी, तस्य–तस्स, ताह, एकादश–ग्यारह, द्वादश–बारह इत्यादि।
2. महाप्राण–अल्पप्राण का अभेद की स्थिति अन्य भाषाओं में भी पाई जाती है।

डॉ. हरदेव बाहरी के शब्दों में 'ग्रियर्सन द्वारा निर्धारित सीमाओं के आगे पूर्व में बिहारी, पश्चिम में राजस्थानी और उत्तर में मध्य पहाड़ों की सीमाएं सम्मिलित की हैं।

हिंदी की विविध बोलियां

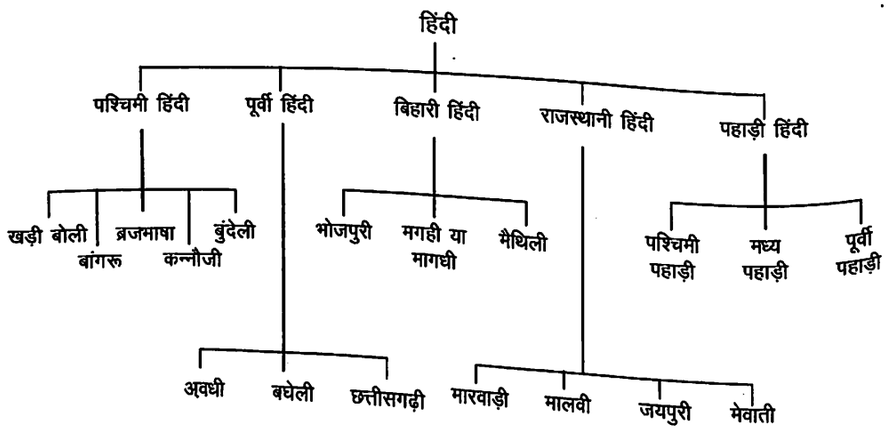

(क) पश्चिमी हिंदी और उनकी बोलियां

टिप्पणी

पश्चिमी हिंदी की पांच मुख्य बोलियां हैं –1. खड़ी बोली 2. बांगरू 3. ब्रज 4. कन्नौजी 5. बुंदेली।

• खड़ी बोली

दिल्ली और उसके पूर्व तथा उत्तर–पूर्व के समीपवर्ती जिलों की भाषा खड़ी बोली है। इस बोली को मुसलमान 'हिंदी' या 'हिंदवी' कहते थे। हिंदी के लिए 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लल्लूलाल जी ने अपने 'प्रेम–सागर' की भूमिका में किया है। इसी का परिष्कृत रूप राष्ट्र–भाषा 'हिंदी' कहलाता है।

खड़ी बोली का क्षेत्र मुसलमान शासकों का भी गढ़ रहा है। अतः हिंदी की अन्य बोलियों की अपेक्षा खड़ी बोली में अरबी–फारसी के शब्दों की अधिकता है, जिनमें प्रायः अपने शुद्ध उच्चारण के साथ लिखने की प्रवृत्ति है। किंतु ग्रामीण खड़ी बोली में इन विदेशी शब्दों को ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ ग्रहण किया गया है। ग्रामीण खड़ी बोली तथा साहित्यिक खड़ी बोली में उच्चारण का और कहीं–कहीं रूपात्मकता का भी अंतर है। खड़ी बोली क्षेत्र में जाट जाति के लोगों की संख्या अधिक है, अतः बोलचाल की भाषा में जाटों के जातिगत गुण, पौरुष और कठोरता आ गई है। अंतिम व्यंजन को द्वित्व कर देने की प्रवृत्ति है। जैसे–गाड्डी (गाड़ी), भूक्खा (भूखा), देक्खा (देखा), रोट्टी (रोटी), 'ड़' और 'ढ़' स्थान पर उच्चारण में प्रायः 'ड' और 'ढ' ही रहता है; जैसे पड्ढा (पढ़ा), गाड्डी (गाड़ी)। 'न' के स्थान पर 'ण' की प्रवृत्ति है; जैसे– अपणा (अपना), सुण्णा (सुनना)। तत्कालिक वर्तमान 'मार रहा हूं', 'मार रहे हैं', के स्थान पर 'मारे हूं', 'मारे हैं', हो जाता है।

• बांगरू

यह शब्द 'बांगर' से निकलता है जिसका अर्थ– ऊबड़–खाबड़ या ऊंची–नीची भूमि से है। दिल्ली के उत्तर–पश्चिम की भूमि इसी प्रकार की है। यह प्रदेश सतलुज–सिंधु तथा गंगा–यमुना के बीच की उच्च भूमि है। इसका प्राचीन नाम 'सारस्वत' देश था। हिसार–जिले में 'हरियाणा' एक स्थान का नाम है, जिसके कारण इसको –हरियानी' भी कहते हैं। यह दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्र– रोहतक, करनाल, नाभा, पटियाला के पूर्वी भाग तथा हिसार जिले के पूर्वी भाग में बोली जाती है। जाटों का प्रदेश होने के कारण इसे 'जाटू' भी कहते हैं। दिल्ली में चमड़े का काम करने वाले आस–पास के गांवों से आ गए हैं जो इसी भाषा का प्रयोग करते हैं, अतः दिल्ली में यह 'चमरुवा' भी कहलाती है। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही बांगरू में पौरुष और कठोरता है।

साहित्यिक भाषा न होने से स्वरों का उच्चारण अस्थिर है। 'जवाब' और 'जुबाब' 'बहुत' और 'बौहत' समान रूप से बोले जाते हैं। 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग ग्रामीण खड़ी बोली से भी अधिक है। जैसे – होणा (होना), चल्लाणा (चलाना)। खड़ी बोली में केवल वत्सर्यल है किंतु बांगरू में 'ल' की मूर्धन्य ध्वनि 'ल' भी है, जैसे–काल। ग्रामीण खड़ी बोली के समान ही ड़, ढ़ के स्थान पर ड, ढ पाया जाता है तथा द्वित्व की भी प्रवृत्ति अधिक है; जैसे राज्जी (राजी), भित्तर (भीतर))।

टिप्पणी

• ब्रजभाषा

ब्रजप्रदेश की ब्रजभाषा आदर्श ब्रजभाषा है। किंतु ब्रजभाषा का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के आगरा, अलीगढ़, एटा, मथुरा, मैनपुरी, बुलंदशहर, बदायूं, बरेली, हरियाणा का गुड़गांव, राजस्थान के धौलपुर, भरतपुर तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्यप्रदेश का ग्वालियर ब्रज भाषा–भाषी क्षेत्र हैं। इसकी क्षेत्रीय बोलियों का अंतर भूतकृदंत के रूपों पर यौ, यो, औ, ओ प्रत्ययों द्वारा ज्ञात हो जाता है, जैसे – चल्यो, चल्यौ, चलौ, चलो। शौरसेनी प्राकृत की वास्तविक प्रतिनिधि ब्रजभाषा ही है। खड़ी बोली पर पंजाबी का प्रभाव है।

खड़ी बोली के अकारांत शब्द ब्रजभाषा में आकारांत या ओकारांत हो जाते हैं, जैसे खड़ी बोली का 'भला' ब्रज में 'भलौ या भलो', खड़ी बोली में 'का' ब्रज में 'को या कौ', खड़ी बोली का 'करना' ब्रज 'करनो या करनौ'। आकारांत संज्ञा शब्द ब्रज की कुछ बोलियों में, जिनका क्षेत्र खड़ी बोली के क्षेत्र से मिला हुआ है, आकारांत ही रहता है, जैसे – ढौटा।

बहुवचन का विकारी रूप खड़ी बोली में 'ओ' प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इसके विपरीत ब्रजभाषा में 'न' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे खड़ी बोली 'घोड़ों' ब्रज में 'घोड़न'। बहुवचन के प्रत्यय की दृष्टि से ब्रजभाषा अवधी से मिलती है।

कर्ताकारक में ब्रजभाषा में 'मैं' की अपेक्षा 'हौं' का प्रयोग अधिक होता है, जैसे – 'हौं खडौ रहौं', किंतु सकर्मक क्रिया का कर्ता 'मैं' ही होता है। जिस पर खड़ी बोली के समान 'ने' परसर्ग लगाया जाता है, जैसे – मैंने आम खायौ। अन्य सर्वनाम खड़ी बोली के समान हैं, केवल ध्वनि विकार उत्पन्न हो गया है; जैसे वह 'बुह', यह 'इह' हो जाता है। खड़ी बोली के परसर्ग ब्रजभाषा में ने 'नै', को 'कूं, कौ, कै, से, सों, सूं, तों, ते का कौ, को में पर पैं रूपों में पाए जाते हैं।

ब्रजभाषा में भविष्य काल के लिए, खड़ी बोली के समान, क्रिया के साथ गा, गे, गी, प्रत्यय भी लगते हैं और कन्नौजी के समान सीधा संस्कृत के भविष्यत रूपों से विकसित रूपों में भी प्रयोग में आते हैं। जैसे संस्कृत 'चलिष्यति', ब्रज– 'चलिस्सति', या 'चलिहई', ब्रज– चलिहै।

सहायक क्रिया में भी अंतर पाया जाता है। खड़ी बोली के 'था, थे, थी' ब्रज में प्रायः 'हो, हे, ही, हो जाते हैं। 'हुआ' के स्थान पर 'भयौ' और 'हुई' के स्थान पर 'भई' का प्रयोग होता है। पालि और प्राकृत में संस्कृत–'भू' धातु के 'भू' और 'हू' दोनों शब्द पाए जाते हैं। भूतकृदंत के लिए खड़ी बोली ने 'हूं' को और ब्रज ने 'भू' को अपनाया है।

खड़ी बोली में पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए धातु के साथ 'कर' प्रत्यय लगाया जाता है। किंतु ब्रजभाषा में धातु के साथ 'इ' प्रत्यय लगाकर पुनः उसके साथ 'करि' या 'कै' लगाया जाता है। या कभी बिना 'करि' या 'कै' के भी काम चल जाता है– जैसे – खड़ी बोली में 'चलकर', ब्रज में चलि, चलिकरि।

• कन्नौजी

उत्तरप्रदेश के फर्रूखाबाद जिले में कन्नौज एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। यह शब्द 'कान्यकुब्ज' का तदभव रूप है। कन्नौजी 'कन्नौज' शब्द से बना है, कन्नौजी का उद्भव शौरसेनी प्राकृत की एक शाखा पांचाली अपभ्रंश से माना जाता है। कुछ लोग इसे ब्रज की ही एक बोली मानते हैं। यह उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद, इटावा, शाहजहांपुर, पीलीभीत, हरदोई के पश्चिमी भाग तथा कानपुर जिलों में बोली जाती है। इसमें और ब्रज में बहुत कम अंतर होने के कारण कन्नौजी का साहित्य ब्रजभाषा के अंतर्गत ही गिना जाता है।

भारोपीय भाषा परिवार और हिंदी

टिप्पणी

जो शब्द खड़ी बोली में 'आ' से समाप्त होते हैं, वे ब्रज में 'औ या यौ' से और कन्नौजी में ओकारांत हो जाते हैं। खड़ी बोली का 'चला' ब्रज में 'चल्यौ' तथा कन्नौजी में 'चलो' हो जाता है।

कन्नौजी में अकारांत शब्दों को उकारांत करने की प्रवृत्ति ब्रज से अधिक है; जैसे – मालू, बांटु, चलतु, खातु, धरू। भूतकालिक सहायक तथा स्थिति सूचक क्रिया 'था, थे, थी' के स्थान पर 'हतो, हते, हती' का प्रयोग होता है।

• बुंदेली

बुंदेलखंड की बोली बुंदेली है। बुंदेला राजपूतों के कारण इस भूखंड का नाम बुंदेल खंड पड़ा। किंतु वर्तमान काल में बुंदेली का क्षेत्र विस्तृत है। उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, जालौन, झांसी जिलों तथा मध्यप्रदेश के भोपाल, ग्वालियर, ओरछा, सागर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद जिलों में यह अपने मूल रूप में बोली जाती है। दतिया, पन्ना, चरखारी, दमोह, बालाघाट, छिंदवाड़ा आदि स्थानों पर इसका मिश्रित रूप मिलता है। इसके उत्तर–पूर्व तथा पूर्व में कोसली, दक्षिण में मराठी, पश्चिम में राजस्थानी तथा उत्तर में ब्रजभाषा बोली जाती है। बुंदेली साहित्य को भी ब्रज के ही अंतर्गत गिना जाता है, क्योंकि बुंदेली को भी कन्नौजी के समान ब्रज की ही एक बोली माना जाता है। बुंदेली कवियों ने क्षेत्रीय शब्दों का प्रयोग बहुत किया है, जिनका प्रयोग सामान्यतः साहित्य भाषा में नहीं होता। केशवदास की रचनाओं में इस प्रकार के शब्द पाए जाते हैं। बुंदेली की कई उपबोलियां भी हैं, जैसे–राठौरी, लौघंती, बनाफरी आदि। ब्रज के 'ए' और 'औ' बुंदेली में 'ए' और 'ओ' हो जाते हैं, जैसे, और–ओर, जैसा–जेसो।

कन्नौजी के ही समान खड़ी बोली के अकारांत शब्द बुंदेली में ओकारांत हो जाते हैं, जैसे–घोड़ा – घोरो। गया – गयो। खड़ी बोली का 'ड़' बुंदेली में 'र' में परिणत हो जाता है। 'वह', 'वो' जैसे सर्वनाम प्रायः खड़ी बोली के समान होते हैं। किंतु खड़ी बोली के परसर्ग बुंदेली में– को – कों या खों, से–सें, सों, में–मैं, रूपों में पाए जाते हैं। भविष्यत काल के रूप खड़ी बोलियों के समान गा, गे, गी लगाकर ब्रज के समान हो, है, हैं से भी समाप्त होते हैं।

(ख) पूर्वी हिंदी और उनकी बोलियां

जिस तरह पश्चिमी हिंदी की जननी शौरसेनी – प्राकृत है, उसी तरह पूर्वी हिंदी का उद्भव अर्द्धमागधी से है। यह उस प्रदेश की भाषा है, जहां प्राचीन काल में कोसल जनपद था। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी ही हिंदी कहलाने की अधिकारिणी है, क्योंकि मूलतः 'हिंदी' शब्द इसी के लिए प्रयुक्त होता रहा है। डॉ. चटर्जी ने पूर्वी हिंदी को प्राच्य भाषाओं के साथ रखा है। सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'कोसली' को पूर्वी हिंदी इसलिए कहा है कि पश्चिमी और पूर्वी हिंदी का क्षेत्र, विशेषतः अवधी का क्षेत्र सांस्कृतिक और राजनीतिक

टिप्पणी

दृष्टि से एक ही रहा। सूर का 'सूर सागर' और 'तुलसी' का 'रामचरित मानस' क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी हिंदी के होते हुए भी पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रें में समान रूप से मान्य ग्रंथ हैं। गत शताब्दी तक ब्रजभाषा तो पंजाब से लेकर काशी तक की साहित्यिक भाषा हो गई थी। अतः पूर्वी और पश्चिमी–हिंदी इसी कारण समीप आ गई हैं। इनका तात्विक अंतर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियां है, जैसे – अवधी, बघेली, और छत्तीसगढ़ी।

- **अवधी**

अवध प्रांत के आधार पर इसका नामकरण हुआ। प्राचीन काल में इसका केंद्र अयोध्या नगर था, किंतु अब लखनऊ अवधी का केंद्र है क्योंकि अवधी का क्षेत्र कुछ पश्चिम को हट गया है। गंगा के दक्षिण में भी यह फतेहपुर, इलाहाबाद, बांदा, मिर्जापुर जिलों में बोली जाती है। अवधी के बोलने वालों की संख्या 2 करोड़ से अधिक है। अवधी के पश्चिमी भाग उन्नाव, फतेहपुर आदि जिलों में इसे 'बैसवाड़ी' भी कहते हैं। बैसवाड़ी मूल अवधी से कुछ कर्णकटु है। अवधि के साहित्य को प्रेमाख्यानकार जायसी आदि तथा 'श्री रामचरित मानस' के रचयिता तुलसी द्वारा अमरत्व प्रदान किया गया है। पूर्वी हिंदी बोलियों के समूह की प्रमुख भाषा अवधी है। यह पूर्वी हिंदी की सबसे महत्वपूर्ण बोली है। ब्रजभाषा के उपरांत जिस प्राचीन भाषा को साहित्यिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ, वह अवधी है। अवधी में हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास ने अपने सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य एवं पुराण काव्य 'रामचरितमानस' की रचना की है। कुछ विद्वान इसे कौशली एवं बैसवाड़ी बोली भी कहते हैं।

- **बघेली**

यह बघेलखंड की भाषा है, जिसका नामकरण बघेले राजपूतों के कारण हुआ। रीवा बघेलखंड का केंद्र है। यह पश्चिमी बांदा तथा मध्यप्रदेश के दमोह, जबलपुर, मंडला तथा बालाघाट जिलों में भी बोली जाती है। कुछ विद्वान इसे अवधी की ही एक बोली मानते हैं।

- **छत्तीसगढ़ी**

यह छत्तीसगढ़ की बोली है, किंतु कुछ भागों में इसे खलोटी और लरिया भी कहा जाता है। यह जबलपुर से लेकर छोटा नागपुर तक और उत्तर में रीवां से लेकर दक्षिण में बस्तर तक बोली जाती है। इसकी कई क्षेत्रीय बोलियां हैं, क्योंकि यह उत्तर में अवधी, पूर्व में मुंडा और उड़िया, दक्षिण तथा दक्षिण पश्चिम में मराठी और पश्चिम में बघेली और बुंदेली से घिरी हुई है। इसमें साहित्य का प्रायः अभाव है।

(ग) बिहारी हिंदी और उनकी बोलियां

- **भोजपुरी**

भोजपुरी मुख्य रूप से पश्चिम बिहार, पूर्वी–उत्तर प्रदेश ओर झारखंड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यवहारिक रूप से भोजपुरी हिंदी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिए मुख्यतः संस्कृत एवं हिंदी पर निर्भर है। कुछ शब्द इसने

टिप्पणी

उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भारत के जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है।

डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को अंतरंग और बहिरंग इन दो श्रेणियों में विभक्त किया है जिसमें बहिरंग के अंतर्गत उन्होंने तीन प्रधान शाखाएं स्वीकार की हैं–

1. उत्तर पश्चिमी शाखा
2. दक्षिणी शाखा
3. पूर्वी शाखा

इस अंतिम शाखा के अंतर्गत उड़िया, असमी, बांग्ला और पुरबिया भाषाओं की गणना की जाती है। पुरबिया भाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी– ये तीनों बोलियां मानी जाती हैं। क्षेत्र विस्तार ओर भाषा–भाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

- **मगही या मागधी**

यह भाषा भारत के मध्य–पूर्व में बोली जाने वाली एक मुख्य भाषा है। इसका निकट का संबंध भोंजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएं एक ही साथ बहारी भाषा के रूप में रख दी जाती है। इसे देवनागरी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलने वालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख हैं। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर और नालंदा के इलाकों में बोली जाती है।

- **मैथिली**

हिंदी प्रदेश की उपभाषा 'बिहारी' की एक बोली है। 'मैथिली' नाम उस क्षेत्र के नाम 'मिथिला' से संबद्ध है। 'मिथिला' शब्द भारतीय साहित्य में बहुत पहले से है। मैथिली मुख्य रूप से भारत में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, पूर्णिया आदि के क्षेत्रों तथा नेपाल के तराई के ईलाकों में बोली जाने वाली भाषा है। यह प्राचीन भाषा हिंदी आर्य परिवार की सदस्य है और भाषाई तौर पर हिंदी (जिससे इसकी लगभग 65 प्रतिशत शब्दावली आती है), बांग्ला, असमिया, उड़िया और नेपाली से इसका काफी निकट का संबंध है।

(घ) राजस्थानी हिंदी और उनकी बोलियां

राजस्थान प्रांत में बोली जाने वाली भाषा को राजस्थानी कहते हैं। इसे अपभ्रंश की 'जेठी बेटी' की संज्ञा दी गई है, क्योंकि अपभ्रंश की जितनी अधिक विशेषताएं राजस्थानी में हैं उतनी अन्य किसी आधुनिक बोली में नहीं। इसका संबंध एक ओर ब्रजभाषा और बुंदेली से और दूसरी ओर गुजराती से निश्चित होता है। आज इसका नाम 'राजस्थानी' है किंतु पहले इसे मारू सोरठ या मारू भाषा तथा डिंगल कहा जाता था। इसका उद्भव कुछ विद्वान शौरसेनी से और कुछ गुर्जर अपभ्रंश से मानते हैं। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 25,724,144 है।

टिप्पणी

भौगौलिक दृष्टि से इस प्रदेश में एकरूपता नहीं मिलती। कहीं रेतीले मैदान हैं। (जैसे जैसलमेर और बीकानेर) तो कहीं पहाड़ी प्रदेश (जैसे उदयपुर) मालवा का हरा–भरा इलाका और अजमेर की घाटियां भी इसी प्रदेश में हैं। इसी कारण से यहां अनेक बोलियां और उपबोलियां मिलती हैं। इनकी उपबोलियों की संख्या 30 के लगभग है। इसमें निम्न बोलियां प्रमुख हैं–

- **मारवाड़ी**

शुद्ध मारवाड़ी जोधपुर और उसके आसपास बोली जाती है। इसकी लगभग 12 उपबोलियां हैं। यह राजस्थानी की सबसे बड़ी बोली है। बोलने वाले लगभग 78 लाख हैं। यही प्राचीन डिंगल का विकसित रूप है। इसमें चंद दुरसाजी, मुरारीदान, पृथ्वीराज, सूर्यमल्ल, मोरा, दादू, चरणदास–हरिदास, गद्य साहित्य में बचनिकाओं, प्रसिद्धियों या यश गाथाओं की अपनी विमल परंपरा प्राप्त होती है। यही आज के राजस्थान की आदर्श बोली है।

विशेषताएं–इसमें दो क्लिक ध्वनियां हैं – घ्, स

घ् का उच्चारण द–ध के बीच में होता है – धावो (पशु)

स का स–ह के बीच में – जास्यो

स < श में उच्चारित

- **मालवी**

मालवा की बोली मालवी है। इसके अंतर्गत पश्चिम में प्रतापगढ़, रतलाम, इंदौर, भोपाल, होशंगाबाद, गुना, झालावाड़, टोंक तथा चित्तौड़गढ़ के कुछ भाग आते हैं। शुद्ध मालवी उज्जैन, इंदौर और देवास में बोली जाती है। लगभग 65 लाख लोग इसे बोलते हैं।

इसकी स्थिति बुंदेली और मारवाड़ी के बीच की है।

ड़ > ड

ऐ > ए

औ झ ओ

- **जयपुरी**

इसको ढूंढाड़ी भी कहते हैं। इसको पश्चिमी सीमा पर ढूंढ़ा या अभीटा गया या पाया गया है, जहां किसी युग में बड़े–बड़े यज्ञ हुए थे। इसी ढूंढाड़ से इसका नाम पड़ा। इसको जंगली बोली भी कहा गया है। इसे बोलने वालों की संख्या 40 लाख के लगभग है। जयपुर नगर के 50 मील के क्षेत्र में इसे बोला जाता है।

- **मेवाती**

मेओ जाति के नाम पर क्षेत्र का नाम मेवात और बोली का नाम मेवाती पड़ा है। इस पर अब जयपुरी का प्रभाव अधिकाधिक पड़ता जा रहा है।

टिप्पणी

(ङ) पहाड़ी हिंदी और उनकी बोलियां

शौर सेनी अपभ्रंश से विकसित पहाड़ी भाषा हिमाचल प्रदेश के भद्रावह के उत्तर पश्चिम से लेकर नेपाल के पूर्वी भाग तक की भाषा है। इसके तीन मुख्य रूप हैं– पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी ओर पूर्वी पहाड़ी

- **पश्चिमी पहाड़ी**

यह बोली शिमला के निकटवर्ती क्षेत्रों में बोली जाती है।

- **मध्य पहाड़ी**

इस बोली की दो शाखाएं हैं– कुमाऊंनी और गढ़वाली।

1. **कुमाऊंनी**–कुमाऊं का पुराना नाम कूर्मांचल था। इसके अंतर्गत नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के जिले सम्मिलित हैं। ग्रियर्सन ने इसकी 12 बोलियों की गिनती की है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 10 लाख है। लोककवियों में गुमानी पंत और कृष्ण पांडेय का नाम प्रसिद्ध है।

   इस पर दरद, खस, राजस्थानी, ,खड़ी बोली आदि के अतिरिक्त किरात और मोटा आदि तिब्बती चीनी परिवार की भाषाओं का प्रभाव रहा है।

2. **गढ़वाली**–ठाकुरों के बावन गढ़ियों में विभक्त हो जाने के कारण इसका नाम गढ़वाल या बावनी पड़ा। यहां की बोली होने के कारण ही इसे गढ़वाली कहते हैं। आज इस क्षेत्र का नाम उत्तराखंड है। इसमें गढ़वाल, टिहरी, चमोली, उत्तरकाशी का दक्षिणी भाग आता है। इसके लगभग 11 लाख बोलने वाले हैं। लोकगीतों के कई संग्रह प्रकशित हुए हैं। लेखकों में चंद्रमोहन रतूड़ी, गैरोला, बहुगुणा आदि के नाम प्रसिद्ध हैं।

- **पूर्वी पहाड़ी**

इस बोली को गोरखाली भी कहते हैं। यह नेपाल की राजभाषा है।

गतिविधि

अपभ्रंश बोलियों और उनसे निकलने वाली आधुनिक भाषाओं को एक चार्ट पर दर्शाइए।

क्या आप जानते हैं?

लेटिन भाषा का प्रधान क्षेत्र इटली था और इसकी 'ओस्कन' तथा 'अम्ब्रियन' नामक दो प्राचीन भाषाएं थीं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

19. ..... ने हिंदी का क्षेत्र पश्चिम में अंबाला से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल से दक्षिण में बालाघाट तक बताया।
20. दिल्ली और उसके पूर्व तथा उत्तर–पूर्व के समीपवर्ती जिलों की भाषा ..... है।

सही/गलत बताइए–

21. बांगर का अर्थ है समतल भूमि।
22. राजस्थानी भाषा को अपभ्रंश की जेठी बेटी की संज्ञा दी गई है।

टिप्पणी

3.7 सारांश

भारोपीय परिवार में कुछ ऐसी भाषाएं हैं, जिनमें अर्थ मात्र और रूप मात्र सर्वथा पृथक नहीं किये जा सकते। एक ही शब्द में अर्थ और रूप दोनों का ज्ञान हो जाता है। रूप मात्रवाली भाषाओं में यद्यपि कुछ भाषाओं में रूप मात्र स्वतंत्र देखे जाते हैं पर व्यवहार के बिल्कुल उपयोगी नहीं होते। क्योंकि आगम और विभक्ति को हम प्रकृति से पृथक नहीं कर सकते। प्रायः प्राचीन भारोपीय भाषाओं के शब्दों में अर्थ मात्र और रूप मात्र का ऐसा ही संबंध दिखाई पड़ता है।

हिंदी का विकास क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश के पश्चात हुआ है। हिंदी के विकास का स्पष्ट दर्शन हमें चंदवरदायी के समय से होने लगता है। यह समय बारहवीं सदी का अंतिम अर्द्ध भाग है परंतु उस समय में भी इसकी भाषा हिंदी से बहुत भिन्न हो गई थी।

आदि काल की हिंदी में अपभ्रंश की लगभग सभी ध्वनियां आ गई थीं पर साथ में कुछ नई ध्वनियों का भी विकास हुआ। अपभ्रंश में संयुक्त स्वर नहीं थे। हिंदी में 'ए' तथा 'ओ' दो संयुक्त स्वर इस काल में प्रयुक्त होने लगे। व्यंजनों में एक तो दंत्योष्ठ्य 'व' नया विकसित हो गया तथा दो उत्क्षिप्त ध्वनियां 'ड़', 'ढ़' भी प्रयुक्त होने लगीं।

इस काल का साहित्य जिस भाषा में लिखा गया उसके विशेषतया दो रूप थे – डिंगल तथा पिंगल।

आदिकाल के पश्चात हिंदी के विकास का दूसरा चरण अर्थात मध्यकाल लगभग 525 वर्षों तक माना जाता है। इस काल को हम दो भागों में बांट सकते हैं। प्रथम भाग 1375 ई. से 1700 ई. तक मानते हैं। इस काल में हिंदी की पुरानी बोलियां परिवर्तित होकर ब्रज, अवधी तथा खड़ी बोली का रूप धारण करती हैं।

इस काल में लोगों की धर्म के प्रति आस्था थी, इसी कारण इस युग के पूर्वार्द्ध तक धार्मिक साहित्य अधिक लिखा गया। धर्म की प्रमुखता के कारण संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का प्रचार हुआ। फलतः आदि काल की अपेक्षा बहुत अधिक तत्सम् शब्द साहित्यिक भाषा में प्रयुक्त होने लगे।

आधुनिक काल खड़ी बोली का युग है। खड़ी बोली अवधी तथा ब्रज बोलियों की भांति प्राचीन है। प्राचीन तथा मध्यकाल के ग्रंथों में यत्र–तत्र खड़ी बोली के प्रयोग देखने में आते हैं, यह बात और है कि साहित्य के माध्यम के रूप में वह इतनी शीघ्र स्वीकृत नहीं हुई।

खड़ी बोली हिंदी के विकसित रूप के गद्य साहित्य में प्रचार का प्रमुख श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है। उनके काल में भाषा में राष्ट्रीयता की एक लहर उठी। हिंदी को उर्दू–फारसी के प्रवाह से मुक्त करने का प्रयास प्रारंभ हुआ। भाषा की समृद्धि के लिए संस्कृत के शब्द लिए जाने लगे। हिंदी भाषा के परिष्कार का कार्य प्रारंभ हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हिंदी सिर ऊंचा कर आगे बढ़ती रही। आज हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा है किंतु किंचित राजनीतिक एवं भौगोलिक कारणों से उसका समग्र भारत में उतना प्रचार–प्रसार नहीं हो पा रहा है, जितना कि एक स्वतंत्र राष्ट्र में होना चाहिए।

टिप्पणी

प्राकृत–कालीन जनभाषा के विकसित रूप को 500 ई. से 1000 ई. के बीच अपभ्रंश कहा जाता है। अर्थ की दृष्टि से विचार करें तो जैसा विचित्र और आश्चर्यजनक नाम अपभ्रंश का मिलता है वैसा किसी दूसरी भाषा का नहीं मिलता। अपभ्रंश नाम से एक दूसरी ही मनःस्थिति का बोध होता है। संस्कृत कोश ग्रंथों में अपभ्रंश का अर्थ 'बिगड़े हुए शब्दों वाली भाषा' अथवा 'बिगड़ा हुआ शब्द' ही दिया गया है। अपभ्रंश का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि (150 ई.पू. के लगभग) के 'महाभाष्य' में मिलता है। प्राचीन और मध्यकालीन भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा थी जो जनसाधारण की शक्ति से संबलित होकर संस्कृत के पश्चात दूसरी सबसे लंबे काल तक साहित्य की भाषा बनी। इसे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी भी कहा जाता है।

ईसा की तीसरी शताब्दी से अपभ्रंश भाषा का काव्यार्थ प्रयोग माना जाता है। भामह और दंडी ने भी अपभ्रंश काव्य की चर्चा की है। साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश अंशों का प्रथम दर्शन कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' में होता है। इसे याकोबी तथा स.प. पंडित अप्रामाणिक मानते हैं किंतु डॉ. उपाध्ये एवं डॉ. तगारे आदि इसे प्रामाणिक मानते हैं।

शौरसेनी अपभ्रंश शौरसेनी प्राकृत का परिवर्ती रूप है। यह अपभ्रंश उत्तर में पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, कुछ पूर्वी पंजाब, मध्यप्रदेश के पश्चिमी भाग, राजस्थान एवं गुजरात में बोली जाती थी। इसी का परिनिष्ठित रूप तत्कालीन आर्यभाषी पूरे भारत की भाषा थी। अपभ्रंश साहित्य में इसी भाषा का प्रयोग हुआ है।

अपभ्रंश और जनसाधारण की बोली का एक मिश्रित रूप, नई भाषा के निर्माण का कारण माना जाता है और यह नई भाषा परवर्ती अपभ्रंश अवहट्ट कहलायी। भाषा शास्त्रीयों में अवहट्ट के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसे मैथिल अपभ्रंश कहा, कुछ ने संक्रान्तिकालीन भाषा और कभी इसे पिंगल कहा गया। अवहट्ट का सर्वप्रथम प्रयोग ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्णरत्नाकर (1325 ई.) में मिलता है। राजभाषाओं में जिन छः भाषाओं का वर्णन भाट करते हैं उनमें से एक भाषा अवहट्ट भी है। अवहट्ट और अपभ्रंश में ध्वनि विचार की दृष्टि से कोई बहुत महत्वपूर्ण अंतर नहीं दिखाई पड़ता। अवहट्ठ में वे सभी ध्वनियां थीं जो अपभ्रंश में थीं।

अपभ्रंश को कई विद्वानों ने पुरानी हिंदी माना है। राहुल सांकृत्यायन, चंद्रधर शर्मा गुलेरी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपभ्रंश को पुरानी हिंदी मानते हुए इसे हिंदी साहित्य के इतिहास का अनिवार्य अंग मानते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी अपभ्रंश को पुरानी हिंदी मानने के पक्ष में नहीं हैं। प्राकृत अपभ्रंश का महत्व हिंदी भाषा के लिए नकारा नहीं जा सकता। प्राकृत भाषा और साहित्य का प्रभाव देश के एक बड़े भू–भाग को आच्छादित किये हुए था। प्राकृत और अपभ्रंश को संस्कृत की अपेक्षा मधुर कहा गया है। इसे झुठलाने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

अपभ्रंश साहित्य में सातवीं शताब्दी में बोलचाल की भाषा का हस्तक्षेप होने लगा था। यद्यपि अपभ्रंश का व्याकरण बहुत कुछ प्राकृत व्याकरण है पर उन पर बोलचाल की भाषा के क्रियापदों, विभक्तियों, परसर्गों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इनके माध्यम से ब्रजी, अवधी, मैथिली, खड़ी बोली, भोजपुरी के पूर्वरूप की एक झलक मिल सकती है।

टिप्पणी

आरंभिक हिंदी 11वीं शती ईस्वी के आसपास परवर्ती अपभ्रंश से विकसित है। यह उस समय की समस्त मध्यदेशीय बोलियों के लिए एक सामान्य संज्ञा या सामूहिक नाम है। आज हम जिस अर्थ में 'हिंदी' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, उस भाषा का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। ग्रियर्सन ने अंबाला (पंजाब) से लेकर बनारस तक और नैनीताल की तलहटी से लेकर बालाघाट (मध्यप्रदेश) तक की बोलियों को 'हिंदी' कहा है। उन्होंने इसके दो भाग कर दिए हैं, अर्थात पश्चिमी हिंदी और पूर्वी 'हिंदी'। यह सब उन्होंने ऐतिहासिक आधार पर निश्चित किया है। पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी से और पूर्वी हिंदी का अर्ध मागधी से माना। पश्चिमी हिंदी की ही एक शाखा दक्षिण में जा लगी है जिसे दक्खिनी हिंदी कहते हैं।

हिंदी शब्द की उत्पत्ति का संबंध भारत के उत्तर–पश्चिम में बहने वाली सिंधु नदी से माना जाता है। अधिकतर आक्रमणकारी और यात्रियों ने उत्तर–पश्चिम सिंहद्वार से ही भारत में प्रवेश किया था। ईरान और भारत के आपसी संबंध प्राचीन काल से ही थे। इरानियों द्वारा 'सिंधु' को 'हिंदू' कहा जाता था।

फारसी भाषा का शब्द 'हिंदं' मूलतः फारसी भाषा का नहीं है, बल्कि यह संस्कृत 'सिंधु' शब्द का फारसी उच्चारण है। फारसी उच्चारण की बात तो 'सिंधु' शब्द पर आश्रित है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक की सारी जगहों के निवासियों को 'हिंदू' कहने लगे। आगे चलकर इसी आधार पर इस 'हिंदु' देश में बोली जाने वाली एक प्रसिद्ध बोली 'हिंदी' के नाम से विख्यात हुई। 'हिंदी' शब्द का प्रयोग अमीर खुसरो ने भी किया। अमीर खुसरो तुर्क थे, लेकिन वे भारत में पैदा हुए थे। मध्यकालीन अपभ्रंशों से जो भी आधुनिक भाषाएं विकसित हो रही थीं, बहुत दिनों तक उनका कोई एक नाम स्थिर नहीं हो पाया था। तब सभी क्षेत्रों में उन्हें अलग–अलग अर्थों में 'भाषा' ही कहा जाता था।

अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रांतिकाल कहा जा सकता है। हिंदी का स्वरूप शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आसपास इसकी स्वतंत्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था। कुल मिलाकर हिंदी भाषा के नामकरण के प्रश्न पर विचार करें तो चाहे 'हिंदी' नाम देने का श्रेय भले ही बाहरी आगंतुकों का हो लेकिन आज यह न केवल हिंदी भाषा बल्कि कई भारतीय भाषा समूहों के लिए प्रयुक्त होता है।

भारतीय प्राचीन आर्य भाषाओं संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी हिंदी भाषा आज संपूर्ण भारत पर अधिकार स्थापित कर चुकी है। अनेक विकसित आधुनिक भारतीय भाषाओं में हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वसुलभ है।

पश्चिमी हिंदी की पांच मुख्य बोलियां हैं –खड़ी बोली, बांगरू, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। दिल्ली और उसके पूर्व तथा उत्तर–पूर्व के समीपवर्ती जिलों की भाषा खड़ी बोली है। इस बोली को मुसलमान 'हिंदी' या 'हिंदवी' कहते थे। हिंदी के लिए 'खड़ी बोली' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम लल्लूलाल जी ने अपने 'प्रेम–सागर' की भूमिका में किया है। इसी का परिष्कृत रूप राष्ट्र–भाषा 'हिंदी' कहलाता है। खड़ी बोली के अकारांत शब्द ब्रजभाषा में आकारांत या ओकारांत हो जाते हैं।

टिप्पणी

जिस तरह पश्चिमी हिंदी की जननी शौरसेनी – प्राकृत है, उसी तरह पूर्वी हिंदी का उद्भव अर्द्धमागधी से है। यह उस प्रदेश की भाषा है, जहां प्राचीन काल में कोसल जनपद था। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी ही हिंदी कहलाने की अधिकारिणी है, क्योंकि मूलतः 'हिंदी' शब्द इसी के लिए प्रयुक्त होता रहा है। अवध प्रांत के आधार पर अवधी का नामकरण हुआ। प्राचीन काल में इसका केंद्र अयोध्या नगर था, किंतु अब लखनऊ अवधी का केंद्र है क्योंकि अवधी का क्षेत्र कुछ पश्चिम को हट गया है। ब्रजभाषा के उपरांत जिस प्राचीन भाषा को साहित्यिक भाषा का गौरव प्राप्त हुआ, वह अवधी है।

भोजपुरी मुख्य रूप से पश्चिम बिहार, पूर्वी–उत्तर प्रदेश ओर झारखंड के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यवहारिक रूप से भोजपुरी हिंदी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिए मुख्यतः संस्कृत एवं हिंदी पर निर्भर है। कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं।

'मैथिली' नाम मिथलांचल क्षेत्र के नाम 'मिथिला' से संबद्ध है। 'मिथिला' शब्द भारतीय साहित्य में बहुत पहले से है। मैथिली मुख्य रूप से भारत में बिहार के दरभंगा, मधुबनी, समस्तीपुर, पूर्णिया आदि के क्षेत्रों तथा नेपाल के तराई के ईलाकों में बोली जाने वाली भाषा है। यह प्राचीन भाषा हिंदी आर्य परिवार की सदस्य है। राजस्थान प्रांत में बोली जाने वाली भाषा को राजस्थानी कहते हैं। इसे अपभ्रंश की 'जेठी बेटी' की संज्ञा दी गई है, क्योंकि अपभ्रंश की जितनी अधिक विशेषताएं राजस्थानी में हैं उतनी अन्य किसी आधुनिक बोली में नहीं। इसके अतिरिक्त कई अन्य बोलियां आज भारतीय प्रांतों की अलग पहचान बनाती हैं।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **निधि** : किसी वस्तु का आधार या आश्रयस्थान, खजाना, किसी विशेष कार्य या उद्देश्य से अलग रखा या संचित किया हुआ धन।
- **वियोगावस्था** : अलगाव की स्थिति, किसी से विरह, छुटकारा।
- **अनुशीलन** : नियमित अध्ययन, चिंतन तथा गंभीर अभ्यास।
- **संप्रदाय** : किसी मत के अनुयायियों का समूह, विशेष धार्मिक मत।
- **पुष्टि** : जांच करना, किसी की सत्यता परिलक्षित करना।
- **बांगर** : वह स्थान (भूमि) जो ऊबड़–खाबड़ व ऊंचा–नीचा होता है।
- **किरात** : तिब्बती चीनी परिवार की एक भाषा।
- **एकरूपता** : एक जैसे गुणों (बातों/रूपों) का होना।

3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. भारोपीय भाषा
2. पहला

टिप्पणी

3. गलत
4. सही
5. शौरसेनी
6. अपभ्रंश
7. सही
8. सही
9. महाभाष्य
10. ईसा की तीसरी शताब्दी
11. अवहट्ट
12. सही
13. गलत
14. सही
15. सिंधु नदी
16. भारतीय आर्य भाषा
17. सही
18. गलत
19. ग्रियर्सन
20. खड़ी बोली
21. गलत
22. सही

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारोपीय भाषा परिवार के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारोपीय भाषा परिवार की मुख्य विशेषताएं लिखिए।
3. 'हिंदी भाषा के विकास का आदि काल' पर संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
4. साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली के विकास पर एक निबंध लिखिए।
5. अवहट्ट भाषा की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
6. अपभ्रंश के कुछ प्रमुख रूप और अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं लिखिए।
7. हिंदी भाषा के नामकरण के प्रश्न पर प्रकाश डालिए।
8. राजस्थानी हिंदी और उनकी प्रमुख बोलियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारोपीय भाषा परिवार के नामकरण, महत्व एवं विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. मूल भारोपीय ध्वनियों पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
3. हिंदी भाषा के उद्भव एवं विकास के विभिन्न चरणों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
4. अपभ्रंश एवं अपभ्रंश की बोलियों के आधुनिक भाषाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन कीजिए।
5. अवहट्ट और पुरानी हिंदी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
6. हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण और सामान्य परिचय पर प्रकाश डालिए।

3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, *भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिंदी भाषा,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
2. डॉ. नरेश मिश्र, *भाषा और भाषा विज्ञान,* अमर प्रकाशन, लोनी, गाजियाबाद।
3. डॉ. हरीश शर्मा, *भाषा विज्ञान की रूपरेखा,* अमित प्रकाशन गाजियाबाद।
4. श्यामचंद्र कपूर, *व्यावहारिक हिंदी व्याकरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
5. डॉ. सुरेशचंद्र निर्मल, *भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा,* सरन प्रकाशन मंदिर, मेरठ।
6. आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा, डॉ. रामदेव त्रिपाठी, *हिंदी भाषा का विकास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

टिप्पणी

इकाई 4 खड़ी बोली का उद्‌भव और विकास

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 खड़ी बोली का उद्‌भव और विकास
  4.2.1 खड़ी बोली का उद्‌भव
  4.2.2 खड़ी बोली का विकास
4.3 फोर्ट विलियम कॉलेज और खड़ी बोली
4.4 भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप का प्रश्न
  4.4.1 राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (1823–1895 ई.)
  4.4.2 राजा लक्ष्मण सिंह (1826–1896 ई.)
  4.4.3 भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1884 ई.)
  4.4.4 अयोध्या प्रसाद खत्री (1857–1905)
  4.4.5 श्री बालकृष्ण भट्‌ट (1844–1914 ई.)
4.5 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां और भाषा के मानकीकरण का प्रश्न
  4.5.1 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां
  4.5.2 भाषा का मानकीकरण
4.6 सारांश
4.7 मुख्य शब्दावली
4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

प्रत्येक मनुष्य की बोलचाल की भाषा अपनी मातृभाषा होती है परंतु जब साहित्य रचना में भाषा प्रयोग की बात आती है तो सभी भाषाविद् एकमत नहीं हो पाते। विद्वानों के आपसी मतभेदों के चलते विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। खड़ी बोली के उद्‌भव और विकास के संदर्भ में भी यही स्थिति उत्पन्न हुई। खड़ी बोली के विकास का इतिहास बड़ा ही संघर्षपूर्ण एवं रोचक है। खड़ी बोली हिंदी को जन–जन तक पहुंचाने के लिए एक वर्ग संघर्षरत था तो दूसरा वर्ग उर्दू को सरकारी भाषा बनाना चाहता था। भाषा प्रयोग का मामला तब दो समुदायों के बीच के वैचारिक घमासान का प्लेटफार्म बन गया। इस प्रयास में खड़ी बोली का अरबी–फारसीमय रूप भी सामने आया। तत्कालीन बुद्धिजीवियों, रचनाकारों और समाज सुधारकों ने साहित्य में भाषा–प्रयोग और मानकीकरण के मुद्दे पर जमकर संघर्ष किया। कुछ समुदाय अपने लाभ के लिए भी इस भाषायी आंदोलन में कूद पड़े। ईसाई समुदाय इसमें प्रमुख था। खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग करते हुए ईसाई धर्म प्रचारकों ने आम जनता में अपने मतों का प्रचार–प्रसार किया। उन्होंने बाइबिल समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद भी विशुद्ध हिंदी में करवाए। इससे प्रत्यक्ष रूप से समुदाय विशेष अवश्य लाभान्वित हुआ हो परंतु परोक्ष रूप से भाषा के विकास का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

टिप्पणी

खड़ी बोली का विरोध करने वालों में गार्सा द तासी प्रमुख थे। वे स्पष्ट रूप से हिंदी को गंवारों की भाषा सिद्ध करने में लगे हुए थे। इधर भारतीय भाषा के समर्थकों ने हिंदी में लेखन कार्य जारी रखा तथा हिंदी की अनिवार्यता को सरकारी विभागों के पुरोधाओं तक पहुंचाया। राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिंदी गद्य भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी, जिसका पूर्ण विकास भारतेंदु युग में हुआ।

भारतेंदु युग में भी यह भाषा–युद्ध चलता रहा, क्योंकि इस युग के साहित्यकारों का दृष्टिकोण बहिर्मुखी था तथा उनमें सामाजिक चेतना उद्बुद्ध थी। इस समय गद्य के विविध रूपों– उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना और निबंध साहित्य का सूत्रपात हुआ, उसमें नवीन शैलियों और कला रूपों को गढ़ा गया। इस युग के रचनाकारों ने ब्रज भाषा, खड़ी बोली, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया। भाषा संबंधी विवाद का प्रतिनिधित्व युगीन पत्र–पत्रिकाओं ने जमकर किया। इसका परिणाम यह रहा कि खड़ी बोली को भाषायी स्थायित्व मिलने लगा। भारतेंदु ने गद्य की भाषा को परिमार्जित करके हिंदी साहित्य को मधुर भाषा प्रदान की। उनके भाषा संस्कार की सभी ने खूब सराहना की। इस समय हिंदी बोलने वाली जनता के सम्मुख खड़ी बोली गद्य का साहित्यिक रूप था और भाषा के स्वरूप का प्रश्न अब खत्म हो गया था। इस युग में हास्य–व्यंग्य प्रधान रचनाएं मिलती हैं जो भाषा के विकास के अगले चरण 'शैली' की ओर संकेत देती हैं। इसके बाद द्विवेदी युग से खड़ी बोली गद्य के परिमार्जन के प्रयास लगातार चलते रहे और हिंदी भाषा अनेक भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं को स्वयं में समाहित करती हुई निरंतर विकसित होती चली गई।

इस इकाई में खड़ी बोली के उद्भव एवं विकास के विभिन्न सोपानों का वर्णन किया जा रहा है, जिसमें भाषा के प्रारंभिक विकास से लेकर हिंदी भाषा के मानकीकरण तथा वर्तमान शैलियों तक का विश्लेषण किया जा रहा है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- खड़ी बोली के उद्भव एवं विकास की प्रक्रिया को जान पाएंगे;
- खड़ी बोली गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप निर्धारण के घटनाक्रमों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- भाषायी संघर्ष का नेतृत्व करने वाले विभिन्न विद्वानों के मतों से अवगत हो पाएंगे;
- हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियों और भाषा के मानकीकरण संबंधी प्रश्नों का समाधान कर पाएंगे।

4.2 खड़ी बोली का उद्भव और विकास

टिप्पणी

4.2.1 खड़ी बोली का उद्भव

रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है। अंग्रेजों के भारत आगमन और शिक्षा के प्रसार के साथ खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ। खड़ी बोली साहित्य की सूचना तेरहवीं शताब्दी में मिलती है। यद्यपि इनसे पहले भी इसके पूर्व रूप के कुछ लक्षण प्राप्त होते हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा गद्य के दर्शन होते हैं, किंतु खड़ी बोली के गद्य के भी कुछ पुराने उदाहरण विद्वानों ने खोज निकाले हैं। नाथ–सिद्धों और निरंजनी संप्रदाय के साधुओं से प्राप्त कई रचनाओं में खड़ी बोली गद्य के प्रारंभिक रूप के मूल्यांकन का प्रयास हुआ है। इस दृष्टि से कतिपय विद्वान गोरखनाथ के 'सिष्ट प्रमाण' जैसे ग्रंथों में गद्य के प्रारंभिक रूप को स्वीकार करते हैं। 'महादेव गोरखपुष्टि' 'अभै मात्रा जोग' आदि ग्रंथों में खड़ी बोली के शब्दों और शैली को देखा जा सकता है। सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा गद्य की रचनाएं ही उपलब्ध होती हैं। तदनंतर संवत 1768 में लिखा हुआ रामप्रसाद निरंजनी का भाषा योग वाशिष्ठ ग्रंथ प्राप्त होता है, जिसकी भाषा 'साफ–सुथरी' खड़ी बोली है। इसकी भाषा को देखकर शुक्ल जी इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल से 62 वर्ष पहले ही खड़ी बोली का गद्य अत्यधिक पुष्ट एवं परिमार्जित था। इसके पश्चात सन् 1766 ई. में दौलतराम जैन ने रविषेणाचार्य कृत 'पद्मपुराण' का भाषानुवाद प्रस्तुत किया। इसकी भाषा का नमूना इस प्रकार है–'कैसे हैं श्रीराम, लक्ष्मी कर आलिङ्गित हैं, हृदय जिनका और प्रफुल्लित है। मुख रूपी कमल जिनका महापुण्याधिकारी है, महाबुद्धिमान है–ऐसे जो श्री रामचंद्र उनका चरित्र भी श्री गदाधर देव ही किंचित् मात्र कहने को समर्थ है।

इस विवरण से स्पष्ट है कि खड़ी बोली का गद्य समय–समय पर स्वाभाविक रूप से जनता के मध्य विकसित होता रहा है। यह कहना समीचीन नहीं होगा कि मुसलमानों के अथवा अंग्रेजों के आगमन से उसका विकास हुआ। यह बात ठीक है कि मुसलमानों एवं अंग्रेजों के आने से जो परिस्थितियां बनीं उनमें खड़ी बोली को निरंतर महत्व मिलता गया। किंतु खड़ी बोली का गद्य स्वाभाविक रूप से विकसित हुआ है। फिर भी खड़ी बोली के गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज ईसाई मिशनरियों, प्रेस एवं समाचार–पत्रों का भी बहुमूल्य योगदान रहा है।

'खड़ी बोली' दिल्ली–मेरठ के आसपास बोली जाती है। इस बोली का क्षेत्र पुराना 'कुरु' जनपद है, इसी आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इस बोली को 'कौरवी' संज्ञा से अभिहित किया। इस बोली को हिंदुस्तानी, सरहिंदी, वर्नाक्युलर आदि नामों से भी संबोधित किया गया है। 'खड़ी' नामकरण के पीछे कई मत प्रचलित हैं–

1. इस बोली के साहित्यिक प्रयोग में आने पर विदेशी शब्दों को बहिष्कृत कर इसे शुद्ध बनाया गया अर्थात खरी। यह 'खरी' शब्द कालांतर में खड़ी बना और बोली 'खड़ी बोली' कहलाई।

टिप्पणी

2. अपने वर्ग को दूसरी बोलियों–ब्रजभाषा के साहित्यिक प्रयोग से च्युत हो जाने के कारण वे 'पड़ी' कहलाई अर्थात पड़ गई और जो साहित्यिक प्रयोग में पुनः आवश्यकतानुरूप स्थिति से खड़ी हुई अर्थात कौरवी, वह 'खड़ी बोली' कहलाई। डॉ. चटर्जी इस मत के समर्थक हैं।
3. कामता प्रसाद गुरु के अनुसार– 'खड़ी' का अर्थ 'कर्कश' है। ब्रजभाषा की अपेक्षा इसमें माधुर्य का अभाव है।
4. किशोरीदास वाजपेयी की दृष्टि में 'खड़ी बोली' में आकारांतता की खड़ी 'पाई' ने इसे यह नाम दिया।
5. गिलक्रिस्ट 'खड़ी' का अर्थ मानक या परिनिष्ठित स्वीकार करते हैं।

खड़ी बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। देहरादून के मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, दिल्ली, गाजियाबाद, बिजनौर, रामपुर एवं मुरादाबाद में यह बोली जाती है। इसमें लोक साहित्य की मात्रा प्रचुर है।

4.2.2 खड़ी बोली का विकास

हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास में अंग्रेजों के योग को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में शासन सूत्र आने पर राज्य व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालित होने के लिए यह अनिवार्य था कि शासितों से संपर्क स्थापित किया जाए। इस संपर्क के लिए किसी–न–किसी भाषा का माध्यम आवश्यक था। अंग्रेजों के सामने तीन प्रमुख भाषाएं थीं जिनके माध्यम से वे कार्य संचालन करते–1. अंग्रेजी भाषा 2. संस्कृत, अरबी व फारसी भाषाएं 3. लोक भाषाएं।

यह तो निर्विवाद था कि कंपनी अंग्रेजी भाषा का आधिकारिक प्रचार करना चाहती थी, किंतु सामान्य जनता इससे सर्वथा अपरिचित थी। संस्कृत का प्रचार हिंदुओं के उच्च वर्ग में था। वह सांस्कृतिक भाषा थी। उसमें नवीन ज्ञान–विज्ञान की विशिष्ट शब्दावली का प्रचलन न था। अरबी और फारसी का प्रयोग मुगल शासनकाल में कचहरियों में अवश्य होता था, शासक वर्ग भी इससे परिचित था, किंतु जनसाधारण में इसका भी अधिक प्रचार न था। इन कारणों से कंपनी की भाषा नीति बहुत दिनों तक अस्थिर रही। स्वयं अंग्रेजों में ही इस नीति को लेकर दो पक्ष हो गए थे। एक ओर अंग्रेजी के समर्थक उसके प्रचार–प्रसार का अथक प्रयत्न करते रहे। दूसरी ओर लोक भाषाओं के समर्थक उनकी अनिवार्यता का अनुभव करते हुए उनके प्रचार पर बल देते रहे।

सन् 1826 ई. में अंग्रेजी के समर्थक डेविड हेअर ने राजा राममोहन राय की सहायता से कलकत्ते में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की। 1830 ई. में एलेक्जेण्डर डफ ने कलकत्ते में ही एक कॉलेज की नींव डाली। 1832 ई. के आस–पास कंपनी के अंग्रेज कर्मचारियों ने स्पष्टतया अंग्रेजी का प्रचार–प्रसार करना प्रारंभ किया। 1834 ई. में लार्ड मेकाले के आने पर अंग्रेजी प्रचार को बहुत बल मिला। 1844 ई. में लार्ड हार्डिंग ने अंग्रेजी पढ़े लोगों को सरकारी नौकरियां देने की घोषणा की। इस प्रकार 1853 ई. तक अंग्रेजी का प्रचार तीव्रता से होने लगा।

दूसरी ओर देशी भाषाओं के समर्थकों ने उनके प्रचार का कार्य भी तत्परतापूर्वक किया। वारेन हेस्टिंग्ज़ (1774–1775 ई.) और जॉनेथन डंकन (1794–1811 ई.) ने मिशनरियों के आग्रह पर हिंदुओं और मुसलमानों को क्रमशः संस्कृत व फारसी के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबंध किया। किंतु इन भाषाओं का जनसाधारण से सीधा संबंध न था। फलतः इनके स्थान पर लोक भाषाओं का प्रचलन अनिवार्य माना गया। संक्षेप में कंपनी की भाषा नीति इस प्रकार थी–

कंपनी अंग्रेजी का अत्यधिक प्रचार करके उसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहती थी। अदालतों में फारसी के प्रचलन तथा दिल्ली दरबार में उसकी मान्यता के कारण कंपनी को फारसी भी अपनानी पड़ी। अन्ततः फारसी की अव्यवहारिकता के कारण 1837 ई. में उसके स्थान पर लोक भाषाओं की प्रतिष्ठा करनी पड़ी। अब विचारणीय यह है कि कंपनी ने लोक भाषा के जिस रूप को मान्यता दी, वह वर्तमान हिंदी खड़ी बोली से भिन्न था या अभिन्न। कंपनी ने लोकभाषा के जिस रूप को मान्यता दी वह उन लोगों की हिंदुस्तानी थी जो उच्च वर्ग के थे, जिनका संबंध राजदरबारों से था, जो अरबी–फारसी के ज्ञाता थे। अतएव अंग्रेजों द्वारा मान्य भाषा यथार्थ अर्थों में लोकभाषा न थी। वह बादशाह शाहजहां के बसाए हुए शाहजहांनाबाद से प्रचारित हुई थी। उसमें अरबी–फारसी के अनेक अप्रचलित शब्दों की भरमार थी। वह 'दिल्ली की लाड़ली थी और शाहों की गोद में पली थी। इसके स्वरूप का परिचय निम्न उद्धरण से हो जाएगा–

"हुकुम ईसतहार ईअह के"

रोज सोमार तारीख 25 माह जुलाई सन् 1796 अंग्रेजी के एक लकरी गैरह माल असवाब मीसतर आदमईसटन साहेब मोत वफा मौजे वकहा जीला सारन के नीलाम होगा।

जनसाधारण में प्रचलित खड़ी बोली का रूप इससे भिन्न था। उसमें अरबी–फारसी के उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया जाता था जो लोकमान्य थे। कंपनी के प्रभाव से अलग हिंदुस्तानी (लगभग 200 वर्ष प्राचीन) के रूप का उदाहरण देखिए–

स्वस्ति श्री सर्वोपमा योग्य फलाने के राम राम। आगे हमको कागद लिखी थी सो हम पाया। सभ हकीकत पाइ।

उपर्युक्त जनसाधारण में प्रचलित खड़ी बोली को 'हिंदवी या हिंदुई' भी कहा गया है। इसे हम आधुनिक हिंदी के अर्थ में स्वीकार कर सकते हैं। दक्खिनी हिंदी का रूप भी इसके समीप है।

सारांश यह है कि ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अपनाई जाने वाली खड़ी बोली जनसाधारण में प्रचलित खड़ी बोली से सर्वथा भिन्न थी। 'रानी केतकी की कहानी' में प्रयुक्त खड़ी बोली से भी वह बहुत दूर पड़ती थी। यह शाहजहांनाबाद से चली थी। यह वास्तविक अर्थ में हिंदी न होकर उर्दू थी। इसे हिंदी, उर्दू, उर्दूई, रेख्ता, हिंदुस्तानी आदि नामों से पुकारा जाता था। इसके विपरीत जनसाधारण में प्रचलित खड़ी बोली को 'हिंदुई', 'हिंदी' आदि नामों से अभिहित किया जाता था।

ईस्ट इंडिया कंपनी की लिपि संबंधी नीति भी पर्याप्त अस्थिर रही है। जॉन गिलक्रिस्ट महोदय 'रोमन' लिपि के पक्षपाती थी। वे हिंदुस्तानी के लिए रोमन लिपि का

टिप्पणी

टिप्पणी

ही प्रयोग समीचीन मानते थे। उन्होंने 'फारसी' व 'नागरी' दोनों लिपियों को त्रुटिपूर्ण बताया। रोमन के बाद वे फारसी का समर्थन करते थे। वस्तुतः रोमन व फारसी दोनों लिपियां भारतीय ध्वनियों को व्यक्त करने में समर्थ न थीं। अतः बाध्य होकर कंपनी को नागरी लिपि अपनानी पड़ी। 1837 ई. तक साथ–साथ फारसी भी चलती रही। सन् 1840 ई. के लगभग पुनः फारसी लिपि को मान्यता दी गई और 1850 ई. तक फारसी लिपि का ही प्रचलन हो गया।

4.3 फोर्ट विलियम कॉलेज और खड़ी बोली

1800 ई. में अंग्रेजों ने कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की और संस्कृत, अरबी, फारसी की शिक्षा के साथ–साथ हिंदुस्तानी आदि में पुस्तकें लिखाने का कार्य प्रारंभ किया। गिलक्रिस्ट हिंदुस्तानी के अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। उन्होंने हिंदुस्तानी के अंतर्गत उर्दू को विशेष महत्व दिया किंतु बाद में विलियम प्राइस ने उर्दू के स्थान पर हिंदी को प्रमुखता दी और इस पर हिंदी को महत्व मिला। फलतः भाषा (हिंदी) में पुस्तकें तैयार करने की योजनाएं बनीं।

वस्तुतः हिंदी खड़ी बोली के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस कॉलेज की भाषा–नीति ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा नीति से अभिन्न रही है। सन् 1800 ई. में मार्क्विस वेलेजली ने इस कॉलेज की स्थापना की। स्थापना का दृष्टिकोण राजनैतिक था। कॉलेज में ईस्ट इंडिया कंपनी के सिविल कर्मचारी शिक्षा प्राप्त करते थे। कॉलेज में विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। अरबी, फारसी, संस्कृत, हिंदुस्तानी, बांग्ला, तेलुगु, मराठी, तमिल, कन्नड़, शरअ मुहम्मदी, हिंदू कानून, नीति–विज्ञान, न्याय पद्धति, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंग्रेजी कानून, फोर्ट सेंट जॉर्ज तथा बम्बई के गवर्नरों द्वारा अंग्रेजी राज्य संचालन के लिए बनाए गए नियम, अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, यूरोप की आधुनिक भाषाएं, प्रकृति विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान आदि अनेक विषयों की उचित शिक्षा की व्यवस्था कॉलेज में की गई थी। 18 अगस्त सन् 1800 ई. के पत्रानुसार डॉ. जॉन बौर्थविक् गिलक्रिस्ट को हिंदुस्तानी भाषा का प्रोफेसर बनाया गया। जॉन गिलक्रिस्ट महोदय ने छोटे–बड़े उन्नीस ग्रंथों की रचना की। कॉलेज की भाषा–नीति समझाने के लिए इनके कुछ ग्रंथों की भूमिकाएं द्रष्टव्य हैं। इनके द्वारा संपादित 'दि ऑरिएंटल फैल्यूलिस्ट' की भूमिका में लिखा है–

'I very much regret, that along with the Brij-Bhasha the Khuree-Bolee was omitted, since this particular idiom or style of the Hindoostanee, would have proved highly useful to the students of that language. The real Khuree Bolee is distinguished by the general observance of Hindoostanee Grammer and nearly a total exclusion of Arabic and Persian Words.

उपर्युक्त कथन से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम तो यह कि उस समय खड़ी बोली और हिंदुस्तानी में भेद था। हिंदुस्तानी उर्दू से अभिन्न थी। दूसरे यह कि अरबी–फारसी शब्दों से रहित खड़ी बोली का एक रूप फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पहले से चला आ रहा था। गिलक्रिस्ट महोदय ने अपनी प्रथम कृति 'ए डिक्शनरी ऑव इंगलिश एंड

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को .....काल की संज्ञा दी है।
2. 1834 ई. में लार्ड .....के आने पर अंग्रेजी प्रचार को बहुत बल मिला।

सही / गलत बताइए–

3. गिलक्रिस्ट 'खड़ी' का अर्थ अमानक और अपरिनिष्ठित स्वीकार करते हैं।
4. 1844 ई. में अंग्रेजी पढ़े लोगों को सरकारी नौकरियां देने की घोषणा लार्ड हार्डिंग ने की थी।

टिप्पणी

हिंदुस्तानी' की विस्तृत भूमिका में भी अपनी भाषा नीति प्रकट की है। इस बृहत कोश में हिंदुस्तानी कहे जाने वाले शब्द अधिकांशतः अरबी और फारसी भाषाओं से लिए गए हैं। कोश में लिपि भी फारसी ही रखी गई है। गिलक्रिस्ट महोदय की एक अन्य कृति 'ए ग्रामार ऑव दि हिंदुस्तानी लैंग्वेज' में व्याकरण के नियम तो 'हिंदवी' के आधार पर निर्धारित किए गए हैं, किंतु छंद, लिपि, उद्धरण आदि सभी कुछ उर्दू के आधार पर हैं। गिलक्रिस्ट महोदय की इन कृतियों के अध्ययन से प्रकट होता है कि 'हिंदुस्तानी' से उनका तात्पर्य उस भाषा से था जिसका व्याकरण तो उन्हीं के शब्दों में 'हिंदवी' या 'ब्रजभाषा' से लिया गया, किंतु संज्ञा शब्द अरबी–फारसी से लिए गए थे। उन्होंने 'हिंदी' उर्दू, उर्दूवी, रेख्ता और हिंदुस्तानी को समानार्थी माना है। 'हिंदी' का अर्थ उनकी दृष्टि में 'हिंद' की थी। 'हिंदवी' को तो वे केवल हिंदुओं की भाषा मानते थे। गिलक्रिस्ट ने खड़ी बोली की तीन शैलियां निर्धारित की– 1. दरबारी या फारसी शैली 2. हिंदुस्तानी शैली 3. हिंदवी शैली। इनमें फारसी शैली सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न थी। हिंदवी शैली को वे गंवारू समझते थे। हिंदुस्तानी शैली उन्हें सर्वप्रिय थी। इसे वे 'दि ग्रैंड पाप्युलर स्पीच ऑव हिंदुस्तान' कहते थे।

गिलक्रिस्ट महोदय 'हिंदुस्तानी' (अरबी फारसी मिश्रित) के समर्थक होने पर भी 'हिंदी' की पूर्ण अवहेलना न कर सके। अतः उन्हें सन् 1802 ई. में लल्लूलाल जी की स्थायी नियुक्ति करनी पड़ी थी। जॉन गिलक्रिस्ट साहब द्वारा पोषित हिंदुस्तानी न तो सिपाहियों की समझ में आती थी और न जनसाधारण के लिए ही बोधगम्य थी। फलतः कॉलेज की भाषा नीति में परिवर्तन अनिवार्य हो गया। 25 जुलाई सन् 1815 ई. में वार्षिकोत्सव के समय ऑनरेबुल एन.बी. एडमॉन्सटन ने इस आवश्यकता की ओर अध्यापकों तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित किया। 1823 ई. में विलियम प्राइस महोदय हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके समय में कॉलेज की भाषा नीति में महान अंतर लक्षित होता है। उन्होंने हिंदुस्तानी के स्थान पर 'हिंदी खड़ी बोली' (आधुनिक अर्थ में) को मान्यता दी। उनके समय में ही कॉलेज कौंसिल के मंत्री रडेल साहब ने सरकारी मंत्री सी. लशिंगटन को एक पत्र लिखा था। इस पत्र से कॉलेज की परिवर्तित भाषा नीति का ज्ञान भली–भांति हो जाता है। रडेल महोदय ने लिखा है–

"फारसी और अरबी से घनिष्ठ संबंध होने के कारण यह स्पष्ट है कि प्रत्येक विद्यार्थी कॉलेज में विद्याध्ययन की अवधि कम करने की दृष्टि से फारसी और हिंदुस्तानी भाषाएं ले लेते हैं। फारसी के साधारण ज्ञान से वे शीघ्र ही हिंदुस्तानी में आवश्यक दक्षता प्राप्त करने योग्य हो जाते हैं। किंतु भारत की कम से कम तीन–चौथाई जनता के लिए उनकी अरबी–फारसी शब्दावली उतनी ही दुरुह सिद्ध होती है जितनी स्वयं उनके लिए संस्कृत, जो समस्त हिंदू–बोलियों की जननी है।

28 अक्टूबर, 1824 ई. को गवर्नर जनरल ने कॉलेज के नव–विधान को मान्यता दी। इस नव–विधान के साथ कॉलेज की भाषा नीति भी बदली। कॉलेज में विलियम प्राइस महोदय की नीति ही अब प्रधान हो गई। जब कॉलेज ने अपना नव–विधान गवर्नर जनरल

टिप्पणी

के पास स्वीकृति के लिए भेजा था तब साथ में प्राइस साहब का एक पत्र भी भेजा गया था। इस पत्र में उन्होंने लिखा था–

"हिंदी और हिंदुस्तानी में सबसे बड़ा अंतर शब्दों का है। हिंदी के लगभग सभी शब्द संस्कृत के हैं। हिंदुस्तानी के अधिकांश शब्द अरबी और फारसी के हैं। हिंदी के संबंध में एक और महत्वपूर्ण विषय यह है कि वह नागरी अक्षरों में लिखी जानी चाहिए। नई लिपि और नए शब्द सीखने में विद्यार्थियों को कठिनाई होगी किंतु इससे उनके ज्ञान की वास्तविक वृद्धि होगी। उनका हिंदुस्तानी ज्ञान थोड़े परिवर्तन के साथ फारसी–ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इससे वे न तो भाषा और न देश के विचारों के साथ ही परिचित हो पाते हैं।"

संक्षेप में, कॉलेज की भाषा नीति के दो मोड़ हैं। सन् 1800 से लेकर 1815 ई. तक जॉन गिलक्रिस्ट द्वारा निर्धारित 'हिंदुस्तानी' ही कॉलेज की मान्य भाषा रही। 1815 ई. के बाद 'हिंदी' (आधुनिक अर्थ में) के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया गया। 1824 ई. में कॉलेज के नवविधान के साथ भाषा नीति में परिवर्तन हुआ। विलियम प्राइस के विचार मान्य हुए। अधिकारियों ने हिंदी का महत्व समझकर उसे कॉलेज के पाठ्यक्रम में स्थान दिया। दिसंबर 1831 ई. में प्राइस साहब पद त्यागकर विलायत चले गए।

फोर्ट विलियम कॉलेज में विविध हिंदी पुस्तकें लिखी गईं। इसके अंतर्गत लल्लूलाल ने 'प्रेम सागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। लल्लूलाल (सन् 1756–1825) ने लगभग 11 कृतियों की रचना की पर हिंदी गद्य की दृष्टि से 'प्रेमसागर' का विशेष महत्व है। इसकी भाषा का उद्धरण प्रस्तुत है–"महाराज! जिस काल बाला बारह वर्ष की हुई तो उसके मुखचंद्र की ज्योति देख पूर्णमासी का चंद्रमा छवि हीन हुआ, बालों की श्यामता के आगे अमावस्या की अंधेरी रात फीकी लगने लगी, उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटप गई, भौंह की बेकाई निरख धनुष धकधकाने लगा, आंखों की बड़ाई चंचलई देख मृग, मीन, खंजन खिसाय रहे।" सदल मिश्र (1756–1828 ई.) ने 'चंद्रावती' और 'रामचरित्र' भी लिखे हैं पर उनकी कीर्ति का आधार 'नासिकेतोपाख्यान' ही है। इसकी भाषा संस्कृत गर्भित है और उस पर ब्रज और भोजपुरी का रंग चढ़ा हुआ है।

फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर भी खड़ी बोली में गद्य रचना होती रही। इस प्रकार आश्रय में रहे बिना जो लोग इस प्रकार खड़ी बोली के गद्य की श्रीवृद्धि में लगे थे उनमें 'मुंशी सदासुखलाल (1746–1824) तथा इंशाअल्ला खां उल्लेखनीय हैं। सदासुखलाल ने 'सुखसागर' की रचना की। उनकी भाषा कथावाचकों की भाषा से मिलती–जुलती है जैसे, 'जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए।' उनकी तुलना में इंशाअल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखकर प्रौढ़ भाषा का उदाहरण प्रस्तुत किया।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. अंग्रेजों द्वारा..... ई. में कलकत्ते में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई थी।
6. 28 अक्टूबर, 1824 ई. को.....ने फोर्ट विलियम कॉलेज ने नव–विधान को मान्यता दी थी।

सही/गलत बताइए–

7. हिंदी खड़ी बोली क विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
8. 'ए ग्रामर ऑव हिंदुस्तानी लैंग्वेज नामक कृति गिलक्राइस्ट की प्रथम कृति है।

4.4 भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप का प्रश्न

टिप्पणी

अनेक भाषाओं के प्रचलन में हिंदी भाषा को प्रचलित करने के मुद्दे पर विभिन्न विद्वान अलग–अलग राय रखते थे। भारतेंदु स्वयं हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाने के कट्टर समर्थक थे परंतु देश की उन्नति के लिए ग्राम भाषाओं की उन्नति की आवश्यकता को वे समझते थे। इस काल में प्रकाशित होने वाली अनेक पत्र–पत्रिकाओं ने इस भाषाई आंदोलन का नेतृत्व किया। इस काल के प्रमुख पत्र 'भारतमित्र' ने लिखा था, "हम लोगों की हिन्दी भाषा है, यद्यपि ये प्राकृत से उत्पन्न हुई है तथापि संस्कृत का अखण्ड भण्डार इसकी समृद्धि वृद्धि करे है और जो इसमें कहीं–कहीं सूरसैनी, मागधी, माथुरी, फारसी, अरबी और अंग्रेजी भी सरल भाव से मिल गई हैं, वो क्या इसको बिगाड़ती हैं? हमारी समझ में तो स्वभाव–सुंदरी हिन्दी को वरन् अलंकृत करती हैं। परंतु ऐसा कहने से यह नहीं समझना कि अब हम अरबी, ईरानी, तुर्की और यूनानी आदि से हिंदी को ढांक दें और मूल में आघात करें। इन सब भाषाओं के शब्द तो वो ही रखने चाहिए जो सब कि इसमें मिल गए हैं।"

संवत् 1860 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदी–उर्दू अध्यापक जान गिलक्रिस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की तो उनके इस प्रयास से उर्दू से हिंदी का स्वतंत्र रूप सामने आया। फोर्ट विलियम कॉलेज का आश्रय पाकर लल्लूलाल, सदल मिश्र ने खड़ी बोली के साहित्य को आगे बढ़ाया। खड़ी बोली हिंदी के इस विकास का लाभ ईसाई धर्मप्रचारकों ने जमकर उठाया। अपने मतों का प्रचार–प्रसार आम जनता में करने के लिए उन्होंने हिंदी भाषा को उपयुक्त माध्यम समझा और वे अपनी इस मुहिम में सफल भी हुए। ईसाई प्रचारकों ने विशुद्ध हिंदी का प्रयोग बाइबिल तथा अन्य पुस्तकों के अनुवाद में भी किया। ईसाई उपदेशक जब हिंदू धर्म की स्थूल और बाहरी बातों को लेकर अपने विचार प्रकट करने लगे तो राजा राममोहन से यह देखा नहीं गया। वे वेदांत और उपनिषदों के ज्ञान के प्रचार के लिए सामने आए। संवत् 1872 में उन्होंने वेदांत सूत्रों के भाष्य का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करवाया और संवत् 1886 में 'बंगदूत' नामक संवाद पत्र का प्रकाशन हिंदी भाषा में किया। कानपुर के रहने वाले पं. जुगलकिशोर ने संवत् 1883 में 'उदंत मार्तंड' नामक एक पत्र निकाला जिसे हिंदी भाषा का पहला समाचार–पत्र कहा जाता है।

इधर राजा राम मोहन राय जैसे शिक्षित और प्रभावशाली सज्जनों के प्रयासों से अंग्रेजी की पढ़ाई के लिए कलकत्ता में हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई जिसमें से लोग अंग्रेजी पढ़–पढ़कर निकलने और सरकारी नौकरियां पाने लगे। देशी भाषा पढ़कर भी कोई शिक्षित हो सकता है, यह विचार उस समय तक लोगों को न था। अंग्रेजी के अलावा किसी भाषा पर ध्यान जाता था तो संस्कृत या अरबी पर। संस्कृत की पाठशालाओं और अरबी के मदरसा को कंपनी की सरकार से थोड़ी–बहुत सहायता मिलती आ रही थी पर धीरे–धीरे वह भी बंद हो गई। कुछ लोगों ने इन प्राचीन भाषाओं की शिक्षा का पक्ष ग्रहण किया था पर मेकाले ने अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का इतने जोरों के साथ समर्थन किया और पूरबी साहित्य के प्रति ऐसी उपेक्षा प्रकट की कि अंत में संवत् 1892 में कंपनी

टिप्पणी

की सरकार ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का प्रस्ताव पास कर दिया और धीरे–धीरे अंग्रेजी के स्कूल खुलने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था हो जाने पर अंग्रेजी सरकार का ध्यान अदालती भाषा की ओर गया। मुगलों के समय में अदालती कार्रवाइयां और दफ्तर के सारे काम फारसी भाषा में होते थे। जब अंग्रेजों का आधिपत्य हुआ तब उन्होंने भी दफ्तरों में वही परंपरा जारी रखी। दफ्तरों की भाषा फारसी रहने तो दी गई, पर उस भाषा और लिपि से जनता के अपरिचित रहने के कारण लोगों को कठिनाई होती थी।

फारसी के अदालती भाषा होने के कारण भी जनता को कठिनाइयां होती थीं इसलिए सरकार ने संवत् 1893 (सन् 1836 ई.) में 'इश्तहारनामे' निकाले कि अदालती सब काम देश की प्रचलित भाषाओं में हुआ करें जिसका एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है–

इश्तहारनामा : बोर्ड सदर

पच्छाँह के सदर बोर्ड के साहबों ने यह ध्यान किया है कि कचहरी के सब काम फारीस जबान में लिखा–पढ़ा होने से सब लोगों का बहुत हर्ज पड़ता है और बहुत कलप होता है, जब कोई अपनी अर्जी अपनी भाषा में लिख के सरकार में दाखिल करने पावे तो बड़ी बात होगी। सबको चैन–आराम होगा। इसलिए हुक्म दिया गया है कि 1244 की कुवार बदी प्रथम से जिसका जो मामला सदर व बोर्ड में हो सो अपना–अपना सवाल अपनी हिंदी की बोली में और फारसी के नागरी अच्छरन में लिखे दाखिल करे कि डाक पर भेजे और सवाल जौन अच्छरन में लिखा हो तौने अच्छरन में और बोली में उस पर हुक्म लिख जाएगा।

मिति 29 जुलाई, सन् 1836 ई.।

इस इश्तहारनामे में स्पष्ट कहा गया है कि बोली 'हिंदी' ही हो, अक्षर नागरी के स्थान पर फारसी भी हो सकते हैं। मुसलमान कार्यालयों में हिंदी के स्थान पर उर्दू भाषा को रखना चाहते थे। एक वर्ष बाद ही अर्थात संवत् 1894 (सन् 1937 ई.) में उर्दू हमारे प्रांत के सब दफ्तरों की भाषा कर दी गई।

सरकार की कृपा से खड़ी बोली का अरबी–फारसीमय रूप लिखने–पढ़ने की अदालती भाषा होकर सबके सामने आ गया। जीविका और मान–मर्यादा की दृष्टि से उर्दू सीखना आवश्यक हो गया। देश भाषा के नाम पर लड़कों को उर्दू ही सिखायी जाने लगी। उर्दू पढ़े–लिखे लोग ही शिक्षित कहलाने लगे। हिंदी की काव्यपरंपरा यद्यपि राजदरबारों के आश्रय में चली चलती थी पर उसके पढ़ने वालों की संख्या भी घटती जा रही थी। इस स्थिति का वर्णन करते हुए स्वर्गीय बाबू बालमुकुंद गुप्त लिखते हैं–

> जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिंदी भाषा हिंदी न रहकर उर्दू बन गई।... हिंदी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी–फूटी चाल पर देवनगारी अक्षरों में लिखी जाती थी।

संवत् 1902 में राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद का ध्यान हिंदी की ओर गया। अतः इधर–उधर दूसरी भाषाओं में समाचार–पत्र निकलते देख उन्होंने उक्त संवत् में उद्योग

टिप्पणी

करके काशी से 'बनारस अखबार' निकलवाया। पर अखबार पढ़ने वाले शिक्षित लोग तो केवल उर्दू जानते थे इसलिए इस पत्र की भाषा भी उर्दू ही रखी गई। यद्यपि अक्षर देवनागरी के थे।

सवंत् 1907 में काशी से एक दूसरा पत्र 'सुधाकर' निकला। इस पत्र की भाषा बहुत कुछ सुधरी हुई थी तथा ठीक हिंदी थी, पर यह पत्र कुछ दिन चला नहीं। इसी समय के लगभग अर्थात 1909 में आगरा में किसी मुंशी सदासुखलाल के प्रबंध और संपादन में 'बुद्धिप्रकाश' निकला जो कई वर्ष तक चलता रहा। समकालीन परिवेश में 'बुद्धिप्रकाश' की भाषा बहुत अच्छी होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अदालती भाषा उर्दू बनाई जाने पर भी विक्रम की बीसवीं शताब्दी के आरंभ के पहले से ही हिंदी खड़ी बोली गद्य की परंपरा हिंदी साहित्य में अच्छी तरह चल पड़ी। उसमें पुस्तकें छपने लगीं, अखबार निकलने लगे। सरकार का ध्यान देशी भाषाओं की शिक्षा की ओर गया तो वह मदरसों एवं शिक्षा संस्थानों में हिंदी भाषा को माध्यम बनाने पर विचार करने लगी। परंतु हिंदी को अदालत से बाहर करने में सफल हुए मुस्लिम समुदाय ने इसका प्रबल विरोध किया। यहां तक कि तंग आकर सरकार को अपना विचार छोड़ना पड़ा।

हिंदी के विरोध की यह चेष्टा बराबर बढ़ती गई। संवत् 1991 के पीछे जब शिक्षा का पक्का प्रबंध होने लगा तब यहां तक कोशिश की गई कि वर्नाक्यूलर स्कूलों में हिंदी की शिक्षा जारी ही न होने पाए। विरोध के नेता थे सर सैयद अहमद साहब जिनका अंग्रेजों के बीच बड़ा मान था। वे हिंदी को एक गंवारी बोली बताकर अंग्रेजों को उर्दू की ओर झुकाने की लगातार चेष्टा करते आ रहे थे। इस प्रांत के हिंदुओं में राजा शिवप्रसाद अंग्रेजों के उसी ढंग के कृपापात्र थे जिस ढंग से सर सैयद अहमद। अतः हिंदी की रक्षा के लिए वे कमर कसकर खड़े हुए। इसमें हिंदी–उर्दू का झगड़ा बीसों वर्ष तक भारतेंदु के समय तक चलता रहा।

'गार्सां द तासी' एक फ्रांसीसी विद्वान थे जो पेरिस में हिंदुस्तानी या उर्दू के अध्यापक थे। उन्होंने संवत् 1896 में 'हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास' लिखा था जिसमें उर्दू के कवियों के साथ हिंदी के भी कुछ विद्वान कवियों का उल्लेख था।

तासी के व्याख्यानों से पता लगता है कि उर्दू के अदालती भाषा नियत हो जाने पर कुछ दिन सीधी भाषा और नागरी अक्षरों में भी कानूनों और सरकारी आज्ञाओं के हिंदी अनुवाद छपते रहे। राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु के समय तक हिंदी–उर्दू का झगड़ा चलता रहा। गार्सां द तासी ने भी फ्रांस में बैठे–बैठे इस झगड़े में योग दिया। जहां जब हिंदी–उर्दू का सवाल उठा तब सर सैयद अहमद, जो अंग्रेजी से मेल–जोल रखने की विद्या में एक ही थे, हिंदी विरोध में और बल लाने के लिए मजहबी नुस्खा भी काम में लाए। अंग्रेजों को सुझाया गया कि हिंदी हिंदुओं की जबान है, जो 'बुतपरस्त' हैं और उर्दू मुसलमानों की जिनके साथ अंग्रेजों का मजहबी रिश्ता है– दोनों 'सामी' या 'पैगंबरी' मत के मानने वाले हैं।

जिस गार्सां द तासी ने सारी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए संवत् 1909 के आसपास हिंदी और उर्दू दोनों का रहना आवश्यक समझा था और कभी कहा था कि–

टिप्पणी

यद्यपि मैं खुद उर्दू का बड़ा भारी पक्षपाती हूं, लेकिन मेरे विचार में हिंदी को विभाषा या बोली कहना उचित नहीं।

वही गार्सां द तासी आगे चलकर, मजहबी कट्टरपन की प्रेरणा से, सर सैयद अहमद की प्रशंसा करते हुए हिंदी के विषय में कहते हैं–

> इस वक्त हिंदी की हैसियत भी एक बोली (डायलेक्ट) की–सी रह गई है, जो हर गांव में अलग–अलग ढंग से बोली जाती है। अतः जिस रूप में वह था उसी रूप में उसे लेना ही पड़ा। भाषा संबंधी विवाद में गद्य की भाषा को लेकर भी खींचतान आरंभ हुई। इसी दौरान राजा लक्ष्मण और राजा शिवप्रसाद मैदान में आए।

बनारस अखबार में हिंदी के नाम से नागरी अक्षरों में उर्दू लिखी जा रही थी। संवत् 1913 में राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए। मुस्लिम विद्वान हिंदी को 'गंवारी' बोली भी कहा करते थे। इस परिस्थिति में राजा शिवप्रसाद को हिंदी की रक्षा के लिए बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हिंदी का सवाल जब आता तब मुसलमान उसे 'मुश्किल जबान' कहकर विरोध करते। राजा साहब को उस समय यही संभव दिखाई दिया कि जहां तक हो सके ठेठ हिंदी का आश्रय लिया जाए जिसमें कुछ फारसी–अरबी के चलते शब्द भी आएं। उस समय साहित्य के कोर्स के लिए पुस्तकें नहीं थीं। राजा साहब स्वयं तो पुस्तकें तैयार करने में लग ही गए, पं. श्रीलाल और पं. वंशीधर आदि अपने कई मित्रों को भी उन्होंने पुस्तकें लिखने में लगाया। राजा साहब ने पाठ्यक्रम में उपयोगी कई कहानियां आदि लिखीं, जैसे राजा भोज का सपना, वीरसिंह का वृत्तांत, आलसियों को कोड़ा इत्यादि।

इधर भारत की देशभाषाओं के अध्ययन की ओर इंग्लैंड के लोगों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। अध्ययनशील और विवेकी लोग जो लोग जो अखंड भारतीय साहित्य परंपरा से परिचित थे हिंदी भाषा के महत्व को समझते थे। इस संदर्भ में अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिंकाट का नाम महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय है। इनका जन्म संवत् 1893 में इंग्लैंड में हुआ। उन्होंने प्रेस के कामों का बहुत अच्छा अनुभव प्राप्त किया और अंत में लंदन की प्रसिद्ध एलन एंड कंपनी (W.H. Allen and Co. 13, Waterloo place, Pall Mall, S.W.) के विशाल छापेखाने के मैनेजर हुए। वहीं वे अपने जीवन के अंतिम दिनों तक शांतिपूर्वक रहकर भारतीय साहित्य और भारतीय जनहित के लिए बराबर उद्योग करते रहे।

संस्कृत की चर्चा फ्रेडरिक पिंकाट लड़कपन से ही सुनते आते थे, इससे उन्होंने बहुत परिश्रम के साथ उसका अध्ययन किया। इसके उपरांत उन्होंने हिंदी और उर्दू का अभ्यास किया। इंग्लैंड में बैठे उन्होंने इन दोनों भाषाओं पर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया कि इनमें लेख और पुस्तकें लिखने और अपने प्रेस में छपाने लगे। यद्यपि उन्होंने उर्दू का भी अच्छा अभ्यास किया था, पर उन्हें इस बात का अच्छी तरह निश्चय हो गया था कि यहां की परंपरागत प्रकृत भाषा हिंदी है, अतः जीवन भर ये उसी की सेवा और हितसाधना में तत्पर रहे।

संवत् 1947 में वे गिलवर्ट एंड रिबिंगटन (Gilbert and Rivington Clerkenwell Londan) नामक विख्यात व्यवसाय कार्यालय में पूर्वीय मंत्री (Orient Adviser and Expert) नियुक्त हुए। उक्त कंपनी की ओर से एक व्यापार–पत्र 'आईन सौदागरी' उर्दू में निकलता था जिसका संपादन पिंकाट साहब करते थे। उन्होंने उसमें कुछ पृष्ठ हिंदी के लिए भी रखे। कहने की आवश्यकता नहीं कि हिंदी के लेख वे ही लिखते थे। लेखों के अतिरिक्त हिंदुस्तान में प्रकाशित होने वाले हिंदी समाचार–पत्रों (जैसे हिंदोस्तान, आर्यदर्पण, भारतमित्र) से उद्धरण भी उस पत्र के हिंदी विभाग में रहते थे।

भारत का हित वे सच्चे हृदय से चाहते थे। राजा लक्ष्मणसिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, कार्तिकप्रसाद खत्री इत्यादि हिंदी लेखकों से उनका बराबर हिंदी में पत्र–व्यवहार रहता था। उस समय के प्रत्येक हिंदी लेखक के घर में पिंकाट साहब के दो–चार पत्र मिलेंगे। हिंदी के लेखकों और ग्रंथकारों का परिचय इंग्लैंडवालों को वहां के पत्रों में लेख लिखकर वे बराबर दिया करते थे।

संवत् 1919 में जब राजा लक्ष्मणसिंह ने 'शंकुतला नाटक' लिखा तब उसकी भाषा देख वे बहुत ही प्रसन्न हुए और उसका एक बहुत सुंदर परिचय उन्होंने लिखा। बात यह थी कि यहां के निवासियों पर विदेशी प्रकृति और रूप–रंग की भाषा का लादा जाना वे बहुत अनुचित समझने थे। अपना यह विचार उन्होंने अपने उस अंग्रेजी लेख में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है जो उन्होंने बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री के 'खड़ी बोली का पद्य' की भूमिका के रूप में लिखा था। इसका उदाहरण यहां दिया जा रहा है–

"फारसी मिश्रित हिंदी (अर्थात हिंदी या हिंदुस्तानी) के अदालती भाषा बनाए जाने के कारण उनकी बड़ी उन्नति हुई। इससे साहित्य की एक नयी भाषा ही खड़ी हो गई। पश्चिमोत्तर प्रदेश के निवासी, जिनकी यह भाषा कही जाती है, इसे एक विदेशी भाषा की तरह स्कूलों में सीखने के लिए विवश किये जाते हैं।"

संवत् 1919 और 1924 के बीच कई संवाद–पत्र हिंदी में निकले। 'प्रजाहितैषी' का उल्लेख हो चुका है। संवत् 1920 में 'लोकमित्र' नाम का एक पत्र ईसाईधर्म प्रचार के लिए आगरा (सिकंदरे) से निकला था जिसकी भाषा शुद्ध हिंदी होती थी। लखनऊ से जो 'अवध अखबार' (उर्दू) निकलने लगा था उसके कुछ भाग में हिंदी के लेख भी रहते थे।

इधर पंजाब में बाबू नवीनचंद्र राय ने संवत् 1920 और 1937 के बीच भिन्न–भिन्न विषयों की बहुत–सी हिंदी पुस्तकें तैयार कीं और दूसरों से तैयार करायीं। ये पुस्तकें बहुत दिनों तक वहां कोर्स में रहीं। पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रचार करने वालों में ये मुख्य थे। शिक्षा–प्रचार के साथ–साथ समाज सुधार आदि के उद्योग में भी बराबर रहा करते थे। नवीनचंद्र ने ब्रह्मसमाज के सिद्धांतों के प्रचार के उद्देश्य से समय–समय पर कई पत्रिकाएं भी निकालीं। संवत् 1924 में उनकी 'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' निकली जिसमें शिक्षा संबंधी तथा साधारण ज्ञान विज्ञानपूर्ण लेख भी रहा करते थे। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि शिक्षा विभाग द्वारा जिस हिंदी गद्य के प्रचार में ये सहायक हुए वह शुद्ध हिंदी गद्य था। हिंदी को उर्दू के झमेले में पड़ने से ये सदा बचाते रहे।

हिंदी की रक्षा के लिए उन्हें उर्दू के पक्षपातियों से उसी प्रकार लड़ना पड़ता था जिस प्रकार यहां राजा शिवप्रसाद को। नवीन चंद्र राय ने सैयद खां के विचारों का विरोध

टिप्पणी

कर उर्दू के स्थान पर हिंदी की वकालत की। विद्या की उन्नति के लिए लाहौर में 'अंजुमन लाहौर' नाम की एक सभा स्थापित की। संवत् 1923 के उसके एक अधिवेशन में किसी सैयद हादी हुसैन खां ने एक व्याख्यान देकर उर्दू को ही देश में प्रचलित होने के योग्य कहा, उस सभा का दूसरी बैठक में नवीनबाबू ने खां साहब के व्याख्यान का पूरा खंडन करते हुए कहा–

"उर्दू के प्रचलित होने से देशवासियों को कोई लाभ न होगा क्योंकि वह भाषा खास मुसलमानों की है। उसमें मुसलमानों के व्यर्थ बहुत–से अरबी–फारसी के शब्द भर दिए हैं। पद्य भर दिए हैं। पद्य या छंदोबद्ध रचना के भी उर्दू उपयुक्त नहीं। हिंदुओं का यह कर्तव्य है कि अपनी परंपरागत भाषा की उन्नति करते चलें। उर्दू में आशिकी कविता के अतिरिक्त किसी गंभीर विषय को व्यक्त करने की शक्ति ही नहीं है।

नवीन बाबू के इस व्याख्यान की खबर पाकर इसलामी तहबीज के पुराने हामी, हिंदी के पक्के दुश्मन गार्सा द तासी फ्रांस में बैठे–बैठे बहुत झल्लाए और अपने एक प्रवचन में उन्होंने बड़े जोश के साथ हिंदी का विरोध और उर्दू का पक्षमंडन किया। जब जहां कहीं हिंदी का नाम लिया जाता तब तासी बड़े बुरे ढंग से विरोध में उतर आते। इसी प्रकार इलाहाबाद इंस्टीट्यूट के एक अधिवेशन में (संवत् 1925) जब यह विवाद हुआ था कि 'देसी जबान' हिंदी को मानें या उर्दू को, तब हिंदी के पक्ष में कई वक्ता उठकर बोले थे। उन्होंने कहा था कि अदालतों में उर्दू जारी होने का यह फल हुआ है कि अधिकांश जनता विशेषतः गांवों की– जो उर्दू से सर्वथा अपरिचित है, बहुत कष्ट उठाती है, इससे हिंदी का जारी होना बहुत आवश्यक है। बोलने वालों में से किसी–किसी ने कहा कि केवल अक्षरं नागरी के रहें और कुछ लोगों ने कहा कि भाषा भी बदलकर सीधी–सादी की जाए। इस पर भी गार्सां द तासी ने हिंदी के पक्ष में बोलने वालों का उपहास किया था।

उसी काल में इंडियन डेली न्यूज के एक लेख में हिंदी प्रचलित किए जाने का पक्ष लिया गया था। शिक्षा के आंदोलन के साथ ही साथ ईसाई मत का प्रचार रोकने के लिए मतमतांतर संबंधी आंदोलन देश के पश्चिमी भागों में भी चल पड़े। पैगंबरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिंचते देख स्वामी दयानंद सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत् 1920 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम–घूम कर व्याख्यान देना आरंभ किया। देश में बहुत दूर–दूर तक प्रचलित साधु हिंदी भाषा में ही होते थे। स्वामी जी ने अपना 'सत्यार्थप्रकाश' तो हिंदी या आर्यभाषा में प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिंदी दोनों में किए। स्वामी जी के अनुयायी हिंदी को 'आर्यभाषा' कहते थे। स्वामी जी ने संवत् 1922 में 'आर्यसमाज' की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिए हिंदी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक संपर्क में पंजाब वालों की लिखने–पढ़ने की भाषा उर्दू ही रही थी। स्वामी जी ने वहां हिंदी का प्रसार किया। इधर पंजाब के छोटे–बड़े स्थानों में घूमकर पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी रामायण, महाभारत आदि की कथाएं हिंदी में सुनाते थे। उनकी कथाएं सुनने के लिए दूर–दूर से लोग आते और सहस्रों आदमियों की भीड़ लगती थी। उनकी वाणी में अद्‌भुत आकर्षण था और उनकी भाषा बहुत जोरदार होती थी।

टिप्पणी

उन्होंने पंजाबी और उर्दू में भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं पर अपनी मुख्य पुस्तकें हिंदी में लिखीं हैं।

इस भाषायी लड़ाई में धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी गद्य की भाषा की दिशा भी तय हो रही थी। कुल मिलाकर इस भाषा विवाद के बीच हिंदी भाषा निरंतर चर्चा में रही और इसका परिणाम यह हुआ कि इसकी अनिवार्यता भी समझी जाने लगी। हिंदी को साधारण जनसमूह तक पहुंचने वाली, सबको समझ आने वाली भाषा के रूप में प्रचारित–प्रसारित किया जाने लगा।

भाषा विवाद और हिंदी भाषा के स्वरूप को लेकर विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं–

4.4.1 राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद (1823–1895 ई.)

राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद लिपि तो देवनागरी पसंद करते थे, किंतु भाषा के संबंध में उनका रुख दूसरा ही था। वे वास्तव में हिंदी को उर्दू बनाना चाहते थे। इन्होंने हिंदी और उर्दू को समीप लाने की चेष्टा में हिंदी को उर्दू से भर दिया। राजा शिवप्रसाद ने अनेक पाठ्यक्रमों की रचना भी की और हिंदी को शिक्षा जगत में आगे बढ़ाया। सितारे हिंद की नीति सरकारी नीति का पक्ष लेना था। 'राजा भोज का सपना' प्रसिद्ध पुस्तक है, जिसका एक उद्धरण भाषा के नमूने के लिए प्रस्तुत है–

"तू ईश्वर की निगाह में क्या है क्या हवा में बिना धूप तृस रेणु भी दिखाई देते हैं पर सूर्य की किरन पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं क्या कपड़े में छाने हुए पानी के दरमियान किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं जब शीशे को लगाकर देखो जिस से छोटी चीज बड़ी नजर आती है तो उस एक बूंद में हजारों ही जीव सूझने लगते हैं।

हिंदी को व्यापक स्वीकृति दिलाने के लिए वह हिंदी को सरलता की ओर ले जाने के लिए उर्दू की शब्दावली लाने लगे। उनका विचार था कि "हम लोगों को जहां तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम खास पसंद हों अर्थात जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते हों।

उनके प्रयास से भाषा पंडिताऊपन से मुक्त हुई। वर्तनी में एकरूपता नहीं आ सकी। दो–दो रूप चलते रहे, जैसे उनने–उन्ने, उसके–उस्के, सकता–सक्ता। भाषा को व्याकरण सम्मत बनाया गया और अरबी–फारसी की ध्वनियों–क़, ख़, ग़, ज़, फ़ को शुद्ध लिखने की ओर ध्यान दिलाया। राजा साहब की शैली का पर्याप्त विरोध हुआ विशेषतः 'इतिहास तिमिरनाशक' की भाषा को लेकर। इस पुस्तक की भाषा को प्रकारांतर से उर्दू कहा जा सकता है–

'बगावत का शुबहा हुआ पूछने पर उकूबत और सियासत के डर से झूठा इकरार कर दिया। 'मात्र व्याकरणिक शब्दों को– क्रियारूप छोड़कर शेष हिंदी नहीं है। इस एक वाक्य में 'के डर से' मात्र हिंदी है।

इनकी प्रारंभिक कृतियों में उर्दूपन अपेक्षाकृत कम है, परवर्ती रचनाओं में उर्दूपन अधिक आता गया है। उनकी रचनाओं पर ध्यान देने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है–

टिप्पणी

'आलसियों का कोड़ा, वर्णमाला, स्वयंबोध उर्दू, बामामनरंजन, विद्यांकुर, राजा भोज का सपना, भूगोलहस्तामलक, इतिहास तिमिर नाशक, गुटका, हिंदुस्तान के पुराने राजाओं का हाल, मानवधर्मसार, सिक्खों का उदय और अस्त, योग वासिष्ठ के कुछ चुने हुए श्लोक, उपनिषद्सार आदि उनकी प्रमुख कृतियां हैं।

उपर्युक्त पुस्तकों में 'मानवधर्मसार', 'उपनिषदसागर' तथा 'योग वासिष्ठ' के कुछ चुने हुए श्लोकों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। ये पुस्तकें स्कूली विद्यार्थियों के लिए नहीं लिखी गई थीं। इनकी रचना में राजा साहब का दृष्टिकोण बहुत कुछ स्वतंत्र था। योग वासिष्ठ की भाषा का एक नमूना द्रष्टव्य है–पुरुषों के यौवन रूपी शरदऋतु में शोभा के उज्ज्वल गुण सुगंधादिक सी वृद्धा रूपी हेमंत में नष्ट होते हैं। चित्त की समाधीनता और आस्था भी दूर चली जाती है जैसे हिम ऋतु में कमलों की।

'जो संपूर्ण भूतों में रहकर संपूर्ण भूतों से अंतर जिसको संपूर्ण भूतों को भीतर होके यम (प्रेरणा) करता है सो आत्मा अंतर्यामी भी अमृत है।

उपर्युक्त पुस्तकों की भाषा में ब्रजभाषा के प्रयोग भी कहीं–कहीं आ गए हैं। व्यक्तिगत रूप से राजासाहब ऐसे प्रयोगों को दूर रखना चाहते थे, किंतु धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषयों से इस प्रकार की भाषा कुछ ऐसा गठबंधन था कि वे उसे तोड़ने में पूर्णतः सफल न हो सके। विचित्र बात तो यह है कि इन रचनाओं में भी जहां कहीं वे मूल विषय से अलग होकर स्वतंत्र उदाहरण आदि प्रस्तुत करते हैं वहां उनकी भाषा उर्दू (अरबी फारसी मिश्रित हिंदुस्तानी) हो जाती है। इससे प्रकट है कि संस्कृतनिष्ठ भाषा से उनका आत्मिक संबंध नहीं था।

'भूगोल हस्तामलक' स्वयंबोध उर्दू, बामामनरंजन, राजा भोज का सपना, विद्यांकुर, आलसियों का कोड़ा आदि पुस्तकों की भाषा चलती हुई व्यावहारिक किंतु सरल हिंदी है। इनमें अधिक उर्दूपन नहीं है। प्रारंभ में उनकी भाषा नीति इसी प्रकार की भाषा के पक्ष में थी। इनमें विदेशी शब्दों का ठीक उसी प्रकार प्रयोग हुआ है जिस प्रकार चंद, तुलसी, बिहारी आदि कवियों की कृतियों में। उदाहरण के लिए 'भूगोल हस्तामलक' की भाषा का नमूना देखिए–'निदान यह बंगाले का मैदान नदियों से सिंचा हुआ गंगा के दोनों तरफ हिमालय और विन्ध के बीच हरिद्वार तक चला गया है और गंगा–यमुना के बीच जो देश पड़ा हुआ है उसे अंतरवेद और इलाहाबाद यथार्थ मध्य प्रदेश अर्थात असली हिंदुस्तान है। उपर्युक्त सभी कृतियों की भाषा लगभग इसी प्रकार की है। आगे चलकर उनका मोह उर्दू की ओर बढ़ता गया। 'इतिहास तिमिरनाशक' की भूमिका में वे एक स्थान पर कहते हैं–

Our court language is Urdu and the court language has always been regarded by all the nations as the most fashionable language of the day Urdu is now becoming our mother tongue and is spoken more or less and well or badly by all in the North Western Provinces.

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि राजा साहब हृदय से उर्दू पर मुग्ध थे–

इतिहास तिमिरनाशक भाग तीन, सिक्कों का उदय और अस्त तथा हिंदुस्तान के पुराने राजाओं का हाल। इन रचनाओं में राजासाहब की उर्दू की ओर उत्तरोत्तर बढ़ती हुई

टिप्पणी

प्रवृत्ति विकास की चरम स्थिति तक आ गई है। इतिहास तिमिर नाशक भाग दो की भूमिका में वे लिखते हैं–

I have adopted to a certain extent the language of Baitel Pachchisi.

यह होते हुए भी दोनों पुस्तकों की भाषा में अंतर स्पष्ट है। इतिहास तिमिरनाशक की भाषा नागराक्षरों में लिखी हुई सरल उर्दू है जबकि बैताल पच्चीसी की भाषा को 'रेख्ता' कहा गया है। 'बेताल पच्चीसी' में संस्कृत के कुछ शब्द भी हैं। किंतु इतिहास तिमिरनाशक में इनकी संख्या नहीं के बराबर है। 'सिक्खों का उदय और अस्त' की भाषा तो पूर्णतः उर्दू हो गई है। साथ ही इसमें अरबी–फारसी शब्दों का व्यवहार अधिक किया गया है।

'गुटका' एक संग्रह पुस्तिका है। यही स्कूली विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए लिखी गई थी। अतः इससे राजासाहब की भाषा विषयक नीति के विषय में स्पष्ट संकेत नहीं लक्ष्य किया जा सकता। हिंदी व्याकरण की भाषा, स्वयं उन्हीं के कथनानुसार, हिंदुस्तानी है। पारिभाषिक शब्द संस्कृत व फारसी से लिए गए हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचन के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि राजासाहब नागर लिपि के पूर्ण समर्थक होते हुए भी हिंदी खड़ी बोली गद्य के पूर्ण पोषक नहीं थे। वे उर्दू के फैशनेबुल स्वरूप पर मुग्ध थे और उनका यह मोह उत्तरोत्तर बढ़ता गया था। फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों में उनसे जो कुछ हो सका वह कम नहीं है। उनके विषय में उन्हीं के समकालीन प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिंकाट का यह कथन कहां तक सत्य है, नहीं कहा जा सकता। पिंकाट महोदय ने भारतेंदु को एक पत्र में लिखा था–

'राजा शिवप्रसाद बड़ा चतुर है। बीस बरस हुए उसने सोचा कि अंग्रेजी साहबों को कैसी –कैसी बातें अच्छी लगती हैं उन बातों का प्रचलित करना चतुर लोगों का परम धर्म है। इसलिए बड़े चाव से उसने काव्य को और अपनी हिंदी भाषा को भी बिना लाज छोड़कर उर्दू के प्रचलित करने में बहुत उद्योग किया। राजा शिवप्रसाद को अपना ही हित महत्वपूर्ण लगता है।

4.4.2 राजा लक्ष्मण सिंह (1826–1896 ई.)

राजा लक्ष्मण सिंह का भाषा विषयक आदर्श राजा शिवप्रसाद से सर्वथा विपरीत था। ये विशुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। ये उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते थे। शकुंतला (1861 ई.), रघुवंश (1898 ई.) तथा मेघदूत (1882 ई.)– इन तीन अनुवाद ग्रंथों में भी उन्होंने अपना भाषा विषयक आदर्श वही रखा। उनके अनुसार, "पहले तो राज बढ़ाने की कामना चित्त को खेदित करती है और फिर जो देश जीतकर बस गए हैं उनकी प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन रात मन को विकल रखता है। जैसे बड़ा छत्र यद्यपि धाम की रक्षा करता है परंतु बोझ भी देता है।" अपना मत स्पष्ट करने हेतु वे कहते हैं–

'हमारे मत में हिंदी और उर्दू दो बोली न्यारी–न्यारी हैं। हिंदी इस देश के हिंदू बोलते हैं और उर्दू यहां के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिंदुओं की बोलचाल है। हिंदी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी फारसी के, परंतु कुछ आवश्यक नहीं है कि अरबी

टिप्पणी

फारसी के शब्दों के बिना हिंदी न बोली जाए और न हम उस भाषा को हिंदी कहते हैं जो अरबी फारसी के शब्दों से भरी हो।'

भाषा के इसी रूप के पक्षधर हुए स्वामी दयानंद सरस्वती, पं. भीमसेन शर्मा, अम्बिकादत्त व्यास आदि। आज अनेक विद्वानों ने इसी शैली को परिष्कृत कर अपनाया है। भाषा को परिनिष्ठित रूप देने में उक्त दोनों (राजा शिवप्रसाद–लक्ष्मण सिंह) ध्रुवों ने बाधा पहुंचायी है। धीरे–धीरे खड़ी बोली व्यावहारिक रूप की ओर अग्रसर हुई।

राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा उर्दू–फारसी शब्दों से रहित होने तथा संस्कृतनिष्ठ होने पर भी जनता के अधिक निकट है। उसमें परिमार्जन कम है। 'व्रजी' का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में है और सबसे बड़ी कमी उसमें यह है कि युग के अनुकूल नवीन चेतना का भार वहन करने में वे अक्षम हैं। उसमें अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल आदि ज्ञान–विज्ञान के विषयों की सफल अभिव्यक्ति संभव नहीं। यह होने पर भी उनकी कृतियों का खूब स्वागत हुआ। उनका शकुंतला का अनुवाद तो अत्यंत लोकप्रिय हुआ। 'शकुंतला' की भाषा का एक सुंदर उदाहरण देखिए–

"अनुसूया– (धीरे से प्रियंवदा से) सखी! मैं भी इसी सोच विचार में हूं। अब इससे कुछ पूछूंगी। (प्रगट) महात्मा। तुम्हारे मधुर वचनों के विश्वास में आकर मेरा जी यह पूछने को चाहता है कि तुम किस राजवंश के भूषण हो और किस देश की प्रजा को विरह में व्याकुल छोड़ यहां पधारे हो।"

राजा लक्ष्मणसिंह की उपर्युक्त भाषा के विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं– यह भाषा ठेठ और सरल होते हुए भी साहित्य में चिरकाल से व्यवहृत संस्कृत के कुछ रससिद्ध शब्द लिए हुए हैं। निश्चय ही राजासाहब ने परंपरागत हिंदी के विशुद्ध रूप की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया, किंतु युगानुकूल नवचेतना के वाहक लोकप्रचलित विदेशी शब्दों को भी उन्होंने हिंदी से अलग रखा। जिन शब्दों के विषय में स्वयं राजासाहब की धारणा थी कि वे जनता में अधिक प्रचलित हैं, केवल विदेशी होने के कारण, उन्होंने उन्हें भी हिंदी के अंतर्गत स्वीकार करने में हिचक दिखाई। फलस्वरूप गवाह, अदालत, कलेक्टर जैसे शब्द भी उन्हें मान्य न हुए। विकसित होती हुई भाषा के लिए यह दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ नहीं माना जा सकता।

राजा शिवप्रसाद व राजा लक्ष्मणसिंह की विरोधी नीतियों का परिणाम यह हुआ कि हिंदी के स्वरूप को लेकर साहित्य क्षेत्र में दो विरोधी मत उठ खड़े हुए। एक उर्दू का समर्थक हुआ तो दूसरा हिंदी का पक्षपाती। कुछ लोगों ने मध्य का मार्ग लिया। उर्दू के पक्ष में प्रभावशाली मुसलमानों ने भरपूर प्रयत्न किया। कुछ अंग्रेज विद्वानों ने भी उर्दू का पक्ष लिया। उर्दू के समर्थकों में सबसे सबल व्यक्तित्व सर सैयद अहमद खां का था। उन्होंने अंग्रेजों को सुझाया कि 'हिंदी' हिंदुओं की जबान है जो 'बुतपरस्त' है और उर्दू मुसलमानों की, जिनके साथ अंग्रेजों का मजहबी रिश्ता है। दोनों सामी या पैगंबरी मत को मानने वाले हैं। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान गॉर्सो द तासी ने भी 'उर्दू' का खूब समर्थन किया। उन्होंने सर सैयद की हृदय से प्रशंसा की।

हिंदी का जोरदार समर्थन आर्य समाजियों एवं ब्रह्म समाजियों ने किया। श्री नवीनचंद्र राय (1863–1880 ई.) ने पंजाब में हिंदी का खूब प्रचार किया। आप ब्रह्म समाज के सिद्धांतों

टिप्पणी

के पोषक थे और हिंदी भाषा के कट्टर समर्थक। लगभग इसी समय पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी (1853 ई.) ने भी घूमघूम कर पंजाब में हिंदी का प्रचार किया और वर्णाश्रम धर्म की शिक्षा भी दी।

इस खींचतान में भी हिंदी अपना स्वाभाविक विकास करती रही। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने संस्कृतनिष्ठ व अरबी–फारसी मिश्रित भाषा संबंधी इन दोनों अतिवादों से दूर रहकर जनता की वाणी को पहचाना और हिंदी के सच्चे स्वरूप की प्रतिष्ठा की।

4.4.3 भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850–1884 ई.)

भारतेंदु ने हिंदी गद्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सन् (1883–84 ई.) के लगभग 'हिंदी भाषा' नामक एक छोटी–सी पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें शुद्ध हिंदी के रूप में उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किया है–

"पर मेरे प्रीतम अब तक घर न आए क्या उस देश में बरसात नहीं होती या किसी सौत के फन्द में पड़ गए कि इधर की सुध ही भूल गए। कहाँ (तो) वह प्यार की बातें कहाँ एक संग ऐसा भूल जाना कि चिट्ठी भी न भिजवाना। हा! मैं कहाँ जाऊँ कैसी करूँ। मेरी तो ऐसी कोई मुँहबोली सहेली भी नहीं कि उससे दुखड़ा रो सुनाऊँ। कुछ इधर–उधर की बातों से ही जी बहलाऊँ।"

भारतेंदु ने अपने नाटकों में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया। एक ओर तो इसमें तद्भव एवं देशज शब्दों एवं मुहावरों का प्राधान्य है और दूसरी ओर जनजीवन में घुले हुए विदेशी शब्दों से कोई खास परहेज नहीं किया गया है। भारतेंदु के समसामयिक लेखकों ने इसी शैली को अपनाया, किंतु खेद कि आगे चलकर बांग्ला के अनुवादों तथा आर्यसमाज की एकांत संस्कृत निष्ठा के कारण भाषा का यह रूप अधिक मान्य न हो सका। भाषा के आदर्श रूप की प्रतिष्ठा करने पर भी भारतेंदु उसका पूर्ण परिमार्जन न कर सके। वे भी पांडिताऊपन से पीछा न छुड़ा सके। ब्रजी का प्रभाव बना रहा। पूरबी प्रयोग होते रहे। यहां तक कि शब्दों के अशुद्ध वर्ण–विन्यासों– 'व' के स्थान पर 'ब', मध्य तथा अंत में 'ए' के स्थान पर 'ऐ' से भी मुक्ति न मिली। वाक्य विन्यासों एवं पद योजनाओं में भी पूर्ण परिष्कार न हो सका।' 'किसी पदार्थों' में, 'हर एक आनन्दों के लिए', 'सूचना किया जाता' आदि प्रयोग भी चलते रहे। यह परिमार्जन आगे चलकर आचार्य द्विवेदी के हाथों संपन्न हुआ। यह सब होने पर भी हमें भारतेंदु के इस कथन को स्वीकार करना होगा कि 'हिंदी नए चाल में ढली (हरिश्चंद्र मैगजीन, 1973 ई.)। हिंदी की यह नई चाल उसे व्यावहारिक रूप देने में समर्थ हुई। हिंदी में शब्द ग्रहण करने की अद्भुत क्षमता दृष्टिगत हुई। एक सजीव भाषा की भांति उसने अंग्रेजी और बांग्ला से अनेक शब्द ग्रहण किए। भारतेंदु के समय में ही अंग्रेजी के अनेक शब्द हिंदी में आ गए थे। उदाहरण के लिए शासन संबंधी शब्दों में 'म्युनिसिपैल्टी, हाईकोर्ट, कलक्टर, पुलिस, जज, गवर्नर, वाइसराय, लार्ड आदि का प्रयोग ध ड़ल्ले से होने लगा था। इसी प्रकार वस्त्र एवं वेशभूषा संबंधी शब्दों– कोट, पैंट, शर्ट, शू, टाई, बूट, कॉलर का प्रयोग चल पड़ा था। इसी प्रकार नित्य प्रति के जीवन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों– स्टेशन, पोस्टमैन, रेल, एडीटर, कॉपी, ब्रैंडी का आगमन भी तीव्रता से हो रहा था। शब्द–भंडार के साथ–साथ हंदी गद्य की अभिव्यंजना शक्ति भी बढ़ने लगी थी। उसमें

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद.....लिपि पसंद करते थे।
10. राजा लक्ष्मण सिंह का भाषा विषयक आदर्श राजा शिवप्रसाद से सर्वथा .....था।

सही/गलत बताइए–

11. राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद ने अनेक पाठ्यक्रमों की रचना की और हिंदी को शिक्षा जगत में आगे बढ़ाया।
12. श्री नवीनचंद्र राय ने पंजाब में अंग्रेजी भाषा का खूब प्रचार किया।

टिप्पणी

नवीन विचारों को धारण करने की शक्ति आ रही थी। निश्चय ही भारतेंदु युग तक आते–आते हिंदी गद्य में युगांतर उपस्थित हो गया था व हिंदी नई चाल में ढलने लगी थी।

भारतेंदु ने वास्तव में शिवप्रसाद सितारेहिंद एवं राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृतनिष्ठ हिंदी के बीच में से ही मध्यम मार्ग निकाला। भाषा में न पंडिताऊपन हो और न उर्दू शैली की क्लिष्टता। भाषा में से हिंदीपन न जाने पाए, इस बात का भरसक प्रयत्न किया। खड़ी बोली को क्लिष्ट प्रयोगों और पंडिताऊपन से मुक्त रखा। साधु शैली का रूप निश्चित किया और उसे 'नए पाल की हिंदी' की संज्ञा सन् 1873 में प्रदान की।' 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का मंत्र देने वाले भारतेंदु की सर्वत्र प्रशंसा हुई। यहां कुछ सार्थक सम्मतियां देना उपर्युक्त होगा–

"जो लोग विवेकी हैं वे इसे अवश्य स्वीकार करेंगे कि श्री हरिश्चंद्र ने उस बिगड़ी हुई भाषा का, जो ग्रामीण स्त्री वेश में थी, सुधारकर सुसम्पन्न नागरी करके नागरी शब्द को सार्थक कर दिखलाया। हिंदी भाषा ने उनके समय में वह लावण्य या माधुर्य धारण किया कि लोग देखते ही मुग्ध हो जाते थे और जिन लोगों को बाल्यावस्था से मियां जी की तख्ती लिखने का अभ्यास था वे भी इसी पर लट्टू हुए फिरते हैं, अधिक कहां तक कहें उन्होंने उसकी आकृति ऐसे सांचे में खिंची कि सब में हिंदी का समादर होने लगा।

(मित्र विलास दिनांक 17.10.87)

(डॉ. वाहरी की हिंदी भाषा पृ. 52 से उद्धृत)

यह बात सच है कि आपकी हिंदी और हिंदुस्तान सबसे मनोहर है, इसके बदले में राजा शिवप्रसाद का अपना ही हित सबसे भारी बात है। – (पिन्कॉट)

आगे चलकर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में लिखा–

"जब भारतेंदु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तो हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया। भारतेंदु ने एक साथ कई गद्य शैलियों को अपनाया। भारतेंदु की भाषा में सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है और चुभता व्यंग्य भी। फारसी शब्दों से भी उन्हें परहेज नहीं था (खुदा इस आफत से जी बचाए) तत्सम तद्भव से युक्त भाषा (यदि हमको भोजन की बात हुई तो भोजन का बधान बांध देंगे) कहीं–कहीं अंग्रेजी शब्दों का समुचित प्रयोग (कंपनियों के सैकड़ों गैंग), संस्कृतनिष्ठता (अनवरत आकाश मेघाच्छन्न रहता है) आदि अनेक भाषा के शैली रूप उनके साहित्य में चलते रहे।

4.4.4 अयोध्या प्रसाद खत्री (1857–1905)

पद्य की छाप गद्य पर स्पष्ट पड़ती है। अयोध्या प्रसाद खत्री का गद्य इस बात का साक्षी है। गद्य लिखते समय भी खत्री जी का धारा प्रवाह वस्तुतः पद्यात्मक ही रहता है। पद्य की सी लहर, शब्द संगठन, भावभंगी एवं माधुर्य उनके गद्य में भी मिलता है। गद्यात्मक सौष्ठव का ह्रास और पद्यात्मक विभूति की उत्कृष्टता इनके गद्य में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इनकी भाषा व्यंजना एवं शब्दों के विशिष्ट प्रयोगों से काव्यात्मक आनंद की अनुभूति होती है। यही कारण है कि कभी–कभी वे बड़े असाधारण क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसके

टिप्पणी

अतिरिक्त भाव व्यंजना का प्रकार भी कहीं–कहीं इतना पद्यात्मक हो जाता है कि उसे गद्य कहने में एक प्रकार का संकोच होता है। वस्तुतः यह शैली गद्य काव्य में यदि प्रयुक्त होती तो विशेष सुंदर ज्ञात होती। परंतु इतना होते हुए भी उनके भाव द्योतन में शैथिल्य नहीं दिखाई पड़ता।

कुछ लोगों का कथन है कि "इस प्रकार के गद्य में विषयों की व्यंजना नहीं हो सकती। यदि साधारण विषयों से भूगोल एवं खगोल ऐसे विषयों का तात्पर्य है तो यह कहना समीचीन ज्ञात होता है, क्योंकि इतिवृत्तात्मक विवरण विचार–विमर्श में काव्यात्मक कथन प्रणाली का जितना ही लोप हो उतना ही अच्छा है। इसके अतिरिक्त जो लोग इनके गद्य में पंडित रामचंद्र शुक्ल की विशिष्टताएं चाहते हैं वे भी अन्याय करते हैं। इनमें शब्द–बाहुल्य एवं वाक्य विस्तार अधिक दिखाई पड़ता है जो कि शुक्ल जी के ठीक विपरीत है, परंतु इसके लिए अयोध्या जी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि दोनों लेखकों की दो भिन्न–भिन्न शैलियां और विचार हैं। शुक्ल जी विषय प्रतिपादन में अधिक सतर्क रहते हैं और गागर में सागर भरते हैं। इसमें उन्हें अच्छी सफलता मिली है। उनके शब्द और वाक्य समूह भाव–गाम्भीर्य से आक्रांत रहते हैं, परंतु अयोध्या जी में ऐसी बात नहीं दिखाई पड़ती। उनका भाव निदर्शन अधिक काल्पनिक एवं साहित्यिक होता है। उसमें गद्यात्मक गठन भले ही न हो, परंतु मिठास और काव्यात्मक ध्वनि इतनी रहती है कि पाठक उधर ही आकृष्ट हो जाता है। इस ध्वनि विशेष के कारण सर्वत्र ही उनमें आलंकारिकता तथा सनुप्रासिकता दिखाई पड़ती है और कथन प्रणाली विस्तारमय होती है। निम्नलिखित गद्यांश में ये बातें स्पष्ट दिखाई पड़ेंगी–

"कहते व्यथा होती है कि कुछ कालोपरान्त हमारे ये दिन नहीं रहे– हममें प्रतिकूल परिवर्तन हुए और हमारे साहित्य में केवल शान्त व शृंगार रस की धारा प्रबल वेग से बढ़ने लगी। शान्त रस की धारा ने हमको आवश्यकता से अधिक शान्त और उनके संसार की असारता के राग में हमें सर्वथा सारहीन बना दिया। शृंगार रस ने भी हमारा अल्प अपकार नहीं किया। उसने भी हमें कामिनी कुल शृंगार का लोलुप बनाकर समुन्नति के समुच्य शृंग से अवनति के विशाल गर्त में गिरा दिया। इस समय हम अपनी किंकर्तव्यविमूढ़ता, अकर्मण्यता, अकर्मपटुता को साधुता के पर्दे में छिपाने लगे– और हमारी विलासिता, इंद्रिय परायणता, मानसिक मलिनता भक्ति के रूप में प्रकट होने लगी। इधर निराकार की निराकारिता में रत होकर कितने सब प्रकार बेकार हो गए और उधर आराध्यदेव भगवान वासुदेव और परम आराधनी या श्रीमती राधिका देवी की आराधना के बहाने पावन प्रेम–पंथ कलंकित होने लगा। न तो लोकपावन भगवान वासुदेव लौकिक प्रेम के प्रेमिक हैं, न तो वन्दनीया वृषभानुनन्दिनी कामनामयी प्रेमिका, न तो भुवन अभिराम वृन्दावन धाम अवैध विलास वसुन्धरा है, न कलकल–वाहिनी कलिंद नन्दिनी कूल कामकेलि का स्थान। किन्तु अनधिकारी हाथों में पड़कर वे वैसे ही चित्रित किए गए हैं। कतिपय महात्माओं और भावुक जनों को छोड़कर अधिकांश ऐसे अनधिकारी ही है, और इसलिए उनकी रचनाओं से जनता पथच्युत हुई। केहरिपत्नी के दुग्ध का अधिकारी स्वर्ण पात्र है, अन्य पात्र उसको पाकर अपनी अपात्रता प्रकट करेगा। मध्यकाल से लेकर इस शताब्दी के प्रारम्भ तक का ही हिंदी साहित्य उठाकर आप देखें वह केवल विकास का क्रीड़ाक्षेत्र और कामवासनाओं का उद्गार

टिप्पणी

मात्र है। संतों की बानी और कतिपय दूसरे ग्रन्थ जो हिंदू जाति का जीवन सर्वस्व, उन्नायक व कल्पतरू है, जो आदर्श चरित्र का भण्डार व सद्भाव रत्नों का रत्नागार है, जो आज दस करोड़ से भी अधिक हिंदुओं का सत्पथ प्रदर्शक है, यदि वह है तो रामचरितमानस है और वह गोस्वामी जी के महान तप का फल है।"

इस प्रकार के गद्यांशों में साहित्यिक छटा के अतिरिक्त और भाषा गाम्भीर्य के साथ भाषण का आवेश भी पर्याप्त रूप में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की रचनाओं के प्रवाह में जब कभी करके, होवे और होता होवे इत्यादि शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है तो पंड़िताऊपन की गंध अवश्य आने लगती है, परंतु इनका आधिक्य न होने के कारण और तत्समता का बाहुल्य होने से भाषा में शिथिलता नहीं उत्पन्न होने पाती।

अयोध्या जी ने केवल साहित्यिक गद्य की रचना की हो ऐसी बात नहीं है। साधारण जनता के लिए ठेठ भाषा के निर्माण में भी वे सफल हुए हैं। इसके अतिरिक्त अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वे मुहावरेदार पद्य व गद्य का निर्माण करते रहे। उनकी इस भाषा शैली में एक प्रकार की विशेष सजीवता परिलक्षित होती है। कहीं–कहीं तो सारी भावव्यंजना ही मुहावरों में हुई है। ऐसे स्थानों पर भाषा गठित व उसमें साहित्यिकता व गाम्भीर्य न होकर एक प्रकार की चटपटी व्यंजकता दिखाई पड़ती है। उदहारण की एक बानगी प्रस्तुत है–

"हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आँख के तारे भी नहीं देते। हम पर लगाकर उड़ना चाहते हैं, मगर उठाने से पाँव भी नहीं उठते। हम पालिसी पर पालिश करके उसके रंग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पॉलिसी हमारे बने हुए रंग को भी बदरंग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल जोल का, मगर न जाने कहाँ का खटराग पेट में भरा पड़ा है। हम जाति–जाति को मिलाने चलते हैं, मगर ताब अछूतों से आँख मिलाने की भी नहीं। मगर ताने दे दे कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिंदू जाति को एक रंग में रंगना चाहते हैं, मगर जाति जाति के अपनी–अपनी डफली और अपने अपने राग ने रही सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं देश को उठाना, पर आप मुंह के बल गिर पड़ते हैं। हमें देश की दशा सुधारने की धुन है, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम चाहते हैं जाति की कसर निकालना, मगर हमारे जी का कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचा उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चाहते हैं जाति को जिलाना, मगर हमें मर मिटने आता ही नहीं।"

वस्तुतः हिंदी खड़ी बोली गद्य साहित्य में अयोध्या प्रसाद जी का मुख्य योगदान रहा है, जो श्लाघनीय है।

4.4.5 श्री बालकृष्ण भट्ट (1844–1914 ई.)

विचार प्रधान निबंधों के रचयिता के रूप में बालकृष्ण भट्ट विशेष महत्व रखते हैं। प्रताप नारायण मिश्र जी की तुलना में उनमें नागर संस्कार प्रबल दिखाई देता है। उन्होंने अनेक विषयों को लेकर निबंध रचना की जिनमें चंद्रोदय, चलता है, कालिराज सभा, बातचीत, श्री, कल्पनाशक्ति, नाक आदि उल्लेखनीय हैं। उनके कई निबंधों में वैयक्तिकता की

टिप्पणी

झलक स्पष्ट परिलक्षित होती है। वे सीमित आकार और नपे–तुले शब्दों में सहज आत्मीयता से अपनी बात कह डालते हैं। ये किसी भी विषय पर अत्यंत कुशलतापूर्वक लिख देते थे। वस्तुतः हिंदी का निबंध साहित्य इनके बिना अधूरा माना जाएगा। अपने विचारों की पुष्टि के लिए संस्कृत के उद्धरण देते थे। शुद्ध हिंदी के पक्षधर होते हुए भी यथावश्यक अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते थे। उठाए, बैठाय जैसे लोकभाषा के प्रयोग भी उनके निबंधों में मिल जाते थे। भट्ट जी ने अपने लेखन से हिंदी को गौरव दिलाया और दिखा दिया कि खड़ी बोली भी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। इन्होंने यथार्थतः प्रताप नारायण मिश्र की अपेक्षा अधिक शिष्ट भाषा लिखने की चेष्टा की है। किसी विशेष भाषा से शब्द ग्रहण की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। फिर भी उन्होंने अंग्रेजी से पर्याप्त संख्या में शब्द ग्रहण किए। अप्रचलित अंग्रेजी शब्दों का उन्होंने पर्याय भी दिया है। सरकुलेशन, फिलॉसोफी, कोच, एज्यूकेशन, एक्सपोर्ट, रिलीफ, सोशल कॉनफरेंस आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

मुहावरों और लोकोक्तियों के अधिकाधिक प्रयोग की प्रवृत्ति इनकी भी थी। बीच–बीच में संस्कृत से उद्धरण देने में भी इनकी चतुरता देखी जाती है। कुछ निबंधों को तो इन्होंने प्रतापनारायण मिश्र की भांति, केवल मुहावरों के चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही लिखा है।

भट्ट जी की प्रारंभिक कृतियों में तुकदार वाक्यांशों की झलक भी मिलती है किंतु भाषा की प्रौढ़ता के साथ–साथ यह प्रवृत्ति समाप्त होती गई है। उदाहरण के लिए– "यह उसी करुणा वरुणालय दीनोद्धारक दीनजनपालक दयासागर की कृपा की लेश है कि आज हम इस जून एक ऊन दो के ऊपर सून वाली संख्या में प्रवेश कर रहे हैं।"

पुराने एवं बने–बनाए संस्कृत के शब्दों का प्रयोग इनकी भाषा में खूब मिलता है। किमपि, निश्चितमेव, अन्ततोगत्वा, दैवात् आदि इनकी कृतियों में स्थल–स्थल पर मिल जाते हैं। व्याकरण संबंधी अशुद्धियां भी इनकी भाषा में कम नहीं है। स्वामी दयानंद ने "इसकी चेष्ट किया, हमारा समाज जर्जरित होता जा रहा है, भूतपूर्व यहां के योगी और संयमी अपनी दमनशक्ति और उपदेश से पृथ्वी भर के लोगों को आमंत्रित किए थे।" इस प्रकार के वाक्य भी इनकी भाषा में देखे जा सकते हैं।

बड़े–बड़े वाक्य बनाने की प्रवृत्ति भी इनमें थी। कदाचित इसलिए वाक्यों में कहीं–कहीं शिथिलता आ गई है। व्याकरण संबंधी छोटी–मोटी भूलों के अतिरिक्त पूरबी प्रयोग भी इनकी भाषा में मिलते हैं। 'समझा–बुझाकर' के स्थान पर 'समझाए–बुझाए', ये बिना संकोच के लिख जाते थे। इनकी भाषा का एक नमूना देखिए–

"सभ्यता और क्या है? यही कि सभ्य जाति के एक–एक मनुष्य आबाल वृद्ध वनिता सबों में सभ्यता के सब लक्षण पाए जाए जिसमें आधे या तिहाई सभ्य हैं वह जाति अर्धशिक्षित कहलाती है। क़ौमी तरक्की भी अलग–अलग एक–एक आदमी के परिश्रम, योग्यता, सुचाल और सौजन्य का मानो टोटल है। उसी तरह क़ौम की तनज्जुली क़ौम को एक–एक आदमी की सुस्ती, कमीनापन, नीची प्रकृति, स्वार्थपरता और भांति–भांति की बुराइयों का ग्रैंड टोटल है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

13. भारतेंदु हरिशचंद्र ने हिंदी गद्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए.....ई. के लगभग 'हिंदी भाषा' नामक एक छोटी–सी पुस्तिका प्रकाशित की थी।
14. गद्य लिखते समय भी अयोध्या प्रसाद खत्री जी का धारा प्रवाह वस्तुतः..... ही रहता है।
15. हिंदी का निबंध साहित्य.....के बिना अधूरा माना जाएगा।

सही/गलत बताइए–

16. भारतेंदु जी ने 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का मंत्र दिया।
17. हिंदी खड़ी बोली गद्य साहित्य में अयोध्या प्रसाद जी का मुख्य योगदान रहा है।
18. बालकृष्ण भट्ट की भाषा में व्याकरण संबंधी छोटी–मोटी भूलों के अतिरिक्त पूर्वी प्रयोग भी मिलते हैं।

टिप्पणी

4.5 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां और भाषा के मानकीकरण का प्रश्न

हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है–

4.5.1 हिंदी भाषा की वर्तमान शैलियां

हिंदी भाषा की वर्तमान लेखन शैलियों में काफी विविधता दिखाई देती है। आज के रचनाकार साहित्य रचना में अनेकानेक प्रयोग कर रहे हैं आजकल जो साहित्य लिखा जा रहा है उसमें कथात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक, संवाद शैली, पत्र शैली और डायरी शैली सभी की विशेषताएं दिखाई देती हैं। कथ्य के स्तर पर बदलाव ने हिंदी की शिल्प–संबंधी मानदंडों को तोड़कर नए शिल्प की तलाश की क्योंकि परंपरागत शिल्प नए कथ्य को अभिव्यक्त करने में अक्षम सिद्ध हो रहा था। आज के लेखन का उद्‌देश्य मात्र मनोरंजन करना ही नहीं है, और न ही परंपरागत मानदंडों की कसौटी पर उसे कसा जा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर युग में रचनाकार कथ्य और शिल्प के धरातल पर रचनाकार नयापन लिए ह आजकल गद्य कहानी लेखन के संदर्भ में राजेंद्र यादव का कहना है कि–"जिसे हम नई कहानी कहते हैं, वह नये की विविध विधाओं में नये शैलीगत ढांचे में रची जा रही है। मनुष्य के परिवर्तित परिवेश और अनुभूतियों का परिणाम तो है ही, इस परिणाम की अभिव्यक्ति ने शिल्प और शास्त्र की दृष्टि से भी इसे पुरानी कहानी से अलग कर दिया है। ऐसा लगेगा कि शिल्प के हजार मोड़ उनमें हैं–बारीकी है, बखिया है, कसीदा है, फुलकारी है। यहां तक संदेह होने लगा था कि कथ्य की बजाय इनमें शिल्प–ही–शिल्प है। धनंजय वर्मा के अनुसार–"शिल्प दिमागी ऐय्याशी नहीं है, यथार्थ से भोगी हुई चीजों की संबद्धता का एक प्रश्न लेखक के जीवन से जुड़ा हुआ है और लेखक का जीवन शिल्प के सामर्थ्य और असामर्थ्य से।" कहने का अभिप्राय यह है कि आज के पाठक को कथ्य के साथ शिल्प अधिक लुभाने का प्रयास कर रहा है। किस बात को हम किस अंदाज में कहना चाहते हैं यह महत्वपूर्ण बन जाता है।

भाषा के शैलीय मानक

जिस भाषा की एकाधिक शैलियां हों उनके भी एकाधिक मानक होते हैं। हिंदी की हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी तीन शैलियां हैं। हिंदी में कहेंगे : 'उनका स्वर्गवास हो गया' तो उर्दू वाले कहेंगे : 'वे स्वर्गवास हो गए'। उर्दू में एक संप्रदाय कहेगा : 'मुझे चिट्‌ठी लिखना है (लखनऊ)' और दूसरा कहेगा 'मुझे चिट्‌ठी लिखनी है (दिल्ली)' किंतु हिंदी में केवल दूसरा वाक्य ही मानक है। यों उर्दू प्रभाव से कुछ लोग पहले का भी प्रयोग करते सुने जाते हैं। आज के रचनाकार लिखने से पूर्व प्रत्येक घटना, स्थिति या विचार को पूरी तरह से जी लेने के बाद ही कलम उठाता है। लूकाच ने कहा था–"reality is infinite" अर्थात यथार्थ अनंत है।

मनुष्य का अतीत समाप्त नहीं हो जाता, वह उसकी स्मृति में संचित होता रहता है। इस प्रकार क्षण–अनुभव किसी विशिष्ट क्षण का अनुभव न होकर पिछले अनुभवों का

टिप्पणी

विकास होता है आज के रचनाकार बाह्य जगत के साथ ही मनोजगत की पीड़ा को उकेर रहे हैं। जिन घटनाओं या बाह्य स्थितियों को मनुष्य झेलता है उनका आघात अवश्य उसके मन पर होता है, और इस मनोस्थिति को शब्दों में उतारना व्यंजना शक्ति का कमाल है। कहने का अभिप्राय यह है कि आज कथ्य में ही इतनी क्षमता उत्पन्न हो गई है कि वह अपने अनुकूल शिल्प का निर्माण कर ले। वास्तविकता यह है कि जीवन के बदलते मूल्यों ने कथ्य को प्रभावित किया है और कथ्य नये शिल्प–निर्माण में निर्णायक भूमिका निभा रहा है।

मिश्रित शिल्प का प्रयोग

आज की रचनाओं में मिश्रित शिल्प की झलक दिखाई देती है। रचनाकार संवेदनशील होता है और अपनी बात को कहते–कहते नदी के प्रवाह की तरह चलता जाता है। इस प्रक्रिया में मिश्रित शैलियों का प्रयोग साहित्य को अधिक प्राणवान बना रहा है। डॉ. नामवर सिंह ने कहा भी है कि "अपने यहां कहानी, उपन्यास, नाटक, रेखाचित्र, डायरी, संस्मरण आदि विविध गद्य रूपों तथा कविता के बीच काफी विनिमय हुआ है।

शैली–प्रयोग

आज लेखन में अनेक शैलियों का प्रयोग हो रहा है। मिश्रित शैली के प्रयोग को ही नामवर जी ने शिल्प की साधना कहा है।

डायरी शैली– डायरी शैली में लेखक स्वयं से जुड़ी घटनाओं, विचारों, भावनाओं आदि के साथ–साथ दूसरे पात्रों के बारे में भी अपने विचार प्रकट करता है। हरिशंकर परसाई की व्यंग्य–कथाएं 'दस दिन का अनशन', 'और वे सुख से नहीं रहे' तथा नरेश मेहता की 'तिष्यरक्षिता की डायरी' इसी शैली में लिखी गई है।

पत्र–शैली– आज हिंदी में पत्र शैली का चलन भी चल पड़ा है। इनमें आत्मीयता का पुट आ जाता है। लेकिन पत्र–लेखक के दृष्टिकोण से लिखे जाने के कारण इसमें वातावरण–चित्रण व तटस्थ दृष्टि का अभाव मिलता है।

चित्र–शैली– कथ्य को सजीवता प्रदान करने के लिए आज का रचनाकार चित्रात्मक शैली का प्रयोग भी कर रहा है। यह शैली लेखक की सूक्ष्म चित्रण–क्षमता की परिचायक है। निर्मल वर्मा की 'जलती झाड़ी' कहानी में यही विशेषता मिलती है। कमलेश्वर की 'खोई हुई दिशाएं' में 'टी हाउस' की सजीव झांकी शब्दों द्वारा ही मिल जाती है। चित्रात्मक शैली की खूबी रेणु की 'तीसरी कसम', निर्मल वर्मा की 'परिंदे', राजेंद्र यादव की 'किनारे से किनारे तक' आदि में देखने को मिलती है।

हिंदी में प्रचलित वर्तमान शैलियां

हिंदी में 'शैली–चिंतन' की परंपरा रही है। किसी भी विधा में शैली के भिन्न रूपों की पहचान के लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी तक ने इनमें से कुछ पर विचार किया है। हिंदी परंपरा से प्राप्त साहित्यिक शैली के प्रकारों का मिलाजुला रूप अगले पृष्ठ में ग्राफ के माध्यम से दर्शाया जा रहा है–

टिप्पणी

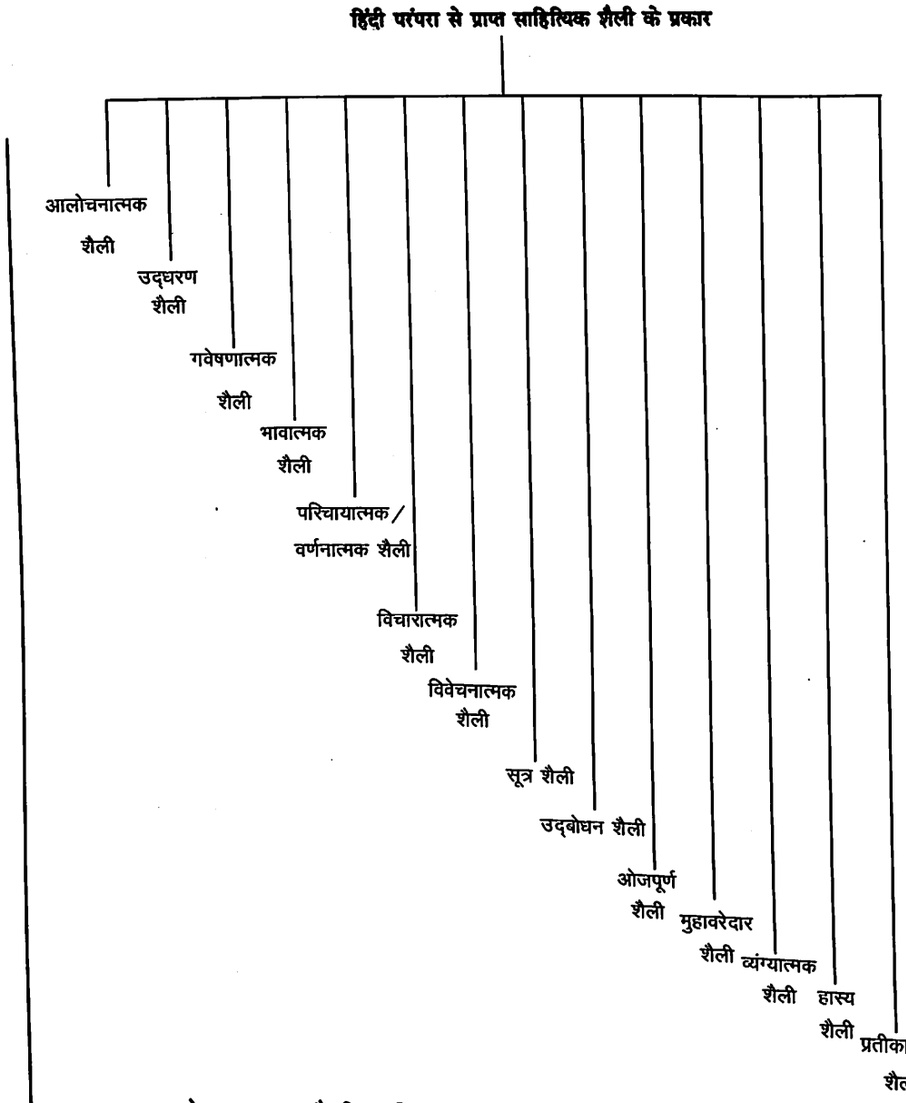

1. **आलोचनात्मक शैली** : जिसमें किसी विषय, वस्तु, परिस्थिति, मत, घटना के गुण–दोषों की परीक्षा की जाए।
2. **उद्धरण शैली** : जिसमें अन्य लेखकों के वाक्यों, चिंतकों–नेताओं की पंक्तियों, लोकगीतों या कविता की पंक्तियों, सूक्तियों–सुभाषितों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाए।
3. **गवेषणात्मक शैली** : जिसमें किसी विषय पर तर्क देते हुए कुछ नई बात कही जाए।
4. **भावात्मक शैली** : जिसमें भावना के प्रवाह में लेखक गद्य में भी काव्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है।
5. **परिचायात्मक/वर्णनात्मक शैली** : जिसमें किसी विषय, घटना, विचार, पात्र, प्रकृति का विस्तार से वर्णन हो।
6. **विचारात्मक शैली** : जिसमें विचारों या दर्शन की प्रधानता हो।

7. **विवेचनात्मक शैली** : जिसमें विषय के अंग–प्रत्यंग को विवेचित किया गया हो।
8. **व्यंग्यात्मक शैली** : जिसमें व्यंग्य की प्रधानता हो।
9. **सूत्र शैली** : जिसमें सूत्र के रूप में या कम–से–कम शब्दों में बड़ी बात को संक्षेप में कहा जाए।
10. **उद्बोधन शैली** : जिसमें लेखक एक उपदेशक के रूप में पाठक को संबोधित करता है, उसे प्रेरित करता है।
11. **ओजपूर्ण शैली** : जिसमें शालीनता, श्रेष्ठता, शौर्य, वीरता, सत्यप्रियता, त्याग, बलिदान आदि के भाव प्रेरक ढंग से प्रस्तुत किए जाएं।
12. **मुहावरेदार शैली** : जिसमें स्थानीय कथनों–अभिव्यक्तियों तथा मुहावरों का सर्जनात्मक प्रयोग हो।
13. **हास्य शैली** : जिसमें स्थिति, व्यक्ति और घटना का इस तरह प्रेषण हो कि हास्य उत्पन्न होता हो।
14. **प्रतीकात्मक शैली** : जिसमें मूर्त–अमूर्त, दृश्य–अदृश्य, मानसिक–शारीरिक वस्तुओं या अवस्थाओं को प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया जाए। विशेष्य–विशेषण तथा उपमान–उपमेय संबंध जिसमें प्रमुख हों।

4.5.2 भाषा का मानकीकरण

हिंदी में 'मानक भाषा' के अर्थ में पहले 'साधु भाषा', 'टकसाली भाषा', 'शुद्ध भाषा', 'आदर्श भाषा' तथा 'परिनिष्ठित भाषा' आदि का प्रयोग होता था। अंग्रेजी शब्द 'स्टैंडर्ड' के प्रतिशब्द के यप में मान शब्द के स्थिरीकरण के बाद 'स्टैंडर्ड लैंग्विज' के अनुवाद के रूप में 'मानक भाषा' शब्द चल पड़ा। अंग्रेजी 'स्टेंडर्ड' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग इसे 'स्टैंड' (खड़ा होना) से जोड़ते हैं तो कुछ लोग एक्सटैंड 'बढ़ाना' से। 'मानक भाषा' भी अमानक भाषा–रूपों से अलग एक प्रतिमान का काम करती है। उसी के आधार पर किसी के द्वारा प्रयुक्त भाषा की मानकता अमानकता का निर्णय किया जाता है।

'मानक भाषा' को लोगों ने तरह–तरह से स्पष्ट करने का यत्न किया है। रॉबिन्स (1966) के अनुसार सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लोगों की बोली को मानक भाषा का नाम दिया जाता है।

भाषा को एक मानक रूप देना भाषा का मानकीकरण कहलाता है। ऐसा रूप जिसमें प्राप्त सभी विकल्पों में एक को मानक मान लिया गया हो तथा जिस भाषा रूप को उस भाषा के सारे बोलने वाले मानक स्वीकार करते हों। यह बात ध्यान देने की है कि सारे विश्व की अधिकांश समुन्नत भाषाओं का मानक रूप होता है, जबकि अवभाषा (वर्नाक्यूलर), बोली क्रियोल आदि का मानक रूप नहीं होता। मानकीकरण के कारण ही कई भाषा अपने पूरे क्षेत्र में शब्दावली तथा व्याकरण की दृष्टि से समरूप होती है, इसीलिए वह सभी लोगों के लिए बोधगम्य भी होती है। साथ ही वह सभी लोगों द्वारा मान्य होती है, अतः अन्य भाषा रूपों की तुलना में वह अधिक प्रतिष्ठित भी होती है। भाषा का प्रयोक्ता कोई समाज हो जिसमें बोलचाल तथा लेखन आदि में उस भाषा का प्रयोग होता हो।

टिप्पणी

टिप्पणी

मानक भाषा स्वायत्तता होती है। उसे अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य भाषा पर निर्भर नहीं होना पड़ता। सामान्यतः भाषाएं स्वायत्तता होती हैं, किंतु बोलियां स्वायत्त नहीं होतीं, वे अपने अस्तित्व के लिए भाषा पर निर्भर करती हैं। इसीलिए हमें प्रत्येक बोली के लिए यह कहना पड़ता है कि वह बोली अमुक भाषा की है किंतु भाषा के संबंध में ऐसी कोई बाध्यता नहीं है। बोली में मानकता तथा स्वायत्तता नहीं होती।

किसी भी भाषा को मानक रूप देने के मूल में कुछ बातें महत्वपूर्ण होती हैं जिनका वर्णन यहां किया जा रहा है–

1. मानकता का आधार कोई व्याकरणिक या भाषा वैज्ञानिक तथ्य अथवा नियम नहीं होते। इसका आधार मूलतः सामाजिक स्वीकृति है। समाज विशेष के लोग भाषा के जिस रूप को अपनी मानक भाषा मान लें, उनके लिए वही मानक हो जाती है।
2. इस तरह भाषा की मानकता का प्रश्न तत्वतः भाषा विज्ञान का न होकर समाज–भाषा विज्ञान का है। भाषा विज्ञान भाषा की संरचना का अध्ययन करता है, और संरचना मानक भाषा की भी होती है और अमानक भाषा की भी। उसका इससे कोई संबंध नहीं कि समाज किसे शुद्ध मानता है और किसे नहीं। इस तरह मानक भाषा की संकल्पना को संरचनात्मक न कहकर सामाजिक कहना उपयुक्त होगा।
3. जब हम समाज विशेष से किसी भाषा रूप के मानक माने जाने की बात करते हैं, तो समाज से आशय होता है सुशिक्षित और शिष्ट लोगों का वह समाज जो पूरे भाषा–भाषी क्षेत्र में प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण माना जाता है। वस्तुतः उस भाषा रूप की प्रतिष्ठा उसके उन महत्वपूर्ण प्रयोक्ताओं पर ही आधारित होती है। दूसरे शब्दों में उस भाषा के बोलनेवालों में यही वर्ग एक प्रकार से मानक वर्ग होता है।
4. समाज द्वारा मान्य होने के कारण भाषा के अन्य प्रकारों की तुलना में मानक भाषा की प्रतिष्ठा होती है। इस तरह मानक भाषा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है।
5. सामान्यत मानक भाषा मूलतः किसी देश की राजधानी या अन्य दृष्टियों से किसी महत्वपूर्ण केंद्र की बोली होती है, जिसे राजनीतिक अथवा धार्मिक अथवा सामाजिक कारणों से प्रतिष्ठा और स्वीकृति प्राप्त हो जाती है।
6. बोली का प्रयोग अपने क्षेत्र तक सीमित रहता है, किंतु मानक भाषा का क्षेत्र अपने मूल क्षेत्र के बाहर अन्य बोली–क्षेत्रों में होता है।
7. यदि किसी भाषा का मानक रूप है तो साहित्य में, शिक्षा के माध्यम के रूप में, अंतःक्षेत्रीय प्रयोग में तथा सभी औपचारिक परिस्थितियों में उस मानक रूप का ही प्रयोग होता है, अमानक रूप या बोली आदि का नहीं।
8. किसी भाषा के बोलने वाले अन्य भाषा–भाषियों के साथ प्रायः उस भाषा के मानक रूप का ही प्रयोग करते हैं, किसी बोली का अथवा अमानक रूप का नहीं।

'मानक भाषा' किसी भाषा के उस रूप को कहते हैं जो उस भाषा के पूरे क्षेत्र में शुद्ध माना जाता है तथा जिसे उस प्रदेश की शिक्षित और शिष्ट समाज अपनी भाषा का आदर्श रूप मानता है और प्रायः सभी औपचारिक परिस्थितियों में, लेखन में, प्रशासन और शिक्षा के माध्यम के रूप में यथासाध्य उसी का प्रयोग करने का प्रयन्त करता है।

मानक भाषा की विशेषताएं

टिप्पणी

- मानक का अभिप्राय है– आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अलावा अन्य भाषा–भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी काम–काज एवं सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का मानक रूप कहलाता है।
- मानक भाषा किसी देश अथवा राज्य की वह प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहां के शिक्षित वर्ग के द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक व वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है।
- किसी भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर मानक रूप ग्रहण कर लेना, उसका मानकीकरण कहलाता है।
- भाषा के मानकीकरण के तीन सोपान हैं–
  1. **प्रथम सोपान : 'बोली'–** पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली बोली का होता है, जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द भंडार सीमित होता है। कोई नियमित व्याकरण नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य–व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।
  2. **द्वितीय सोपान : भाषा–** वही बोली कुछ भौगोलिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक व प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र विस्तार कर लेती है, उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और इसी कारण से वह व्याकरणिक सांचे में ढलने लगती है, उसका पत्राचार, शिक्षा, व्यापार, प्रशासन आदि में प्रयोग होने लगता है, तब वह बोली न रहकर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है।
  3. **तृतीय सोपान : 'मानक भाषा–** यह वह स्तर है जब भाषा के प्रयोग का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक आदर्श रूप ग्रहण कर लेती है। उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। इसी स्थिति में पहुंचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को 'शुद्ध', 'उच्च–स्तरीय', 'परिमार्जित' आदि भी कहा जाता है।

मानक भाषा के तत्व

1. ऐतिहासिकता
2. स्वायत्तता
3. केंद्रोन्मुखता
4. बहुसंख्यक प्रयोगशीलता
5. सहजता/बोधगम्यता

टिप्पणी

6. व्याकरणिक साम्यता

7. सर्वविध एकरूपता

मानकीकरण का एक प्रमुख दोष यह है कि मानकीकरण करने से भाषा में स्थिरता आने लगती है जिससे भाषा की गति अवरुद्ध हो जाती है।

भाषा को मानक रूप देने की जरूरत अनेक कारणों से महसूस हुई। उनमें सामाजिक आवश्यकता, प्रेस का प्रचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से एकरूपता के प्रति रुझान तथा स्व की अस्मिता आदि मुख्य हैं। मानक भाषा की सामाजिक आवश्यकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता। किसी भी क्षेत्र को लें, सभी बोलियों में प्रशासन साहित्य रचना, शिक्षा देना या आपस में बातचीत कठिन भी है, अव्यावहारिक भी, इसलिए मानक भाषा का महत्व और भी बढ़ जाता है। हिंदी भाषा की बीस–पच्चीस बोलियों में ऐसा करना संभव नहीं है। आज एक क्षेत्र की भाषा बोलने वाले लोग हिंदी भाषा के माध्यम से दूसरे क्षेत्र की भाषा बोलने वाले से बातचीत करता है किंतु यदि मानक हिंदी न होती तो दोनों एक दूसरे की बात समझ न पाते। सभी बोलियों में अन्य बोलियों के साहित्य का अनुवाद भी साधनों की कमी से बहुत संभव नहीं है, ऐसी स्थिति में एक क्षेत्रीय भाषा के साहित्य का आनंद दूसरा क्षेत्रीय भाषा नहीं ले सकते थे। नागार्जुन (मैथिली भाषी) के साहित्य का आनंद कुमायुंनी, गढ़वाली या हिरयाणी भाषा लोग कभी नहीं ले पाते। इस तरह सभी बोलियों के ऊपर मानक भाषा को आरोपित करना, उसकी सामाजिक अनिवार्यता है।

गतिविधि

हिंदी खड़ी बोली के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।

क्या आप जानते हैं?

भारत का संविधान दुनिया का सबसे बड़ा लिखित संविधान है जिसमें अब 460 अनुच्छेद तथा 12 अनुसूचियां हैं और ये 25 भागों में विभाजित हैं। भारत के मूल संविधान के निर्माण के समय इसमें 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों में विभाजित थे और केवल 8 अनुसूचियां थीं।

4.6 सारांश

खड़ी बोली के विकास का इतिहास भाषाई संघर्ष का इतिहास है। अंग्रेजों के भारत आगमन और शिक्षा के प्रसार के साथ खड़ी बोली गद्य का विकास हुआ। खड़ी बोली साहित्य की सूचना तेरहवीं शताब्दी में मिलती है। इनसे पहले भी इसके पूर्व रूप के कुछ लक्षण प्राप्त होते हैं। नाथ–सिद्धों और निरंजनी संप्रदाय के साधुओं से प्राप्त कई रचनाओं में खड़ी बोली गद्य के प्रारंभिक रूप के मूल्यांकन का प्रयास हुआ है। इस दृष्टि से कतिपय विद्वान गोरखनाथ के 'सिष्ट प्रमाण' जैसे ग्रंथों में गद्य के प्रारंभिक रूप को स्वीकार करते हैं। 'महादेव गोरखपुष्टि' 'अभै मात्रा जोग' आदि ग्रंथों में खड़ी बोली के शब्दों और शैली को देखा जा सकता है। सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा गद्य की रचनाएं ही उपलब्ध होती हैं। मध्यकाल में ब्रजभाषा गद्य के दर्शन होते हैं। मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल से 62 वर्ष पहले ही खड़ी बोली का गद्य अत्यधिक पुष्ट एवं परिमार्जित था। खड़ी बोली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। देहरादून के मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, मेरठ, दिल्ली, गाजियाबाद, बिजनौर, रामपुर एवं मुरादाबाद में यह बोली जाती है।

हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास में अंग्रेजों के योग को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता। ईस्ट इंडिया कंपनी को राज्य व्यवस्था सुचारू रूप से संचालित होने के लिए यह अनिवार्य था कि शासितों से संपर्क स्थापित किया जाए। इस संपर्क के लिए अंग्रेजों के सामने तीन प्रमुख भाषाएं थीं जिनके माध्यम से वे कार्य संचालन करते– अंग्रेजी, संस्कृत, अरबी व फारसी भाषाएं तथा लोक भाषाएं।

कंपनी अंग्रेजी भाषा का आधिकारिक प्रचार करना चाहती थी, किंतु सामान्य जनता इससे सर्वथा अपरिचित थी। संस्कृत का प्रचार हिंदुओं के उच्च वर्ग में था। वह सांस्कृतिक भाषा थी। उसमें नवीन ज्ञान–विज्ञान की विशिष्ट शब्दावली का प्रचलन न था। अरबी और फारसी का प्रयोग मुगल शासनकाल में कचहरियों में अवश्य होता था, शासक वर्ग भी इससे परिचित था, किंतु जनसाधारण में इसका भी अधिक प्रचार न था। इन कारणों से कंपनी की भाषा नीति बहुत दिनों तक अस्थिर रही। ईस्ट इंडिया कंपनी की लिपि संबंधी नीति भी पर्याप्त अस्थिर रही है। जॉन गिलक्रिस्ट महोदय 'रोमन' लिपि के पक्षपाती थी। वे हिंदुस्तानी के लिए रोमन लिपि का ही प्रयोग समीचीन मानते थे। उन्होंने 'फारसी' व 'नागरी' दोनों लिपियों को त्रुटिपूर्ण बताया। रोमन के बाद वे फारसी का समर्थन करते थे। वस्तुतः रोमन व फारसी दोनों लिपियां भारतीय ध्वनियों को व्यक्त करने में समर्थ न थीं। अतः बाध्य होकर कंपनी को नागरी लिपि अपनानीं पड़ी।

हिंदी खड़ी बोली के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इस कॉलेज की भाषा–नीति ईस्ट इंडिया कंपनी की भाषा नीति से अभिन्न रही है। उस समय खड़ी बोली और हिंदुस्तानी में भेद था। हिंदुस्तानी उर्दू से अभिन्न थी। दूसरे यह कि अरबी–फारसी शब्दों से रहित खड़ी बोली का एक रूप फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पहले से चला आ रहा था। गिलक्रिस्ट महोदय ने अपनी प्रथम कृति 'ए डिक्शनरी ऑव इंगलिश ऐंड हिंदुस्तानी' की विस्तृत भूमिका में भी अपनी भाषा नीति प्रकट की है। इस बृहत कोश में हिंदुस्तानी कहे जाने वाले शब्द अधिकांशतः अरबी और फारसी भाषाओं से लिए गए हैं।जॉन गिलक्रिस्ट साहब द्वारा पोषित हिंदुस्तानी न तो सिपाहियों की समझ में आती थी और न जनसाधारण के लिए ही बोधगम्य थी। फलतः कॉलेज की भाषा नीति में परिवर्तन अनिवार्य हो गया। 25 जुलाई सन् 1815 ई. में वार्षिकोत्सव के समय ऑनरेबुल एन.बी. एडमॉन्सटन ने इस आवश्यकता की ओर अध्यापकों तथा अन्य उपस्थित व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित किया। 1823 ई. में विलियम प्राइस महोदय हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके समय में कॉलेज की भाषा नीति में महान अंतर लक्षित होता है। उन्होंने हिंदुस्तानी के स्थान पर 'हिंदी खड़ी बोली' (आधुनिक अर्थ में) को मान्यता दी।

टिप्पणी

टिप्पणी

फोर्ट विलियम कॉलेज में विविध हिंदी पुस्तकें लिखी गईं। संवत् 1860 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदी–उर्दू अध्यापक जान गिलक्रिस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की तो उनके इस प्रयास से उर्दू से हिंदी का स्वतंत्र रूप सामने आया। इसके अंतर्गत लल्लूलाल ने 'प्रेम सागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। लल्लूलाल ने लगभग 11 कृतियों की रचना की पर हिंदी गद्य की दृष्टि से 'प्रेमसागर' का विशेष महत्व है। फोर्ट विलियम कॉलेज के बाहर भी खड़ी बोली में गद्य रचना होती रही। इस प्रकार आश्रय में रहे बिना जो लोग इस प्रकार खड़ी बोली के गद्य की श्रीवृद्धि में लगे थे उनमें 'मुंशी सदासुखलाल तथा इंशाअल्ला खां उल्लेखनीय हैं। खड़ी बोली हिंदी के इस विकास का लाभ ईसाई धर्मप्रचारकों ने जमकर उठाया। अपने मतों का प्रचार–प्रसार आम जनता में करने के लिए उन्होंने हिंदी भाषा को उपयुक्त माध्यम समझा और वे अपनी इस मुहिम में सफल भी हुए। ईसाई प्रचारकों ने विशुद्ध हिंदी का प्रयोग बाइबिल तथा अन्य पुस्तकों के अनुवाद में भी किया। ईसाई उपदेशक जब हिंदू धर्म की स्थूल और बाहरी बातों को लेकर अपने विचार प्रकट करने लगे तो राजा राममोहन से यह देखा नहीं गया। वे वेदांत और उपनिषदों के ज्ञान के प्रचार के लिए सामने आए। संवत् 1872 में उन्होंने वेदांत सूत्रों के भाष्य का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करवाया और संवत् 1886 में 'बंगदूत' नामक संवाद पत्र का प्रकाशन हिंदी भाषा में किया।

अदालती भाषा उर्दू बनाई जाने पर भी विक्रम की बीसवीं शताब्दी के आरंभ के पहले से ही हिंदी खड़ी बोली गद्य की परंपरा हिंदी साहित्य में अच्छी तरह चल पड़ी। उसमें पुस्तकें छपने लगीं, अखबार निकलने लगे। सरकार का ध्यान देशी भाषाओं की शिक्षा की ओर गया तो वह मदरसों एवं शिक्षा संस्थानों में हिंदी भाषा को माध्यम बनाने पर विचार करने लगी। परंतु हिंदी को अदालत से बाहर करने में सफल हुए मुस्लिम समुदाय ने इसका प्रबल विरोध किया। यहां तक कि तंग आकर सरकार को अपना विचार छोड़ना पड़ा। इस प्रकार हिंदी के विरोध की यह चेष्टा बराबर बढ़ती गई। राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु के समय तक हिंदी–उर्दू का झगड़ा चलता रहा। गार्सां द तासी ने भी फ्रांस में बैठे–बैठे इस झगड़े में योग दिया। राजा शिवप्रसाद को हिंदी की रक्षा के लिए बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। हिंदी का सवाल जब आता तब मुसलमान उसे 'मुश्किल जबान' कहकर विरोध करते। राजा साहब को उस समय यही संभव दिखाई दिया कि जहां तक हो सके ठेठ हिंदी का आश्रय लिया जाए जिसमें कुछ फारसी–अरबी के चलते शब्द भी आएं। उस समय साहित्य के कोर्स के लिए पुस्तकें नहीं थीं। राजा साहब स्वयं तो पुस्तकें तैयार करने में लग ही गए, पं. श्रीलाल और पं. वंशीधर आदि अपने कई मित्रों को भी उन्होंने पुस्तकें लिखने में लगाया। इधर भारत की देशभाषाओं के अध्ययन की ओर इंग्लैंड के लोगों का भी ध्यान आकर्षित हुआ। अध्ययनशील और विवेकी लोग जो लोग जो अखंड भारतीय साहित्य परंपरा से परिचित थे हिंदी भाषा के महत्व को समझते थे। इस संदर्भ में अंग्रेज विद्वान फ्रेडरिक पिंकाट का नाम महत्वपूर्ण एवं अविस्मरणीय है। उन्हें प्रेस के कामों का बहुत अच्छा अनुभव था। अपने जीवन के अंतिम दिनों तक वे भारतीय साहित्य और भारतीय जनहित के लिए बराबर उद्योग करते रहे।

इधर पंजाब में बाबू नवीनचंद्र राय ने संवत् 1920 और 1937 के बीच भिन्न–भिन्न विषयों की बहुत–सी हिंदी पुस्तकें तैयार कीं और दूसरों से तैयार करायीं। ये पुस्तकें बहुत

टिप्पणी

दिनों तक वहां कोर्स में रहीं। हिंदी की रक्षा के लिए उन्हें उर्दू के पक्षपातियों से उसी प्रकार लड़ना पड़ता था जिस प्रकार यहां राजा शिवप्रसाद को। नवीन चंद्र राय ने सैयद खां के विचारों का विरोध कर उर्दू के स्थान पर हिंदी की वकालत की। इस भाषायी लड़ाई में धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी गद्य की भाषा की दिशा भी तय हो रही थी। कुल मिलाकर इस भाषा विवाद के बीच हिंदी भाषा निरंतर चर्चा में रही और इसका परिणाम यह हुआ कि इसकी अनिवार्यता भी समझी जाने लगी।

राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद हिंदी को व्यापक स्वीकृति दिलाने के लिए वह हिंदी को सरलता की ओर ले जाने के लिए उर्दू की शब्दावली लाने लगे। उनका विचार था कि "हम लोगों को जहां तक बन पड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिए जो आमफहम खास पसंद हों अर्थात जिनको ज्यादा आदमी समझ सकते हों। राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद लिपि तो देवनागरी पसंद करते थे, किंतु भाषा के संबंध में उनका रुख दूसरा ही था। वे वास्तव में हिंदी को उर्दू बनाना चाहते थे। इन्होंने हिंदी और उर्दू को समीप लाने की चेष्टा में हिंदी को उर्दू से भर दिया। राजा शिवप्रसाद ने अनेक पाठ्यक्रमों की रचना भी की और हिंदी को शिक्षा जगत में आगे बढ़ाया। उनके प्रयास से भाषा पंडिताऊपन से मुक्त हुई। वर्तनी में एकरूपता नहीं आ सकी।

राजा लक्ष्मण सिंह का भाषा विषयक आदर्श राजा शिवप्रसाद से सर्वथा विपरीत था। ये विशुद्ध हिंदी के पक्षधर थे। ये उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते थे। शकुंतला, रघुवंश तथा मेघदूत इन तीन अनुवाद ग्रंथों में भी उन्होंने अपना भाषा विषयक आदर्श वही रखा। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा के विषय में आचार्य शुक्ल कहते हैं– यह भाषा ठेठ और सरल होते हुए भी साहित्य में चिरकाल से व्यवहृत संस्कृत के कुछ रससिद्ध शब्द लिए हुए हैं। निश्चय ही राजासाहब ने परंपरागत हिंदी के विशुद्ध रूप की रक्षा का पूर्ण प्रयत्न किया, किंतु युगानुकूल नवचेतना के वाहक लोकप्रचलित विदेशी शब्दों को भी उन्होंने हिंदी से अलग रखा। राजा शिवप्रसाद व राजा लक्ष्मणसिंह की विरोधी नीतियों का परिणाम यह हुआ कि हिंदी के स्वरूप को लेकर साहित्य क्षेत्र में दो विरोधी मत उठ खड़े हुए। एक उर्दू का समर्थक हुआ तो दूसरा हिंदी का पक्षपाती। कुछ लोगों ने मध्य का मार्ग लिया। हिंदी का जोरदार समर्थन आर्य समाजियों एवं ब्रह्म समाजियों ने किया।

भारतेंदु ने हिंदी गद्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सन् (1883–84 ई.) के लगभग 'हिंदी भाषा' नामक एक छोटी–सी पुस्तिका प्रकाशित की। भारतेंदु ने वास्तव में शिवप्रसाद सितारेहिंद एवं राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृतनिष्ठ हिंदी के बीच में से ही मध्यम मार्ग निकाला। भाषा में न पंडिताऊपन हो और न उर्दू शैली की क्लिष्टता। भाषा में से हिंदीपन न जाने पाए, इस बात का भरसक प्रयत्न किया। खड़ी बोली को क्लिष्ट प्रयोगों और पंडिताऊपन से मुक्त रखा। साधु शैली का रूप निश्चित किया।' 'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल' का मंत्र देने वाले भारतेंदु की सर्वत्र प्रशंसा हुई। भारतेंदु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तो हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। भाषा का स्वरूप स्थिर हो गया। भारतेंदु ने एक साथ कई गद्य शैलियों को अपनाया। भारतेंदु की भाषा में सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है और चुभता व्यंग्य भी। फारसी शब्दों से भी उन्हें परहेज नहीं था।

टिप्पणी

अयोध्या प्रसाद खत्री के लेखन में पद्य की छाप गद्य पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। गद्य लिखते समय भी खत्री जी का धारा प्रवाह वस्तुतः पद्यात्मक ही रहता है। पद्य की सी लहर, शब्द संगठन, भावभंगी एवं माधुर्य उनके गद्य में भी मिलता है। गद्यात्मक सौष्ठव का ह्रास और पद्यात्मक विभूति की उत्कृष्टता इनके गद्य में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इनकी भाषा व्यंजना एवं शब्दों के विशिष्ट प्रयोगों से काव्यात्मक आनंद की अनुभूति होती है। वस्तुतः यह शैली गद्य काव्य में यदि प्रयुक्त होती तो विशेष सुंदर ज्ञात होती। अयोध्या जी ने केवल साहित्यिक गद्य की रचना की हो ऐसी बात नहीं है। साधारण जनता के लिए ठेठ भाषा के निर्माण में भी वे सफल हुए हैं। इसके अतिरिक्त अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वे मुहावरेदार पद्य व गद्य का निर्माण करते रहे। उनकी इस भाषा शैली में एक प्रकार की विशेष सजीवता परिलक्षित होती है। कहीं–कहीं तो सारी भावव्यंजना ही मुहावरों में हुई है। ऐसे स्थानों पर भाषा गठित व उसमें साहित्यिकता व गाम्भीर्य न होकर एक प्रकार की चटपटी व्यंजकता दिखाई पड़ती है।

विचार प्रधान निबंधों के रचयिता के रूप में बालकृष्ण भट्ट विशेष महत्व रखते हैं। प्रताप नारायण मिश्र जी की तुलना में उनमें नागर संस्कार प्रबल दिखाई देता है। भट्ट जी ने अपने लेखन से हिंदी को गौरव दिलाया और दिखा दिया कि खड़ी बोली भी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। इन्होंने यथार्थतः प्रताप नारायण मिश्र की अपेक्षा अधिक शिष्ट भाषा लिखने की चेष्टा की है। किसी विशेष भाषा से शब्द ग्रहण की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। फिर भी उन्होंने अंग्रेजी से पर्याप्त संख्या में शब्द ग्रहण किए। अप्रचलित अंग्रेजी शब्दों का उन्होंने पर्याय भी दिया है।

भाषा को मानक रूप देने की जरूरत अनेक कारणों से महसूस हुई। उनमें सामाजिक आवश्यकता, प्रेस का प्रचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से एकरूपता के प्रति रुझान तथा स्व की अस्मिता आदि मुख्य हैं। मानक भाषा की सामाजिक आवश्यकता से भी इनकार नहीं किया जा सकता। किसी भी क्षेत्र को लें, सभी बोलियों में प्रशासन साहित्य रचना, शिक्षा देना या आपस में बातचीत कठिन भी है, अव्यावहारिक भी, इसलिए मानक भाषा का महत्व और भी बढ़ जाता है।

कुल मिलाकर हम देखते हैं कि खड़ी बोली हिंदी को जन–जन तक पहुंचाने में सर्वप्रथम खड़ी बोली का अरबी–फारसीमय रूप भी सामने आया। इस भाषाई आंदोलन का नेतृत्व एक ओर बुद्धिजीवियों, रचनाकारों और समाज सुधारकों ने किया तो दूसरी ओर युगीन पत्र–पत्रिकाओं ने जमकर इसका समर्थन किया। इसका परिणाम यह रहा कि खड़ी बोली को भाषायी स्थायित्व मिलने लगा। खड़ी बोली का गद्य प्राचीन काल से ही स्वाभाविक रूप से जनता के मध्य विकसित होता रहा है और लगातार अपनी विकास यात्रा तय करता जा रहा है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **संवत** : वर्ष, साल, गणना, क्रमवाली, काल गणना
- **परिमार्जित** : साहित्यिक त्रुटियों रहित
- **समीचीन** : उचित, न्याय संगत
- **अभिहित** : कहा हुआ, उल्लिखित
- **च्युत** : पतित
- **परिनिष्ठित** : पूर्णतया कुशल
- **राग द्वेष** : प्रेम और ईर्ष्या
- **बोधगम्य** : समझ में आने लायक
- **खेदित** : दुखी, शिथिल
- **परिष्कृत** : सुधरा हुआ, जैसे परिष्कृत भाषा
- **बुतपरस्त** : मूर्ति पूजक (मूर्ति की पूजा करने वाले)
- **युगानुकूल** : युग के अनुसार
- **समसामयिक** : समकालीन (एक ही समय का)
- **संप्रेषित** : भेजना, पहुंचाना
- **वैविध्यता** : भिन्नता, विविधता
- **प्रतिपदिक** : मूल और रूढ़ शब्द
- **वैयाकरण** : व्याकरण का ज्ञाता
- **गत्यात्मकता** : गतिशीलता

टिप्पणी

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. गद्य
2. मेकाले
3. गलत
4. सही
5. 1800
6. गवर्नर जनरल
7. सही
8. गलत
9. देवनागरी
10. विपरीत
11. सही
12. गलत
13. 1883–1884

14. पद्यात्मक
15. श्री बालकृष्ण भट्ट
16. सही
17. सही
18. सही

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. खड़ी बोली गद्य के विकास में योगदान देने वाले प्रमुख व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. गिलक्रिस्ट की भाषा नीति पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।
3. पं. अयोध्या प्रसाद खत्री की भाषा शैली अपने समकालीनों से किस प्रकार भिन्न थी स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. खड़ी बोली के उद्भव और विकास यात्रा का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. हिंदी गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की भूमिका एवं योगदान का विवेचन कीजिए।
3. भाषा विवाद से आप क्या समझते हैं? तत्कालीन संदर्भों में इसकी परिणति की व्याख्या कीजिए।
4. भाषा विवाद के बीच हिंदी भाषा के स्वरूप निर्धारण में विभिन्न विद्वानों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
5. हिंदी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइए।

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. बाबूराम सक्सेना, *सामान्य भाषा विज्ञान,* हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
2. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, *भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–1986.
3. पं. किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, *भारतीय भाषा विज्ञान,* चौखंबा विद्याभवन वाराणसी – 2016.
4. डॉ. भगीरथ मिश्र, *भाषा विवेचन,* साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद–1990.
5. डॉ. भगीरथ मिश्र, हिंदी भाषादर्श, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1977.
6. डॉ. श्यामसुंदर दास, *भाषा विज्ञान,* प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली–2009.

इकाई 5 देवनागरी लिपि

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 देवनागरी लिपि का नामकरण
5.3 देवनागरी लिपि का उद्भव और विकास
  5.3.1 देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा के रूप में विकास
  5.3.2 नागरी अंकों एवं नागरी लिपि की उत्पत्ति
5.4 देवनागरी लिपि का मानकीकरण
  5.4.1 देवनागरी लिपि का स्वरूप तथा गुण एवं दोष
  5.4.2 देवनागरी के प्रचार–प्रसार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भूमिका
5.5 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता
5.6 देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाएं
  5.6.1 नागरी लिपि सुधार : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
  5.6.2 नागरी प्रचारिणी सभा एवं लिपि सुधार
  5.6.3 आचार्य नरेंद्र देव समिति के सुझाव
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

भाषा की उत्पत्ति की तरह ही लिपि की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। लिपि भाषा और विचारों की अभिव्यक्ति का मूर्त माध्यम है। यह मनुष्य के दृश्य संवाद की पद्धति है जिसमें उन विभिन्न चिह्नों और प्रतीकों का उपयोग किया जाता है, जिनका संबंध भाषा से होता है। यह विचारों के आदान–प्रदान को सक्षम बनाती है। प्रारंभ में जादू टोने की खींची गई लकीरें, धार्मिक प्रतीकों के चित्र, पहचान के लिए बरतनों इत्यादि पर बनाए गए चित्र, किसी वस्तु को अलंकृत करने के लिए बनाए गए चित्र आदि लिपि की मूल सामग्री कहे जा सकते हैं। वाचिक अर्थात ध्वन्यात्मक भाषा क्षणस्थायी होती है। उसे स्थायित्व देने की भावना से ही लिपि का आविर्भाव हुआ। लिपि ने भाषा को देश और काल के बंधन से मुक्त कर दिया और भाषा की क्षणस्थायिता को चिरस्थायिता में परिणत कर दिया।

भाषा की उत्पत्ति की तुलना में लिपि की उत्पत्ति बहुत बाद की चीज है। भाषा आज से लाखों वर्ष पहले उत्पन्न हुई, किंतु लिपि का इतिहास पांच–छह हजार वर्ष के पहले का नहीं है। वास्तव में भाषा का संबंध जीवन से है और लिपि का संबंध सभ्यता के विकास से– बिना लिपि के भी मनुष्य का कार्य चल सकता है लेकिन भाषा के बिना नहीं। आज भी संसार में ऐसे मनुष्य हैं जो पढ़े–लिखे नहीं हैं, किंतु भाषा का प्रयोग करते हैं।

टिप्पणी

नागरी लिपि बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय लिपि है। नागरी अर्थात नगर के बुद्धिमान, चतुर, शिष्ट जनों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द को भी इसके नामकरण का एक कारण मान सकते हैं। शिक्षा शास्त्रियों एवं भाषा वैज्ञानिकों ने इसकी वैज्ञानिकता की सराहना की है। नागरी को देवनागरी कहा जाता है। इस इकाई में आप देवनागरी लिपि के इतिहास, नामकरण, उद्‌भव, विकास, मानकीकरण, वैज्ञानिकता एवं देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

भारतीय सभ्यता के विकास में देवनागरी लिपि का महत्वपूर्ण स्थान है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- देवनागरी लिपि के नामकरण, उद्‌भव एवं विकास की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- देवनागरी लिपि के मानकीकरण एवं वैज्ञानिकता से अवगत हो पाएंगे;
- देवनागरी लिपि के स्वरूप, गुण, दोष की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे;
- देवनागरी लिपि में सुधार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अवगत हो पाएंगे;
- विभिन्न समितियों द्वारा सुझाए गए लिपि संशोधनों से परिचित हो पाएंगे।

5.2 देवनागरी लिपि का नामकरण

विद्वानों ने नागरी या देवनागरी नामकरण को लेकर अनेक विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं –

1. कुछ विद्वानों का विचार है कि इसका विकास गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने किया था और उसी के आधार पर इसे नागरी कहा जाने लगा।
2. कुछ विद्वान इसे बौद्ध–ग्रंथ 'ललित विस्तार' की नाग लिपि से उद्‌भूत मानते हैं। परंतु डॉ. बॉनेट जैसे अनेक विद्वान इसे उपयुक्त नहीं समझते।
3. देवनगर काशी में प्रचलित होने के कारण 'देवनागरी' नाम पड़ा।
4. पहले देवताओं की प्रतिमा के स्थान पर, सांकेतिक चिह्नों के आधार पर ही उनकी उपासना की जाती थी। ये भिन्न प्रकार के त्रिकोणादि चिह्नों के बीच लिखे जाते थे, जिनका नाम देवनगर था। इन त्रिकोणादि चिह्नों के बीच लिखे जाने वाले 'देवनगर' चिह्न ही कालांतर में अक्षरों के रूप में विकसित होकर देवनागर और देवनागरी कहे जाने लगे।
5. देववाणी संस्कृत के लेखन में इसका प्रयोग होता रहा, इसलिए नागरी के साथ 'देव' शब्द जोड़कर देवनागरी कहा जाने लगा।
6. नगरों की संबद्धता के कारण ही यह नागरी कहलाई।

टिप्पणी

7. इस संदर्भ में कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि प्राचीन काल में पाटलिपुत्र को नगर तथा चंद्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहकर संबोधित किया जाता था। अतएव देवनागरी से प्रचलित होने वाली लिपि देवनागरी कहलाई।
8. डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने इस विषय में एक अद्‌भुत कल्पना की है। वे कहते हैं–"मध्ययुग में स्थापत्य की एक शैली थी 'नागर', जिसमें चतुर्भुजी आकृतियां होती थीं। इन चतुर्भुजी लिपियों (प, म, भ, ग, ष) के कारण ही इसे 'देवनागरी' कहा जाने लगा।"

5.3 देवनागरी लिपि का उद्‌भव और विकास

विभिन्न अनुसंधानों के आधार पर यह माना जाता है कि भारत की आधुनिक लिपियों का उद्‌गम स्थल ब्राह्मी लिपि ही है। यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य की आविष्कार–प्रिय तथा परिष्कार–प्रिय बुद्धि एवं युगीन आवश्यकताओं के कारण ही ब्राह्मी का सर्वाधिक विकसित एवं परिमार्जित रूप देवनागरी में देखा जा सकता है। देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी ही संविधान द्वारा भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई। संस्कृत ग्रंथों के मुद्रण में भी देवनागरी लिपि का उपयोग ही सर्वाधिक हुआ है और मराठी तथा नेपाली भाषाओं की लिपि भी यही है। उत्तर भारत में प्रचलित सभी लिपियां थोड़े अंतर के साथ एक तरह से प्रस्तुत देवनागरी के ही भेद हैं। अतएव आज भारत की समस्त लिपियों में इसका स्थान सर्वोपरि है।

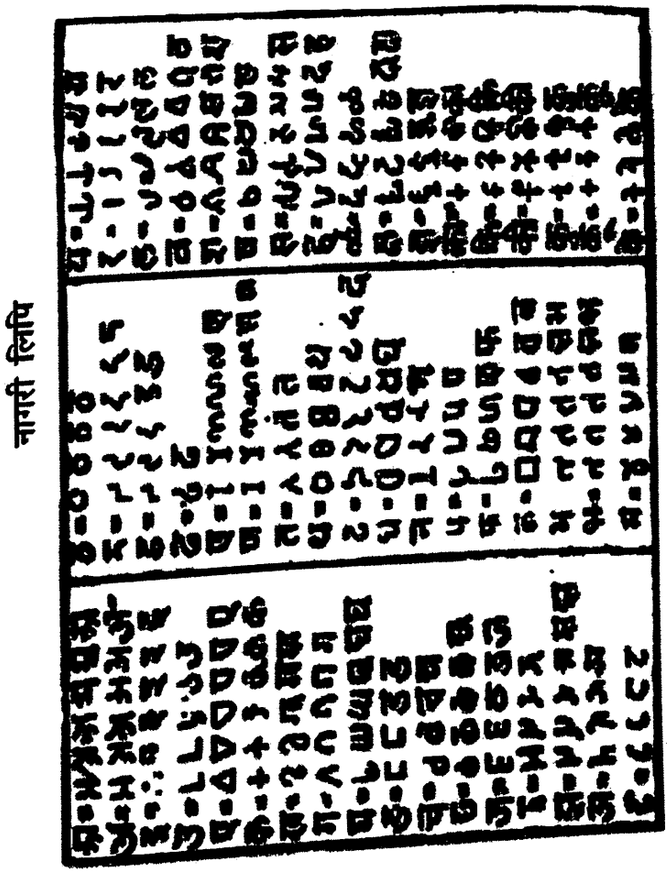

नागरी लिपि

टिप्पणी

अब तक प्राप्त शिलालेखों और अनेक खोजों के आधार पर देवनागरी लिपि का उद्‌भव सातवीं–आठवीं शताब्दी में स्वीकार किया जाता है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के राजा जयभट्‌ट (सातवीं–आठवीं शताब्दी) के एक शिलालेख में देखा गया है। आठवीं शताब्दी में राष्ट्रकूट नरेशों ने तथा नवीं शताब्दी में बड़ौदा नरेश ध्रुवराज ने अपनी राजाज्ञाओं में देवनागरी लिपि का व्यवहार किया है। विजयनगर तथा कोंकण राज्यों में भी सामान्यतया देवनागरी के प्रयोग का संकेत मिलता है। इसे देखकर कुछ विद्वानों का तो यह भी अनुमान है कि इसका विकास दक्षिण–भारत में हुआ और बाद में उत्तर भारत में इसका प्रचार होने लगा।

विद्वान पूर्ण रूप से आश्वस्त हैं कि आधुनिक देवनागरी बारहवीं शताब्दी की इस प्राचीन नागरी से ही विकसित हुई है। इसमें वर्तमान अनेक वर्णों का आधुनिक रूप तेरहवीं शताब्दी पर्यंत निर्मित हो चुका था और सोलहवीं शताब्दी तक लगभग सभी वर्ण अपनी वर्तमान आकृति ग्रहण कर चुके थे।

उत्तरी ब्राह्मी से नागरी लिपि का विकास

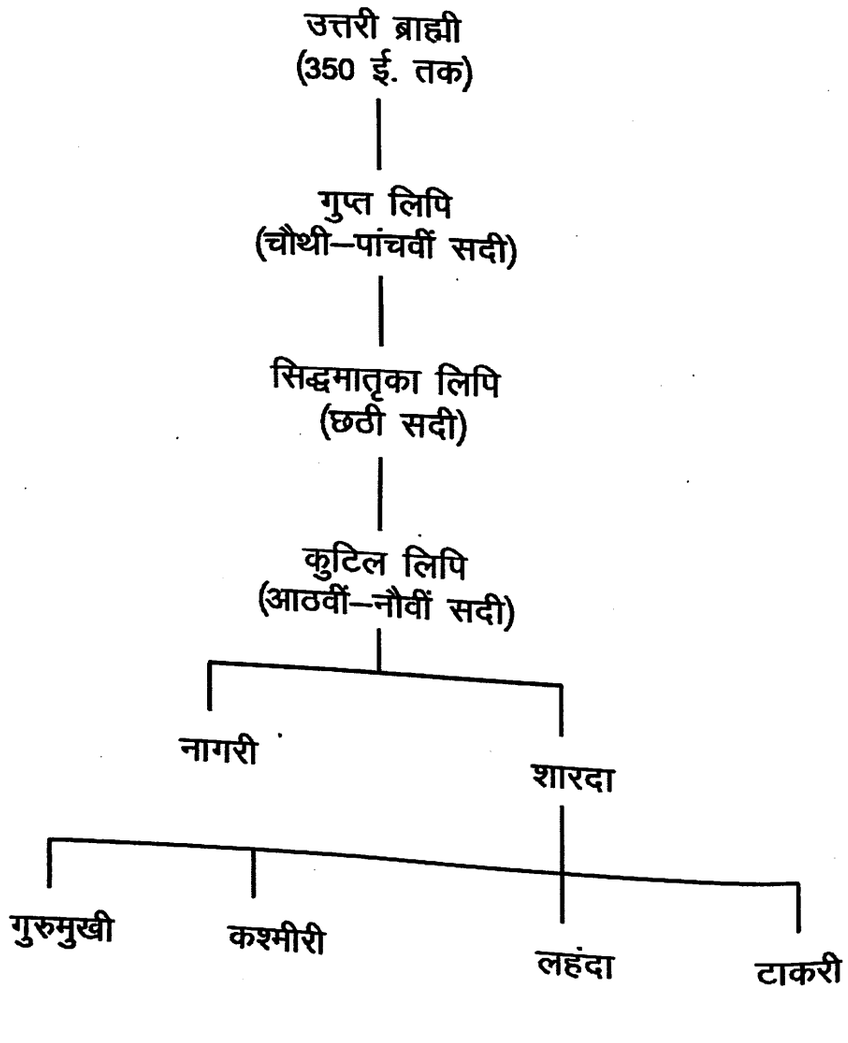

टिप्पणी

5.3.1 देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा के रूप में विकास

देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा की अधिकृत लिपि बनने के रास्ते में कई रुकावटें आईं। अंग्रेजों का भरसक प्रयास रहा कि हिंदी को फारसी लिपि में ही लिखा जाए। जॉन गिलक्रिस्ट फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष थे। गिलक्रिस्ट ने दरबारी अथवा फारसी शैली, हिंदुस्तानी शैली और हिंदवी शैली इन तीन शैलियों को हिंदुस्तानी की शैलियां माना। उनके अनुसार फारसी शैली कठिन थी और हिंदवी शैली गंवारु शैली थी। इसलिए उन्होंने हिंदुस्तानी शैली को प्राथमिकता देते हुए इसके जिस रूप को बढ़ावा दिया उसका मूल आधार हिंदी था। लेकिन उसमें अरबी–फारसी की बहुलता होने के कारण उसे फारसी लिपि में ही लिखा जाता था। इससे ऐसा लगता है कि गिलक्रिस्ट का उद्देश्य हिंदुस्तानी के नाम पर उर्दू का प्रचार–प्रसार करना ही था। गिलक्रिस्ट के बाद विलियम प्राइस फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदुस्तानी विभाग के अध्यक्ष बने। अपने कार्यकाल में उन्होंने गिलक्रिस्ट द्वारा भाषा से संबंधित पैदा की गई भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास किया और हिंदुस्तानी के नाम पर हिंदी पर जोर दिया। विलियम प्राइस के बाद फोर्ट विलियम कॉलेज की ओर से हिंदी के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। 1830 ई. में अंग्रेजी कंपनी ने अदालतों में फारसी के साथ–साथ देशी भाषाओं का प्रयोग करने के लिए एक विज्ञप्ति जारी की गई। लेकिन 1837 ई. से पहले इस विज्ञप्ति पर पूर्णरूपेण अमल नहीं हो सका। 1837 ई. में इस विज्ञप्ति पर सही रूप से अमल होने के बाद बंगाल में बांग्ला भाषा और लिपि का प्रचलन शुरू हो सका। मुसलमानों द्वारा उर्दू का भरपूर समर्थन किया गया। वे नहीं चाहते थे कि अदालतों में हिंदी का प्रयोग किया जाए। अदालतों में ही नहीं शिक्षा में भी हिंदी का प्रयोग करने के खिलाफ उन्होंने आंदोलन किए। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश आदि प्रांतों में हिंदी का प्रचलन शुरु होने पर भी उन्होंने नागरी लिपि के खिलाफ उर्दू लिपि का प्रचार करना शुरू कर दिया। 1857 ई. के विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने हिंदू–मुसलमानों में फूट डालना शुरू कर दिया और हिंदी और उर्दू भाषा को लेकर भेदभाव करना शुरू कर दिया। हिंदू–मुसलमानों की फूट ने अंग्रेजों के लिए सुरक्षा–कवच का कार्य किया। भाषा को लेकर अंग्रेज विद्वान दो दलों में बंट गए। कुछ विद्वानों ने हिंदी के पक्ष में अपने तर्क दिए और कुछ विद्वानों ने उर्दू के पक्ष में। भाषा को लेकर एक विवाद उठ खड़ा हुआ। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने 1868 ई. में अपने लिपि संबंधी प्रतिवेदन 'मेमोरेण्डम कोर्ट कैरेक्टर इन द अपर प्रोविन्स ऑफ इंडिया' द्वारा फारसी लिपि के स्थान पर नागरी लिपि और हिंदी भाषा के लिए प्रथम प्रयास किया। एक अंग्रेज अधिकारी फ्रेडरिक जॉन शोर ने भी अदालतों में हिंदुस्तानी भाषा और देवनागरी लिपि के प्रयोग का समर्थन और फारसी तथा अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का विरोध किया। 1870 ई. में गवर्नर ऐशले द्वारा देवनागरी के पक्ष में एक आदेश जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि ऐसी भाषा लिखी जाए जिसे एक कुलीन हिंदुस्तानी, जो फारसी भाषा नहीं जानता, वह भी उसे आसानी से बोल सके और फारसी पूरित उर्दू न लिखी जाए। 1873 ई. में पटना, भागलपुर, और छोटा नागपुर डिविजनों की अदालतों और कार्यालयों में सभी विज्ञप्तियां और

टिप्पणी

घोषणाएं हिंदी भाषा तथा देवनागरी लिपि में जारी करने का आदेश बंगाल सरकार द्वारा किया गया। 1881 ई. में बिहार और मध्य प्रदेश में नागरी लिपि और हिंदी का प्रयोग करने का सरकारी आदेश लागू किया गया जिसने उत्तर प्रदेश में नागरी आंदोलन को नैतिक रूप से प्रोत्साहित किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा नागरी आंदोलन को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान किए जाने के कारण उन्हें इस आंदोलन का प्रतीक और नेता माना जाने लगा। 1882 ई. में उन्होंने शिक्षा आयोग के प्रश्न–पत्र का जवाब देते हुए कहा–"सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहां न तो अदालती भाषा शासकों की मातृभाषा है और न ही प्रजा की।"

1893 ई. में अंग्रेजी सरकार ने जब भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने की बात की तो इसके विरोध में एक तीव्र प्रतिक्रिया सामने आई। 1893 ई. में ही नागरी प्रचार एवं हिंदी भाषा के संवर्द्धन के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना की गई। इस समिति ने अपना सर्वप्रथम ध्येय अदालतों में नागरी लिपि के प्रयोग को आरंभ कराना ही तय किया। सभा द्वारा 'नागरी कैरेक्टर' नामक एक पुस्तक तैयार की गई। यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में तैयार की गई थी। इस पुस्तक में सभी भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि की क्या उपयुक्तता होगी, इस बारे में बताया गया था। 1897 ई. मदन मोहन में मालवीय ने 'कोर्ट कैरेक्टर एंड प्राइमरी एजुकेशन इन नार्थ–वेस्टर्न प्रोविन्सेज' नाम एक स्वतंत्र पुस्तिका लिखी जिसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। 1898 ई. में प्रांत के तत्कालीन लेफ्टिनेंट गर्वनर जब काशी आए तो नागरी प्रचारिणी सभा के एक प्रभावशाली प्रतिनिधि मंडल ने मालवीय के नेतृत्व में उनसे मुलाकात कर उन्हें एक मेमोरियल दिया। इस मेमोरियल पर हजारों लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। मालवीय के इस अथक प्रयास से अदालतों में नागरी को स्थान प्राप्त हो सका। इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप 18 अप्रैल 1900 ई. को गर्वनर द्वारा अदालतों में फारसी के साथ–साथ नागरी को भी बराबर का अधिकार दे दिया गया। 20वीं शताब्दी में इस लिपि को राष्ट्र लिपि के रूप में सम्मान प्राप्त हुआ।

5.3.2 नागरी अंकों एवं नागरी लिपि की उत्पत्ति

यह निर्विवाद सत्य है कि अंकों की उत्पत्ति सर्वप्रथम भारत में हुई। अरब देश में अंकों को 'हिंदस' या 'हिंदसा' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है हिंदुस्तान से आयातित। जबसे प्राचीन लिपि के चिह्न उपलब्ध हैं, तभी से अंकों के भी चिह्न मिलते हैं। अंकों की दो शैलियां हैं – प्राचीन एवं अर्वाचीन। प्राचीन शैली में शून्य चिह्न (0) नहीं था, दस, बीस, सौ आदि शून्यात्मक संख्या वाली गणनाओं के लिए पृथक अंक प्रचलित थे। नवीन शैली में शून्य की उद्भावना से बड़ी सुगमता हो गई। नवीन शैली पांचवीं शताब्दी से प्रयोग में आई है।

देवनागरी अंक	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९
हिन्दी	शून्य	एक	दो	तीन	चार	पांच	छह	सात	आठ	नौ

टिप्पणी

भारत की सभी वर्तमान लिपियां ब्राह्मी लिपि की वंशज होने की बात भले ही आश्चर्यजनक प्रतीत हो परंतु इनके चित्र देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मी की उत्तरी एवं दक्षिणी शाखा से ही समस्त भारतीय लिपियों का विकास हुआ है।

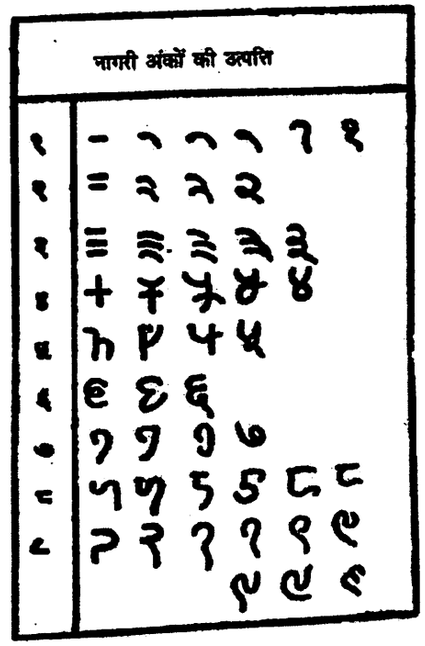

5.4 देवनागरी लिपि का मानकीकरण

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'वर्तनी समिति' ने 1976 में देवनागरी लिपि का प्रयोग करने तथा भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने के उद्देश्य से देवनागरी लिपि की वर्णमाला निश्चित करते समय कुछ आवश्यक निर्देश दिए थे, जिन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है–

1. ट, ठ, ड, ढ (ट वर्ग) तथा इ, ङ, ह के आधे वर्ण हलंत से बनाए जाएं।
2. श्र, त्र, ज्ञ तथा संस्कृत के अन्य प्रचलित संयुक्ताक्षरों का प्रयोग जारी रहे।
3. र के संयुक्त रूप जैसे प्र, राष्ट्र, धर्म का प्रयोग जारी रहे।
4. अनुस्वार (ं) तथा अर्द्ध चंद्रबिंदु (ँ) का प्रयोग जारी रहे।
5. अंग्रेजी के प्रचलित व्याकरणिक चिह्न उसी प्रकार प्रयुक्त हों, किंतु हिंदी में विराम–चिह्न के लिए खड़ी पाई (।) प्रयुक्त हो।
6. अंकों के अंतर्राष्ट्रीय अंग्रेजी रूपों का प्रयोग हो।
7. टाइपराइटर में : ; , – () ? + X !। चिह्नों का समावेश हो।
8. छोटा आकार चिह्न और दक्षिण भारतीय एवं कश्मीरी भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए ⊥ चिह्न का समावेश हो।

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

1. विभिन्न अनुसंधानों के आधार पर माना जाता है कि भारत की आधुनिक लिपियों का उद्गम स्थल..... .....लिपि है।
2. फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदुस्तानी विभाग के प्रथम अध्यक्ष..... थे।

सही/गलत बताइए–

3. 1881 ई. में बिहार और मध्यप्रदेश में नागरी लिपि और हिंदी का प्रयोग करने का सरकारी आदेश लागू किया गया।
4. 1893 ई. में अंग्रेजी सरकार ने जब भारतीय भाषाओं के लिए रोमन लिपि अपनाने की बात की थी तो इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई थी।

टिप्पणी

सन् 2000–2001 में देवनागरी के मानकीकरण तथा उसकी त्रुटियों–खामियों के सुधार से संबंधित कुछ अमूल्य सुझाव प्रकाश में आए। ये सुझाव नेपाल के हिंदी के अधिकारी विद्वान, हिंदी के ध्वजवाही तथा योद्धा श्री सूर्य बहादुर श्रेष्ठ के थे। बनारस से निकलने वाली प्रतिष्ठित 'नागरी पत्रिका' में देवनागरी का नया रूप नवनागरी लिपि शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा कि देवनागरी लिपि के संदर्भ में निम्न तथ्यों पर विचार करना उपयोगी होगा। यह लिपि अभी भी विकासक्रम में पूर्ण ध्वन्यात्मक रूप नहीं पा सकी है।

देवनागरी लिपि एकमात्र ऐसी लिपि है, जिसके सबसे अधिक अक्षरों में दाहिनी ओर आकार सूचक खड़ी पाई का विकास हुआ है। पर क, ड; छ, ट, ठ, ड, ढ, द, फ, र, ह 11 अक्षरों में दाहिनी ओर खड़ी पाई न होने के कारण आधा अक्षर बनाने के 4 नियम संयुक्ताक्षर के 3 नियम, र के 7 रूप की आवश्यकता पड़ती है। अ, थ, ध, भ, श अक्षरों में शिरोरेखा की अपूर्णता ख, ग, ण, श 4 अक्षरों का द्विखंडीय रूप अ, ऋ, ख, छ, झ, ण, थ, ध, भ, ल, श, क्ष, ज्ञ 13 अक्षरों का दो या इससे अधिक रूप लिपि में नए पुराने रूपों का मिश्रित प्रयोग इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ऋ के अलग रूप क्ष, ज्ञ, ऋ की ध्वनियों में प्रादेशिक अंतर आकारयुक्त व्यंजन में भाषा संयोजन इस लिपि की अपूर्णता दर्शाते हैं।

लिखने, टंकण करने और मुद्रण की गति हाथ की गति तक सीमित है। आधुनिक प्राविधिक यंत्रों के विकास के कारण यह गति निकट भविष्य में अपर्याप्त होगी और मुंह से बोलने की गति से टंकण, मुद्रण का सभी कार्य कर सकने वाली लिपि की आवश्यकता होगी। देवनागरी एकमात्र ऐसी लिपि है, जो कुछ सुधार करने पर उन गुणों को प्राप्त कर सकती है। इसके लिए कुछ अक्षरों की आकृति में संशोधन करना होगा, जिनका नया रूप प्रचलित रूप से अधिक भिन्न न हो। निम्न आधार पर संशोधित लिपि का प्रारूप दिया जा सकता है।

1. अ थ ध भ अक्षरों में शिरोरेखा की पूर्णता।
2. ख ग ण श अक्षरों को एक खंडीय रूप देना।
3. खड़ी पाई विहीन क ङ छ ट ठ ड ढ द फ र ह इन 11 अक्षरों को खड़ी पाई युक्त करना।
4. सभी अक्षरों के बाईं ओर के मुख्य भाग में आकृति की एकरूपता लाना।
5. ऋ क्ष ज्ञ के उच्चारण में एकरूपता लाना।
6. मात्राओं और चंद्रबिंदु को दाहिनी ओर लाना।
7. ध्वनिहीन स्वर संकेत चिह्न अ पर मात्रा लगाकर स्वराक्षर बनाना और अकारहीन व्यंजन में मात्र संयोजन।
8. 'एक ध्वनि एक चिह्न' सिद्धांत के विपरीत अनुस्वार विसर्ग और भिन्न रूप लेने वाले संयुक्ताक्षरों का परित्याग।
9. उच्चारण अनुसार अक्षरों का ध्वनि क्रम में लेखन।

टिप्पणी

देवनागरी लिपि में लेखन और मुद्रण में व्यवहृत होने वाले कुछ चिह्न इस प्रकार हैं–

(क) विराम चिह्न –

1. अल्प विराम – ,
2. अर्द्ध विराम – ;
3. पूर्ण विराम – ।
4. प्रश्नवाचक चिह्न – ?
5. आश्चर्य सूचक चिह्न – !
6. निर्देशक चिह्न – –
7. विसर्गात्मक या समान भाव सूचक चिह्न – :
8. विभक्ति सूचक चिह्न – –

(ख) कोष्ठक

1. लघु – () 2. मध्य – {} 3. वृहत् [ ]

(ग) अन्य

1. अवतरण चिह्न – "
2. रेखांकित चिह्न – – – – – – –

(शब्द के नीचे रेखा खींचना, इसे ही 'रेखिका' भी कहते हैं।)

3. पुनरुक्ति सूचक चिह्न – , , ,
4. स्थान पूरक चिह्न – ... .
5. समाप्ति सूचक चिह्न – – 0 –
6. परिवर्द्धन सूचक चिह्न – ^
7. तुल्यता सूचक चिह्न – =
8. अपूर्णता सूचक चिह्न – x x x x x
9. तारक या तारांकित चिह्न – *
10. टिप्पणी सूचक चिह्न – + + + +
11. विशिष्ट चिह्न – †

5.4.1 देवनागरी लिपि का स्वरूप तथा गुण एवं दोष

स्वरूप

यह लिपि बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती है।

यह न तो शुद्ध रूप से अक्षरात्मक लिपि है और न ही वर्णात्मक लिपि।

टिप्पणी

देवनागरी लिपि के गुण

1. इस लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही वर्ण संकेत है और इस एक वर्ण संकेत से एक ही ध्वनि व्यक्त होती है। जैसे 'ब' को 'ब' ही बोला जाएगा रोमन का अक्षर 'बी' है परंतु उससे ध्वनि 'ब' का संदर्भ लिया जाता है।
2. ध्वनि के नाम पर ही वर्ण का नाम रखा गया है।
3. इसमें कोई मूक वर्ण नहीं।
4. इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है। रोमन में 'But' बट पढ़ा जाता है जबकि 'Put' पुट हो जाता है।
5. इस लिपि में एक वर्ण में दूसरे वर्ण का भ्रम नहीं होता है।
6. यह लिपि उच्चारण के सूक्ष्मतम भेद को भी प्रकट करती है। लिखे शब्दों का हूबहू उच्चारण कर भिन्न अर्थ प्रकट करती है।
7. इसकी वर्णमाला ध्वनि वैज्ञानिक पद्धति के बिल्कुल अनुरूप है।
8. संस्कृत, हिंदी, मराठी, नेपाली की एकमात्र लिपि होने के कारण इसका प्रयोग व्यापक रूप में होता है।
9. इस लिपि का भारत की अनेक लिपियों से निकट संबंध है। भारतीय भाषाओं के किसी भी शब्द या ध्वनि को देवनागरी में ज्यों का त्यों लिखा जा सकता है।

5.4.2 देवनागरी के प्रचार–प्रसार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भूमिका

केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी के मानकीकरण का कार्य देश के प्रतिष्ठित विद्वानों और भाषाविदों, हिंदी सेवी संस्थाओं, राज्य सरकारों एवं विभिन्न मंत्रालयों के उच्च अधिकारियों से विचार–विमर्श करके 1968 में 'हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नाम से लघु पुस्तिका प्रकाशित की गई थी। वर्ष 1983 में इस पुस्तिका का निःशुल्क संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण 'देवनागरी लिपि तथा वर्तनी का मानकीकरण' प्रकाशित किया गया। इस पुस्तिका की लगातार बढ़ती मांग को देखते हुए वर्ष 1989 में इसका पुनर्मुद्रण कराया गया तथा विभिन्न हिंदी सेवी संस्थाओं, कार्यालयों, शिक्षण संस्थानों में निःशुल्क वितरण कराया गया ताकि अधिक से अधिक संस्थाओं में हिंदी के मानक रूप का प्रयोग बढ़े। राजभाषा हिंदी के संदर्भ में सभी मंत्रालयों, राज्यों, सरकारी, शैक्षिक संस्थाओं एन.सी.ई.आर.टी. आदि, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि ने भाषा में एकरूपता लाने के लिए इस मानकीकरण को आधिकारिक रूप से अपनाया। वर्ष 1968 के मानकीकरण का मुख्य आधार प्रयोक्ता और टंकण यंत्र रहा था।

सूचना प्रौद्योगिकी के आज के युग में हिंदी भाषा के मानकीकरण को पुनः संशोधित एवं परिवर्तित करने तथा देवनागरी लिपि के लिए कंप्यूटरीकृत यूनीकोड के निर्माण करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसलिए कम्प्यूटर को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय संगोष्ठी की सलाह पर पुस्तिका का संशोधित रूप प्रकाशित किया गया है। 'देवनागरी लिपि और हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' पुस्तिका में मानक हिंदी वर्णमाला, मानक हिंदी वर्तनी,

टिप्पणी

विरामादि चिह्न, कोशों में अकारादिक्रम, परिवर्धित देवनागरी लिपि आदि विषय तथा पैराग्राफों के विभाजन तथा उपविभाजन से संबंधित मानक पद्धति दी गई है। इसके अतिरिक्त हिंदी लिखते समय देवनागरी वर्णमाला में प्रयुक्त वर्णों और मात्राओं की लिखावट में एक निश्चित दिशा पद्धति 'तकनीकी ड्राइंग' का उल्लेख भी किया गया है। यह पुस्तिका हिंदी भाषा की एकरूपता और मानकीकरण की दिशा में तथा भारतीय भाषाओं को अधिकाधिक निकट लाने के प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

हिंदी का प्रचार–प्रसार करने और भारत के संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसरण में समग्र भारत के के संपर्क भाषा के रूप में इसका विकास करने हेतु भारत सरकार द्वारा केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना 1 मार्च, 1960 में तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय), उच्चतर शिक्षा विभाग के अंतर्गत की गई थी। केंद्रीय हिंदी निदेशालय का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय चेन्नई, कोलकाता, हैदराबाद और गुवाहाटी में स्थित है। इसकी स्थापना किये जाने की तारीख से निदेशालय हिंदी के प्रचार–प्रसार और विकास के लिए बहुत सी योजनाएं कार्यान्वित कर रहा है।

निदेशालय निम्नानुसार बहुत सी योजनाएं कार्यान्वित कर रहा है, इनमें प्रमुख हैं–

1. सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी– केंद्रीय हिंदी निदेशालय हिंदी प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम, हिंदी में डिप्लोमा पाठ्यक्रम, उच्च डिप्लोमा पाठ्यक्रम और सरकारी कर्मचारियों के लिए प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ पाठ्यक्रम जैसे बहुत से पाठ्यक्रम संचालित करता रहा है।
2. एक भाषा में/द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी शब्दकोशों के प्रकाशन की योजना तैयार करना।
3. कम्प्यूटर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं की सूची तैयार करना।
4. हिंदी पत्राचार पाठ्यक्रमों का संचालन।
5. हिंदी लेखकों को पुरस्कार प्रदान करना।
6. विस्तार सेवाएं और कार्यक्रमों का आयोजन।
7. श्रव्य कैसेटों के माध्यम से हिंदी शिक्षण और इसका प्रचार–प्रसार करना।
8. पुस्तकों के प्रकाशन/खरीद करने के लिए सहायता की योजना सहित हिंदी के प्रचार–प्रसार के लिए स्वयं सेवी संगठनों को अनुदान देना।
9. निःशुल्क वितरण हेतु हिंदी पुस्तकों की खरीद करना।

5.5 देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक तथा आदर्श लिपि है। प्रो. देवेंद्र नाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक– 'राष्ट्र भाषा हिंदी : समस्याएं और समाधान' में इसकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है, जिसमें अक्षरात्मक एवं वर्णात्मक लिपियों की विशेषताएं भी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

5. केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'वर्तनी समिति ने .....ई. में देवनागरी लिपि की वर्णमाला निश्चित करते समय कुछ आवश्यक निर्देश भी दिए थे।
6. ..... ई. में देवनागरी के मानकीकरण तथा उसकी त्रुटियों के सुधार से संबंधित कुछ अमूल्य सुझाव प्रकाश में आए थे।

सही/गलत बताइए–

7. देवनागरी लिपि एकमात्र ऐसी लिपि है जिसके सबसे अधिक अक्षरों में दाहिनी ओर आकार सूचक खड़ी पाई का विकास हुआ है।
8. लिखने, टंकण करने और मुद्रण की गति हाथ की गति तक सीमित नहीं है।

टिप्पणी

लक्षित होती हैं। इसकी वैज्ञानिकता के कारण ही यह उत्तर–प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रांतों के विशाल भूभाग में फैली हुई है, इसलिए इसे भारत राष्ट्र की 'राज्य लिपि' के पद पर अभिषिक्त किया गया है और भारत की समृद्धतम भाषा संस्कृत, चाहे उसका वाड्मय दक्षिण भारत का है अथवा उत्तर भारत का, इसी लिपि में सृजित है।

आधुनिक नागरी के अधिकांश लिपि चिह्न परंपरा से ही विकसित हुए हैं। किंतु ध्वनियों के अधिकाधिक स्पष्टीकरण के लिए उसने कुछ चिह्न विदेशी लिपियों से भी ग्रहण किए हैं, जैसे अंग्रेजी से ऑ (0) तथा फारसी के प्रभाववश क, ख, ग, ज, फ आदि। पहले इसमें केवल दो विराम चिह्न थे– अर्द्ध विराम के लिए एक खड़ी पाई और पूर्ण विराम के लिए दो खड़ी पाइयां। किंतु आधुनिक काल में दो खड़ी पाइयां लुप्त हो गई हैं और पूर्ण विराम के लिए एक खड़ी पाई (।) तथा अर्द्धविराम के लिए कौमा (,) तथा अल्पविराम के लिए सैमी कालन (;) उद्धरण चिह्न (" "), रेखिका या डैश (–), कोष्ठक ( ) आदि का भी प्रयोग होने लगा है, जो अन्य भाषाओं के प्रभाववश आया है और जो वैज्ञानिकता में अतिरिक्त अभिवृद्धि करता है।

देवनागरी उन सभी आदर्शों पर खरी उतरती है, जो एक आदर्श और वैज्ञानिक लिपि के लिए अनिवार्य हैं, जैसे –

1. देवनागरी अर्द्ध अक्षरात्मक लिपि है।
2. ध्वनि और लिपि का पूर्ण सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है, अर्थात इसमें जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है।
3. एक ध्वनि के लिए एक ही संकेत है, अर्थात ध्वनि लिपि संकेतों में पूर्ण निश्चितता है। रोमन अथवा उर्दू लिपि की भांति न तो एक ही ध्वनि के लिए अनेक संकेत हैं और न ही किन्हीं ध्वनियों के लिए संकेतों का अभाव है।
4. इसमें समग्र ध्वनियों को उत्पन्न व प्रकट करने की पूर्ण क्षमता विद्यमान है।
5. लिपि सुपाठ्य एवं संदेह रहित है। फारसी की भांति नुक्तों और जवर, जेट, पेश की पेचीदगियों से मुक्त है। 'खुदा से जुदा हुए एक नुक्ते के लिए' वाली कहावत इस पर चरितार्थ नहीं होती और न ही मुंडी–लिपि की भांति बही का बहू लिखा जाता है।
6. सौंदर्य भी इस लिपि का एक गुण है। अक्षरों की सुडौलता के कारण लिपि पूर्ण कलात्मक है।
7. आधुनिक गत्यात्मक युग में त्वरा एवं आशुलेखन की पूर्ण क्षमताओं से संपन्न है।
8. बायीं ओर से दायीं ओर को लिखी जाती है।
9. ध्वनियों का क्रम पूर्णतः वैज्ञानिक है। स्पर्श ध्वनियों के वर्णन में प्रथम वर्ग कंठ्य ध्वनियों का और अंतिम वर्ग ओष्ठ्य ध्वनियों का है। अल्प प्राण ध्वनि के पश्चात महाप्राण ध्वनि सूचक चिह्नों का विधान है जैसे – क, ख; प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष ध्वनियों एवं पश्चात सघोष ध्वनियों का निर्धारण हुआ है, अर्थात प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो ध्वनियां अघोष एवं अंतिम तीन सघोष हैं। वर्गों के अंत में अनुनासिक ध्वनियां हैं।
10. अल्पप्राण एवं महाप्राण ध्वनियों के चिह्न पृथक–पृथक हैं।
11. छपाई एवं लिखाई का एक ही रूप है।
12. स्वरों में ह्रस्व एवं दीर्घ का भेद है तथा मात्राएं निश्चित हैं।
13. अमेरिकी विद्वानों ने अनेक प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि देवनागरी लिपि ही पूर्णतः वैज्ञानिक लिपि है। उनका कथन है कि 'देवनागरी के सभी वर्णों को दफ्ती के टुकड़ों में काटकर उनमें विशिष्ट विधि से वायु प्रविष्टि की जाए तो उनसे उनके उच्चारण के अनुरूप ही ध्वनि निःसृत होगी'।

देवनागरी लिपि को वैज्ञानिकता के बारे में संदेह होने के निम्न कारण माने जा सकते हैं–

1. इस लिपि में कुल मिलाकर 403 टाइप होने के कारण अंकण और मुंद्रण में कठिनाई होती है।
2. इसमें शिरोरेखा का प्रयोग अनावश्यक अलंकरण के लिए किया जाता है।
3. ऋ, ॠ, ऌ ॡ, ङ, ञ, ष शुद्ध उच्चारण करने में कठिनाई होती है।
4. इस लिपि में ख में र व का, घ में ध का और म में भ का भ्रम होता है।
5. इस लिपि में वर्णों को संयुक्त करने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं की गई।
6. इस लिपि में अनुस्वार एवं अनुनासिकता के प्रयोग में एकरूपता का अभाव दिखलाई देता है।
7. इस लिपि में त्वरापूर्ण लेखन नहीं किया जा सकता क्योंकि लेखन में हाथ बार–बार उठाना पड़ता है।
8. इस लिपि में वर्णों के संयुक्तीकरण में र के प्रयोग को लेकर भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है।
9. इस लिपि में इ की मात्रा (ि) का लेखन वर्ण के पहले किया जाता है जबकि उच्चारण वर्ण के बाद किया जाता है।

5.6 देवनागरी लिपि में सुधार की संभावनाएं

कोई भी भाषा अथवा लिपि समय और व्यवहार के साथ–साथ बदलती रहती है। भाषा का स्वरूप उसके प्रयोग और व्यवहार पर निर्भर करता है। लिपि भी उसी अनुसार बदलती रहती है। आज के तकनीकी युग में यह बदलाव अपरिहार्य हो गया है।

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

9. देवनागरी लिपि एक .....तथा आदर्श लिपि है।
10. आधुनिक नागरी के अधिकांश.....चिह्न परंपरा से ही विकसित हुए हैं।
11. कोई भी भाषा अथवा .....समय और व्यवहार के साथ–साथ बदलती रहती है।
12. भाषा का.....उसके प्रयोग और व्यवहार पर निर्भर करता है।

सही/गलत बताइए–

13. देवनागरी अर्द्धअक्षरात्मक लिपि है।
14. अल्प्राण एवं महाप्राण ध्वनियों के चिह्न एक ही हैं।
15. भाषा जितनी लोचदार होगी उतनी ही संवर्द्धित भी होगी।
16. आज पूरी दुनिया तकनीकी प्रगति के साथ–साथ एक 'भूमंडलीय ग्राम' में बदल रही है।

टिप्पणी

5.6.1 नागरी लिपि सुधार : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नागरी लिपि में सुधार के ऐतिहासिक प्रयासों पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि कदाचित् 'अ' की बारहखड़ी (यथा आ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै आदि) का प्रचलन सर्वप्रथम महाराष्ट्र के सावरकर बंधुओं ने किया था और व्यावहारिक रूप में इसे मराठी समाचार पत्रों ने अपनाया था। सन् 1939 में, इंदौर में, हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सभापतित्व में नागरी लिपि में सुधार के लिए एक छोटी उपसमिति बनाई गई और श्री काका कालेलकर इसके संयोजक नियुक्त किए गए। गांधीजी बहुत दिनों से यह बात सोच रहे थे कि किसी प्रकार यदि देवनागरी लिपि के वर्णों की संख्या कुछ कम की जाए ताकि देश के लोगों को शीघ्रता से साक्षर करने में मदद मिल सके। इसी के फलस्वरूप इस समिति का निर्माण हुआ। कई वर्षो के निरंतर प्रयासों के बाद इस सम्मेलन में 14 सुझावों को स्वीकृत किया गया–

1. लिखने में शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है। छपाई में साधारण रीति से शिरोरेखा लगाना ही नियम रहे। किंतु विशेष स्थानों में अक्षरों की विभिन्नता प्रकट करने के लिए शिरोरेखाहीन अक्षर भी प्रयुक्त हो सकते हैं। सम्मेलन की सिफारिश है कि विशेष या छोटे अक्षरों में जहां शिरोरेखा होने से छपाई की स्पष्टता में कमी आ जाती हो, वहां शिरोरेखाविहीन अक्षरों का प्रयोग करना अच्छा होगा।
2. प्रत्येक वर्ण ध्वनि के उच्चारण–क्रम से लिखा जाए।
   (क) जब तक कोई संतोषजनक रूप सामने न आए तब तक 'इ' की मात्रा अपवाद रूप से वर्तमान पद्धति के अनुसार ही 'ि' लिखी जाए। यथा–सिर।
   (ख) ए, ऐ की मात्राएं वर्ण के ठीक ऊपर लगाई जाएं। यथादेवता, अनेक। ओ और औ भी ऊपर के सिद्धांत के अनुसार लिखे जाएं; यथा–ओला, औरत।
   (ग) उ, ऊ, ऋ की मात्राएं अक्षर के बाद आएं और पंक्ति में ही लिखी जाएं। यथा–कुटिल, पूजा, सृष्टि।
   (घ) अनुस्वार और अनुनासिक के चिह्न भी अक्षर के बाद ऊपर लिखे जाएं। यथा–अंश।
   (ङ) रेफ से व्यक्त होने वाले अर्द्ध 'र' उच्चारण–क्रम से योग्य जगह पर लिखा जाए। यथा–धर्म।
   (च) संयुक्ताक्षर में भी, सर्वत्र, वर्ण उच्चारण–क्रम से एक के पीछे एक लिखे जाएं। यथा–द्वारका (द्वारका नहीं), विद्वत्ता (विद्वत्ता नहीं)।
3. स्वरों और मात्राओं में समानता तथा सामंजस्य करने के लिए 'इ, ई, उ, ऊ' के वर्तमान रूप छोड़कर केवल 'अ' में ही इन स्वरों की मात्राएं लगाकर इन स्वरों के मूल स्वरूप का बोध कराया जाए। अर्थात 'अ' की बारहखड़ी की जाय; यथा–अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ, औ, अं, अः।

टिप्पणी

4. दक्षिण की लिपियों के स्वरों में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' के स्वरूप आते हैं, उनके लिए ह्रस्व मात्राएं बनाई जाएं।
5. पूर्ण अनुस्वार के स्थान पर '॰' लगाया जाए और अनुनासिक के लिए केवल बिंदी '॰' लिखी जाए; यथासिंह, चांद। व्यंजन के पूर्व हलंत 'ङ, ञ, ण, न, म' की जगह पर जहां प्रतिकूलता न हो (यथावाङ्मय, तन्मय) अनुस्वार लिखा जाए; यथा–चंचल, पैंथ, पैंप।
6. छपने में अक्षरों के नीचे बाईं ओर यदि अनुकूल स्थान पर बिंदी लगाई जाए तो उसका अभिप्राय होगा कि उस अक्षर की ध्वनि उस अक्षर की मूल ध्वनि से भिन्न है। उस ध्वनि का निर्णय प्रचलन के अनुसार होगा; यथा–फारसी, मराठी, सिंधी इत्यादि।
7. विराम चिह्न आजकल सब भारतीय भाषाओं में प्रचलित हैं, वैसे ही कायम रखे जाएं, पूर्ण विराम का चिह्न पाई '।' रहे।
8. अंकों के स्वरूप इस प्रकार रहें–
   १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०।
9. वर्तमान 'ख' के स्वरूप का परिवर्तन करना आवश्यक है। उसके स्थान पर गुजराती 'ख' स्वीकार किया जाए।
10. अ, झ, ण की जगह बंबई के अ, झ, ण रखे जाएं और 'ल' 'श' की जगह हिंदी के रूप 'ल' 'श' रखे जाएं। 'क्ष' का 'क्ष' रूप प्रचलित किया जाए। बीजगणित आदि वैज्ञानिक साहित्य में संज्ञारूप 'क्ष' आ जाता है।
11. मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, आदि भाषाओं में विशिष्ट ध्वनि के लिए जो ळ प्रयुक्त होता है वही रखा जाए। ड या ल से न व्यक्त किया जाए।
12. ज्ञ के उच्चारण में प्रांतीय भिन्नता होने से ज्ञ का रूप जैसा है वैसे ही रखा जाए।
13. संयुक्त अक्षरों के बनाने के लिए जिन वर्णों में खड़ी पाई अंतिम भाग में है जैसे–ख, ग, घ, च, ज, ञ, ण, त, थ, ध, न, प, ब, भ, म, य, लख व, श, ष, स उनका संयोज्य रूप खड़ी पाई हटा कर समझा जाय ख, ग, घ, च, त, थ, न, ण, व इत्यादि। क और फ का वर्तमान संयोज्य रूप क, फ स्वीकृत किया जाए। जिन अक्षरों में खड़ी पाई अंतिम भाग में नहीं है उनका संयोज्य रूप चिह्न (-) लगाकर समझा जाए। संयोजक चिह्न पिछले अक्षर से मिला रहे। यथा–विद्-या, विट्-ठल, उच्छ्-वास, बुड्-ढा, ब्रह्-मा।
14. शिरोरेखा हटाकर लिखने में भ और ध के म और घ से पृथक् करने हेतु भ और ध में गुजराती की तरह घुंडी लगाई जाए।

टिप्पणी

5.6.2 नागरी प्रचारिणी सभा एवं लिपि सुधार

लिपि में सुधार के सभी सुझावों का व्यावहारिक प्रयोग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित परीक्षाओं तथा वहां से प्रकाशित पुस्तकों में जोर–शोर से हुआ, किंतु जिन प्रदेशों में काव्यभाषा तथा साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी का प्रसार था, वहां के लोगों ने इन सुधारों को स्वीकार नहीं किया। इन सुझावों का प्रबल विरोध काशी के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हुआ और हैरानी की बात यह थी कि इसके विरोधियों में नागरी प्रचारिणी सभा के सदस्य सर्वप्रमुख थे। हालांकि अधिकांश सुझाव व्यावहारिक थे, किंतु उस समय प्रचारिणी सभा किसी भी प्रकार के सुधारों के लिए तैयार न थी।

इस घटना के ठीक 10 वर्ष बाद, 1945 में नागरी प्रचारिणी सभा ने उपयोगिता और प्रचार की दृष्टि से वर्तमान नागरी लिपि में सुधार और पुनःसंस्कार की आवश्यकता को महसूस किया। इसके साथ ही सभा ने सुधारों के संबंध में कुछ सिद्धांत निर्धारित किए और अपनी ओर से देश के प्रमुख हिंदी पत्रों में यह सूचना प्रकाशित की कि इस दिशा में कार्य करने वाले सज्जन, और संस्थाएं अपने–अपने प्रयत्न की सूचना और सामग्री सभा की समिति के पास भेजने की कृपा करें। यह गौरतलब है कि सुधार के प्रयत्नों में केवल श्रीनिवासन के प्रयत्न ही समिति को ठीक लगे। श्रीनिवासन ने बड़े प्रयत्न से अपनी प्रस्तावित वर्णमाला में एकरूपता लाने का उद्योग किया, किंतु फिर भी इस लिपि में अनेक त्रुटियां हैं। उनके प्रस्तावित सुधार में सबसे पहली त्रुटि यह है कि इसमें नागरी के अनेक वर्णों का रूप विकृत हो गया। उन्होंने अपनी वर्णमाला में समूचे अ की बारहखड़ी नहीं की है। जो विज्ञान और व्यवहार दोनों की दृष्टि से भ्रामक और अशुद्ध है। इसके अतिरिक्त अल्प्राण वर्ण में ही प्राण जोड़कर आप महाप्राण बनाते हैं। यह प्राण चिह्न इतना सूक्षम है कि उसके स्पष्ट न होने पर कुछ का कुछ पढ़ा जा सकता है।

छपाई को दृष्टि में रखकर डॉ. गोरखप्रसाद ने भी कतिपय व्यावहारिक सुझाव रखा था। आपका पहला प्रस्ताव यह है कि उ, ऊ, ए, ऐ, तथा अं की मात्राओं को थोड़ा–सा दाहिनी ओर हटाकर लगाया जाए। इससे यह लाभ होगा कि 700 के बदले केवल 150 या यदि सभी वर्तमान संयुक्ताक्षर रखे जाएं तो 200 टाइपों से कम्पोजिंग हो जाया करेगी। वर्तमान टाइपों से भी, बिना उनमें किसी प्रकार का दूसरा सूझाव यह है कि छोटे (8 पाइंट से कम नाप के) अक्षरों से कम्पोज करने में शिरोरेखा विहीन अक्षरों से काम लिया जाए। आपने इस प्रकार के टाइप तैयार कर नमूने के लिए छपाई भी की है। इसमें संदेह नहीं कि इन छोटे टाइपों के अक्षर स्पष्ट हैं और उन्हें पढ़ने में कठिनाई नहीं होती। परंतु शिरोरेखा विहीन नागरी लिपि सुंदर प्रतीत नहीं होती।

5.6.3 आचार्य नरेंद्र देव समिति के सुझाव

उत्तर प्रदेश की सरकार ने भी आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में नागरी लिपि सुधार समिति का निर्माण किया था। समिति की कुल 9 बैठकें हुईं। केंद्रीय शासन की ओर से हिंदुस्तानी शीघ्र लिपि तथा लेखन यंत्र समिति सन् 1948 में नियुक्त हुई थी उनके साथ भी इस समिति

टिप्पणी

ने विचार–विमर्श किया। जो योजनाएं इस समिति के पास विशेषज्ञों ने भेजी थीं उन पर समिति ने समुचित विचार किया तथा कुछ सज्जनों का साक्ष्य भी लिया। अंत में समिति ने 25–5–1949 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में समिति ने अपने नकारात्मक और स्वीकारात्मक दोनों प्रकार के सुझावों को प्रस्तुत किया। समिति के नकारात्मक निश्चय इस प्रकार हैं–

1. निश्चय हुआ कि श्रीनिवासन जी के एकमात्रिक और द्वैमात्रिक आदि स्वरों के भेद समिति को मान्य नहीं हो सकते।
2. 'अ' की बारहखड़ी या काका कालेलकर के अनुसार 'अ' की स्वर खड़ी नहीं बनाई जा सकती।
3. 'इ' की मात्रा को छोड़कर अन्य मात्राओं के वर्तमान स्वरूप में कोई परिवर्तन न किया जाए।
4. किसी व्यंजन के नीचे कोई दूसरा व्यंजन वर्ण न लगाया जाए।
5. कुछ लोग नागरी लिपि में सुधार के नाम पर आमूल परिवर्तन करना चाहते हैं। इन सुधारों के वांछनीय न होने के कारण उन पर विचार करने के लिए उनके प्रेषकों को बुलाने की आवश्यकता नहीं है।
6. केवल मशीन की सुविधा के लिए कोई अवांछनीय परिवर्तन न किए जाएं।

साधारण लिपि संबंधी अनुरोध

1. मुद्रण और टाइपराइटिंग की सुविधा के लिए आवश्यकतानुसार मात्राओं को थोड़ा हटाकर केवल दाहिनी ओर ही बगल में ऊपर और नीचे लगाया जाए।
2. शुद्ध अनुस्वार के स्थान पर "ं" शून्य लगया जाए। व्यंजन के हलंत ङ्, ञ्, ण्, न्, म् की जगह पर जहां प्रतिकूलता न हो (यथा वाङ्मय, तन्मय) शून्य लिखा जाए। अनुनासिक स्वर के लिए (ँ) बिंदी का प्रयोग हो; यथा हंसना, किंतु, हँस (पक्षी)।
3. शिरोरेखा लगाई जाए।
4. ऋ, ॡ की मात्राएं भी अन्य मात्राओं के सदृश्य थोड़ा हटाकर दाहिनी ओर नीचे लगाई जाएं।
5. जिन वर्णों का उत्तरार्ध खड़ी पाई युक्त हो उनका आधा रूप खड़ी पाई निकालकर बनाया जाए। यथा–ग, ग अर्धरूप, उदाहरण वक्क (वक्र), ध्राम (धर्म), वस्त्र (वस्त्र)।
6. जिन वर्णों का उत्तरार्ध खड़ी पाई युक्त नहीं है उनका आधा रूप "क" और "फ" को छोड़कर हल चिह्न मात्राओं के ही समान, बगल में, नीचे की ओर लगाकर बनाया जाय यथा–'ङ' का आधा 'ङ्' राष्ट्र (राष्ट्र), विद्या (विद्या), ब्राह्मण (ब्राह्मण)।
7. ह्रस्व "इ" की मात्रा भी दाहिनी ओर लगाई जाए।

टिप्पणी

स्वीकारात्मक सुझावों का रूपगत विवचेन

1. स्वरों में 'अ' का रूप अब केवल 'अ' रहेगा।
2. व्यंजनों में छ, भ, ण, ध, भ, र, ल, ह के केवल निम्नांकित रूप ही स्वीकृत हुए हैं। छ, भ, ण, ध, भ, ⅄, ल, च और है।
3. मात्राओं के ह्रस्व 'इ' की मात्रा का रूप 'ि' होगा।
4. क्ष और त्र के स्थान पर क्ष और त्र से काम लिया जाएगा। इस प्रकार इन परिवर्तनों के हो जाने के अनंतर हमारी वर्णमाला और अंकों का लिपि सुधार समिति की ओर से अनुरोधित रूप इस प्रकार होगा।

   १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ०

   अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ

   ओ औ ऋ अं अः

   क ख ग घ ङ

   च छ ज झ ञ

   ट ठ ड ढ ण

   त थ द ध न

   प फ ब भ म

   य र ल व श

   ष स ह ज्ञ।

   विशेष अक्षर श्र, ओ३म् तथा ळ होंगे।

5. विराम चिह्न यथासंभव वे सब ले लिए जाएं जो इस समय अंग्रेजी में प्रचलित हैं। केवल पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई '।' स्वीकार की जाए।

समिति के सुधार संबंधी सुझावों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि समिति ने नागरी लिपि का स्थिरीकरण का प्रयास विशेष रूप से किया, जिसका महत्व अक्षुण्ण है।

नरेंद्र देव समिति की रिपोर्ट के बाद उत्तर प्रदेश शासन ने नागरी लिपि में सुधार संबंधी सुझावों पर विचार करने के लिए लखनऊ में विभिन्न राज्यों के मंत्रियों तथा कुछ चुने हुए विद्वानों की एक सभा बुलाई। जहां तक अक्षरों के रूप का संबंध है, इस सभा में आमंत्रित विद्वानों ने एक–दो परिवर्तनों के साथ नरेंद्र देव समिति द्वारा सुझाए हुए रूपों को ही स्वीकार कर लिया। इनमें से एक परिवर्तन तो 'स्व' के संबंध में है। इसके वर्तमान रूप में दोष यह है कि इससे र और व का भ्रम हो जाता है। यही कारण है कि इस सभा में समवेत विद्वानों ने इसे यह रूप (ख) दिया है। नरेंद्र देव समिति ने 'क्ष' की स्वतंत्र सत्ता

टिप्पणी

स्वीकार कर ली है। नरेंद्र देव समिति ने ह्रस्व 'इ' की मात्रा का जो रूप दिया था उसे इस समिति ने बदल दिया। यथा हीन्दी (= हिंदी) संयुक्त अक्षरों के संबंध में इस समिति ने हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा नरेंद्र देव समिति के सुझावों को प्रायः उसी रूप में स्वीकार कर लिया। यहां यह भी निर्णय लिया गया कि विभिन्न राज्यों में यह सुधारी गई लिपि ही प्रचलित की जाएगी और उत्तर प्रदेश शासन की ओर से कई आरंभिक पुस्तकें इसी लिपि में प्रकाशित की गईं।

देवनागरी लिपि को कम्प्यूटर के अनुकूल बनाने के लिए इसमें अनेक सूक्ष्म व स्थूल बदलाव किए गए हैं। हलंत, आधे शब्दों का प्रयोग व अनुस्वार को भी कम्प्यूटर के की–बोर्ड के अनुकूल बनाया गया है। 'सुधार' की अपेक्षा यदि हम परिवर्तन या 'बदलाव' शब्द का प्रयोग करें तो उचित होगा। देवनागरी में स्थानीय भाषाओं का प्रभाव आना और होना भी स्वाभाविक है। हिंदी में अंग्रेजी के कुछ शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा है। अतः लिपि में भी उन शब्दों का समायोजन अपेक्षित है। भाषा जितनी लोचदार होगी उतना ही संवर्द्धित भी होगी। अतः बदलाव की संभावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता। आज पूरी दुनिया तकनीकी प्रगति के साथ–साथ एक 'भूमंडलीय ग्राम' में बदल रही है जहां संप्रेषण के लिए भाषाओं का लोचदार व सरल होना स्वाभाविक ही है। देवनागरी भी धीरे–धीरे इस परिवर्तन को आत्मसात कर रही है और भविष्य में भी करती रहेगी। यह इसके संवर्द्धित होने का ही लक्षण है।

गतिविधि

उत्तरी ब्राह्मी से नागरी लिपि के विकास को एक चार्ट पर दर्शाइए।

क्या आप जानते हैं?

आचार्य विनोबा भावे ने कहा था–"हिंदुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि दे सकती है।"

5.7 सारांश

देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा की अधिकृत लिपि बनने के रास्ते में भले ही कई रुकावटें आईं हों आज देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी, संविधान द्वारा भारत की राजभाषा स्वीकार की गई। संस्कृत के ग्रंथों के मुद्रण में देवनागरी का ही व्यापक प्रयोग होता रहा है। हिंदी क्षेत्र के अतिरिक्त देवनागरी का प्रयोग मराठी और नेपाली के लिए भी होता है। उत्तर भारत की प्रायः सभी लिपियां देवनागरी के ही रूप–भेद हैं और उनमें अत्यधिक साम्य है। आज भारत की राष्ट्रीय लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी ही संविधान द्वारा भारत की राजभाषा के रूप में स्वीकृत हुई। संस्कृत ग्रंथों के मुद्रण में भी

'अपनी प्रगति जांचिए'

रिक्त स्थान भरिए–

17. .....नागरी लिपि सुधार समिति के संयोजक थे।
18. .....में नागरी प्रचारिणी सभा ने नागरी लिपि में सुधार की जरूरत महसूस की।

सही/गलत बताइए–

19. लिपि सुधार के सुझावों का विरोध करने वालों में प्रचारिणी सभा के सदस्य प्रमुख थे।
20. देवनागरी लिपि को कम्प्यूटर के अनुकूल बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ा।

टिप्पणी

देवनागरी लिपि का उपयोग ही सर्वाधिक हुआ है और मराठी तथा नेपाली भाषाओं की लिपि भी यही है। उत्तर भारत में प्रचलित सभी लिपियां थोड़े अंतर के साथ एक तरह से प्रस्तुत देवनागरी के ही भेद हैं।

देवनागरी लिपि के नामकरण को लेकर सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि इसका विकास गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने किया था और उसी के आधार पर इसे नागरी कहा जाने लगा। कुछ विद्वान इसे बौद्ध–ग्रंथ 'ललित विस्तार' की नाग लिपि से उद्भूत मानते हैं। परंतु डॉ. बॉनेट जैसे अनेक विद्वान इसे उपयुक्त नहीं समझते। कुछ का कहना है कि देवनगर काशी में प्रचलित होने के कारण 'देवनागरी' नाम पड़ा। कुछ का मानना है कि देववाणी संस्कृत के लेखन में इसका प्रयोग होता रहा, इसलिए नागरी के साथ 'देव' शब्द जोड़कर देवनागरी कहा जाने लगा। कुछ के मतानुसार नगरों की संबद्धता के कारण ही यह नागरी कहलाईं। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि प्राचीन काल में पाटलिपुत्र को नगर तथा चंद्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहकर संबोधित किया जाता था। अतएव देवनागरी से प्रचलित होने वाली लिपि देवनागरी कहलाई। डॉ. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार– "मध्ययुग में स्थापत्य की एक शैली थी 'नागर', जिसमें चतुर्भुजी आकृतियां होती थीं। इन चतुर्भुजी लिपियों (प, म, भ, ग, ष) के कारण ही इसे 'देवनागरी' कहा जाने लगा।"

केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'वर्तनी समिति' ने 1976 में देवनागरी लिपि का प्रयोग करने तथा भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने के उद्देश्य से देवनागरी लिपि की वर्णमाला निश्चित करते समय कुछ आवश्यक निर्देश दिए थे। सन् 2000–2001 में देवनागरी के मानकीकरण तथा उसकी त्रुटियों–खामियों के सुधार से संबंधित कुछ अमूल्य सुझाव प्रकाश में आए। ये सुझाव नेपाल के हिंदी के अधिकारी विद्वान, हिंदी के ध्वजवाही तथा योद्धा श्री सूर्य बहादुर श्रेष्ठ के थे।

देवनागरी लिपि एक वैज्ञानिक तथा आदर्श लिपि है। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है, जिसमें अक्षरात्मक एवं वर्णात्मक लिपियों की विशेषताएं भी लक्षित होती हैं। इसकी वैज्ञानिकता के कारण ही यह उत्तर–प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रांतों के विशाल भूभाग में फैली हुई है, इसलिए इसे भारत राष्ट्र की 'राज्य लिपि' के पद पर अभिषिक्त किया गया है।

नागरी लिपि में सुधार के ऐतिहासिक प्रयासों पर नजर डालें तो हम पाते हैं कि कदाचित् 'अ' की बारहखड़ी (यथा आ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै आदि) का प्रचलन सर्वप्रथम महाराष्ट्र के सावरकर बंधुओं ने किया था और व्यावहारिक रूप में इसे मराठी समाचारपत्रों ने अपनाया था। सन् 1939 में, इंदौर में, हिंदी साहित्य सम्मेलन के 24वें अधिवेशन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के सभापतित्व में नागरी लिपि में सुधार के लिए एक छोटी उपसमिति बनाई गई और श्री काका कालेलकर इसके संयोजक नियुक्त किए गए। गांधीजी बहुत दिनों से यह बात सोच रहे थे कि किसी प्रकार यदि देवनागरी लिपि के

टिप्पणी

वर्णों की संख्या कुछ कम की जाए। कई वर्षो के निरंतर प्रयासों के बाद इस सम्मेलन में 14 सुझावों को स्वीकृत किया गया।

लिपि में सुधार के सभी सुझाओं का व्यावहारिक प्रयोग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित परीक्षाओं तथा वहां से प्रकाशित पुस्तकों में जोर–शोर से हुआ, किंतु जिन प्रदेशों में काव्यभाषा तथा साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी का प्रसार था, वहां के लोगों ने इन सुधारों को स्वीकार नहीं किया। इन सुझावों का प्रबल विरोध काशी के हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हुआ और हैरानी की बात यह थी कि इसके विरोधियों में नागरी प्रचारिणी सभा के सदस्य सर्वप्रमुख थे। इस घटना के ठीक 10 वर्ष बाद नागरी प्रचारिणी सभा ने उपयोगिता और प्रचार की दृष्टि से वर्तमान नागरी लिपि में सुधार और पुनःसंस्कार की आवश्यकता को महसूस करते हुए सुधारों के संबंध में कुछ सिद्धांत निर्धारित किए। इन सुधार प्रयासों में केवल श्रीनिवासन के प्रयत्न ही समिति को ठीक लगे। श्रीनिवासन ने बड़े प्रयत्न से अपनी प्रस्तावित वर्णमाला में एकरूपता लाने का उद्योग किया। छपाई को दृष्टि में रखकर डॉ. गोरखप्रसाद ने भी कतिपय व्यावहारिक सुझाव रखा था। आचार्य नरेंद्र देव की अध्यक्षता में नागरी लिपि सुधार समिति की कुल 9 बैठकें हुईं। केंद्रीय शासन की ओर से हिंदुस्तानी शीघ्र लिपि तथा लेखन यंत्र समिति सन् 1948 में नियुक्त हुई थी उनके साथ भी इस समिति ने विचार–विमर्श किया। जो योजनाएं इस समिति के पास विशेषज्ञों ने भेजी थीं उन पर समिति ने समुचित विचार किया तथा कुछ सज्जनों का साक्ष्य भी लिया। इस समिति ने अपने नकारात्मक और स्वीकारात्मक दोनों प्रकार के सुझावों को प्रस्तुत किया। जिन पर आगे चलकर सार्थक निर्णय लिए गए।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **अभिषिक्त** : जिसका अभिषेक हुआ हो, सींचा हुआ, अधिकार प्राप्त।
- **स्थापत्य** : भवन बनाने की विधा, वास्तु विज्ञान, एक वेद जिसमें वास्तु शिल्प का ज्ञान प्राप्त होता है।
- **मानकीकरण** : मानक रूप स्थिर करना।
- **लिपि** : लिखने की क्रिया, लघुतम ध्वनि का सूचक अक्षर, भाषा के लघुतम ध्वनि अक्षरों का समूह।

5.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. ब्राह्मी
2. जॉन गिलक्रिस्ट
3. सही
4. गलत

टिप्पणी

5. 1976
6. 2000–2001
7. सही
8. गलत
9. वैज्ञानिक
10. लिपि
11. लिपि
12. स्वरूप
13. सही
14. गलत
15. सही
16. सी
17. काका कालेलकर
18. 1945
19. सही
20. गलत

5.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. देवनागरी लिपि के नामकरण पर प्रकाश डालिए।
2. देवनागरी लिपि के गुण, दोषों का मूल्यांकन कीजिए।
3. नागरी अंकों एवं नागरी लिपि की उत्पत्ति का विवचेन कीजिए।
4. देवनागरी के प्रचार–प्रसार में केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भूमिका का विवेचन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. देवनागरी लिपि का हिंदी भाषा के रूप में विकास पर एक निबंध लिखिए।
2. देवनागरी लिपि के मानकीकरण के प्रयासों की समीक्षा कीजिए।
3. देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. देवनागरी लिपि में सुधार के प्रयासों का ऐतिहासिक विवेचन कीजिए।

5.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. बाबूराम सक्सेना, *सामान्य भाषा विज्ञान,* हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
2. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, *भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी–1986.
3. पं. किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, *भारतीय भाषा विज्ञान,* चौखंबा विद्याभवन वाराणसी – 2016.
4. डॉ. भगीरथ मिश्र, *भाषा विवेचन,* साहित्य भवन प्रा.लि. इलाहाबाद–1990.
5. डॉ. भगीरथ मिश्र, हिंदी भाषादर्श, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद–1977.
6. डॉ. श्यामसुंदर दास, *भाषा विज्ञान,* प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली–2009.

टिप्पणी